* ओ३म् *

# धर्म-इतिहास-रहस्य

सनातन वैदिक-धर्म, बौद्ध, जैन, शैव और वैष्णवादि
( संसार के सम्पूर्ण ) मतों के विषय में बड़े अन्वे-
षणों तथा विलक्षण, नवीन और सैकड़ों
रहस्य पूर्ण प्रमाणों से पक्षपात, हठ-धर्म,
भ्रम और अन्ध-विश्वास को
समूल नष्ट करते हुये
विरोध का नाश
किया गया है

लेखक—
श्रीमान् पं० रामचन्द्रजी शर्मा
तथा
श्रीमान् ला० तोतारामजी गुप्त
काँठ ज़िला मुरादाबाद

सम्पादक
श्रीमान् प्रेमशंकरजी वर्मा
बड़ागाँव प्रांत शाहजहाँपुर
प्रकाशक —
महाशय श्यामलालजी वर्मा
अध्यक्ष, वैदिक-आर्य-पुस्तकालय
बरेली

प्रथमावृत्ति १००० } जनवरी १९२७ ई० { मूल्य २)

प्रकाशक—
महाशय श्यामलालजी वर्मा
अध्यक्ष, वैदिक-आर्य-पुस्तकालय
बरेली

# समर्पण

यह क्षुद्र पुस्तक

महावीर स्वामी, भगवान बुद्ध, श्रीशंकराचार्य्य, स्वामी रामानुजाचार्य्य, राजर्षि गुरु गोविन्दसिंह और महर्षि स्वामी दयानन्द-सरस्वतीजी की—

पवित्र आत्माओं की

सेवा में

अत्यन्त ही श्रद्धा, भक्ति तथा आदर सहित

समर्पित

# कृतज्ञता-प्रकाश

(१) जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य्य, स्वामी अनन्ताचार्य्य, बौद्ध भिक्षु धर्मपालजी, जैन महात्मा मुनिराज विद्या-विजयजी, स्वामी श्रद्धानन्दजी, स्वामी दयानन्दजी बी० ए०, बाबा गुरुदत्तसिंहजी।

(२) पं० मदनमोहनजी मालवीय, म० हंसराजजी, पं० अर्जुनलालजी सेठी, सरदार कर्त्तारसिंहजी, पं० नेकीरामजी शर्मा।

(३) श्रीमान् महाराज दुर्गानारायणसिंहजी तिरवा नरेश, श्रीमान् महाराज नाहरसिंहजी शाहपुराधीश, श्रीमान् महाराज राजारामपालसिंहजी, श्रीमान् महाराज राजा रावगोपालसिंहजी; इन सम्पूर्ण नेताओं को (नहीं-नहीं आर्य्य-जाति की सोलह कलाओं) के हम सब लोग बड़े ही कृतज्ञ हैं, जिन्होंने जाति के संगठित करने के लिये बड़ा ही परिश्रम किया है।

# प्रकाशक के दो शब्द

प्रिय वाचक महानुभाव!

हिंदी साहित्य में धार्मिक-इतिहास-ग्रंथ की कमी चिरकाल से मुझे खटक रही थी और मैं इसी चिंता में था कि किसी सुलेखक धार्मिक इतिहासज्ञ से एक ऐसा ग्रंथ रत्न तैयार करवा इस अभाव की पूर्त्ती करूँ जिस समय पं० रामचन्द्रजी ने यह प्रस्तुत ग्रन्थ "धर्म-इतिहास-रहस्य" लिखकर उपस्थित किया तब मेरी वह चिन्ता जाती रही उस समय मेरा विचार यह हुआ कि यह ग्रन्थ रत्न सर्वाङ्ग-पूर्ण प्रकाशित किया जाय छपाई सफ़ाई कागज़ और चित्र इत्यादि सुन्दर रक्खे जाँय परन्तु जिस समय मैंने चित्रों की खोज आरम्भ की और स्वामी महावीर जी का चित्र उपलब्ध न हुआ तब मैंने कई एक जैनी भाइयों से इस सम्बन्ध में लिखा पढ़ी की कि वह एक चित्र स्वामीजी का हमें प्रदान करें। परंतु किसी महानुभाव ने भी चित्र भेजने की कृपा न की। हाँ एक दो हमारे हितैषी मित्रों ने हमको स्वामीजी का चित्र न प्रकाशित करने की सलाह (कहिये या आज्ञा) दी और चित्र प्रकाशित करने पर हानि उठाने की सम्भावना प्रगट की। अन्ततः विवश हो मुझे अपनी अभिलाषा को दबाना पड़ा जो कुछ चित्र मिल सके वह दे दिये गये हैं कई कारणों वश छपाई-सफ़ाई भी हमारी इच्छानुसार न हो सकी। तो भी यह ग्रंथ रत्न अपने प्रकार का एक ही ग्रन्थ है। आशा है, कि आप इसका समुचित आदर करेंगे और हमारे परिश्रम को सफल करते हुये हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे। और जो कुछ प्रेस सम्बन्धी तथा अन्य अशुद्धियाँ प्रस्तुत पुस्तक में रह गई हैं उनकी सूचना देने की कृपा करेंगे ताकि द्वितीय संस्करण में यह ग्रन्थ रत्न सर्वाङ्ग पूर्ण सुन्दर बनाया जा सके।

वैदिक-आर्य-पुस्तकालय<br>बरेली

श्यामलाल वर्मा<br>ता० १—१—१९२७ ई०

# सहायक पुस्तकों की सूची

( १ ) श्रीशंकराचार्य्य और उनकी शिक्षा [ ले०—पं० राजारामजी ]

( २ ) सृष्टि विज्ञान [ ले०—मा० आत्मारामजी ]

( ३ ) ईश्वरीयज्ञान वेद [ ले०—प्रिं० बालकृष्ण एम० ए० ]

( ४ ) धर्म आदि का स्रोत [ ले०—बा० गंगाप्रसादजी एम० ए० ]

( ५ ) प्राचीन इतिहास [ ले०—प्रो० रामदेवजी ]

( ६ ) जीवन प्रभात [ ले०—पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र ]

( ७ ) गीता रहस्य [ ले०—लो० तिलक ]

( ८ ) विचारसागर [ ले०—म० निश्चलदासजी ]

( ९ ) अलबेरुनी का भारत [ले०—पं० सन्तरामजी बी० ए]

( १० ) राइल एशियाईटिक सोसायटी और का० ना० प्र० पत्रिका तथा अन्य पत्रों के लेख।

( ११ ) भारतवर्ष के कई इतिहास।

( १२ ) जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णवादि मतों के ग्रन्थ।

( १३ ) श्रीमान् लाला लाजपतरायजी का इतिहास।

( १४ ) श्रीमान् रा० शिवप्रसाद सि० हि० का इतिहास।

( १५ ) सिक्खों का इतिहास।

( १६ ) सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि।

# भूमिका

सन् १९१८ ई० के माघ मास के किसी रविवार के दिन मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि संसार के सम्पर्ण मतों का एक वृहद् इतिहास लिखना चाहिये, इसलिये इस कार्य्य की पूर्त्ति के लिये धर्म-ग्रन्थों और इतिहासादि की पुस्तकों से सामग्री एकत्र करने लगा। जिन दिनों म० गाँधी का असहयोग बड़े वेग से वृटिश छत्र को हिला रहा था और हिन्दू लोग प्रेम में इतने मस्त थे कि अपने विधर्मी भाइयों का जूठा पानी पीने में ही कल्याण समझते थे, उन दिनों भी मैं हिन्दू-मुसलिम ऐक्य को असम्भव तो नहीं पर कठिन अवश्य समझता था। जिन लोगों ने इसलाम धर्म के ग्रन्थों और सिद्धान्तों का भली प्रकार अध्ययन किया है। वे जानते हैं कि हिन्दू-धर्म और इसलाम के दृष्टिकोण में बिलकुल ३६ का स्वरूप है। इन्हीं दिनों के अन्त में जब मालाबार और मुलतान में हिन्दुओं के साथ बड़े-बड़े अत्याचार हुये तो हमारे प्रेम पात्रों ने उलटी अत्याचारियों की सहायता की, अपने मुख से सहानुभूति का एक शब्द भी न निकाला। मुसलमानों के एक बड़े नेता ने तो यहां तक कह दिया कि इसलाम को तलवार के द्वारा धर्म प्रचार का अधिकार है पर शोक हिन्दुओं की आँख फिर भी नहीं खुली। वे इसी धोखे में रहे कि बिना हाथ पैर हिलाये ही स्वराज्य मिल जायगा, बातों से ही गोरक्षा करके मुक्ति लूट लेंगे। इन सब घटनाओं से मेरा दृढ़ विश्वास हो गया कि गुसाईं तुलसीदासजी का यह वाक्य बिलकुल ठीक है कि बिना भय के कभी प्रीति नहीं होती। अन्त में जब हिन्दू लोगों को ज्ञान हुआ तो बड़े पछताये चारों ओर से रक्षा का प्रश्न उठा अन्त में यही निश्चय हुआ कि संगठन किया जावे। संगठन के लिये तीन बातों की बड़ी आवश्यकता थी। प्रथम जातीय रक्षा दूसरे मतभेद का नाश, तीसरे शिक्षा। सन् १९२३ ई० में राजपूत

महासभा ने जाति से बहिष्कृत भाइयों के मिलाने का प्रस्ताव पास किया जिससे मुसलमान लोग बड़े ही क्रुद्ध हुये और सैकड़ों प्रचारक मलकानों को मुसलमान बनाने के उद्देश्य से भेज दिये। अब हिन्दुओं ने सोचा कि इन लोगों को हमारी जातीय वृद्धि से इतना वैर क्यों है। आर्य्य-समाजी लोग मुसलमानों के इस अनुचित कार्य को सहन न कर सके। इसलिये उनके नेता लोग अपने प्रचारकों को लेकर मुसलमानों के विरुद्ध कार्य्य करने लगे। यह देख हिन्दू जाति के सम्पूर्ण आचार्य्यों और उपजातियों ने बहिष्कृत भाइयों को मिला लेने के प्रस्ताव को क्रियात्मक रूप देने का निश्चय कर लिया; अब तो प्रेम के प्यासे लोग अपने बिछुड़े भाइयों से मिलने लगे। इस प्रकार परमेश्वर की प्रेरणा से असम्भव कार्य्य दो वा तीन मास में हो गया। अब मतभेद और शिक्षा का प्रश्न शेष रह गया, दैवयोग इन्हीं दिनों में मेरे क्लास के बच्चों में मेज़ पर रक्खे हुये श्रीमद्भागवत पुराण की व्याकरण के विषय में मतभेद होगया। सारा क्लास इस ग्रन्थ को संज्ञा बता रहा था, पर एक बालक उनके विरुद्ध था, मैंने कहा तुम दोनों ठीक कह रहे हो पर अपनी-अपनी बात को समझा नहीं सकते। देखो यह ग्रन्थ संज्ञा नहीं है, यह तो केवल एक पदार्थ है, पर इसका नाम संज्ञा है। दैवात् मेरा दूसरा घंटा खाली था। इसलिये इसी विषय पर विचार करने लगा। हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं हमारा मतभेद ऐसा ही मतभेद तो नहीं है, इसलिये उस धर्म सम्बन्धी इतिहास की सामग्री पर फिर विचार करने लगा। अब जो देखता हूँ तो संसार ही पलटा हुआ दिखाई दिया। जिन बातों को फूट का कारण जानता था वे ही प्रेम का बीज निकलीं। मेरी इस प्रवृति को देखकर कांठ के प्रसिद्ध सेठ श्रीमान् ला० मथुरादासजी के सुपुत्र ला० तोतारामजी गुप्त ने इतिहास और धर्मादि के बहुत से ग्रन्थ दिखाये और हर प्रकार की सहायता से मेरा उत्साह और भी बढ़ाया। मेरी प्रकृति उनके विरुद्ध

चंचल होने पर भी बहुत ही मिलती है। इसलिये जब कोई प्रश्न हृदय में उठता, उन्हीं से परामर्श लेता। इस ग्रंथ में जितनी अच्छी बातें हैं वे उन्हीं की समझनी चाहिये। और जितनी छोटी बातें हों वे मेरी समझी जावें। इस ग्रंथ में जो कुछ गुण अथवा अव गुण हैं वे सब न्यून से न्यून तीन चार पढ़ने से ज्ञात होंगे। इस ग्रन्थ के किसी विषय को विचारते समय आगे-पीछे प्रेम, मनुष्य-प्रकृति, देश, पात्र, अवस्था, परस्थिति और सत्य का सदा ही ध्यान रखने की आवश्यकता है। संसार में सब को प्रसन्न रखना असम्भव है पर इस बात का परमपिता परमेश्वरी ही जानता है कि हमने जान-बूझकर किसी मत पर कोई चोट नहीं की इस पर भी यदि हमसे कुछ अपराध हो गया हो तो पाठक अपनी उदारता से क्षमा करदें।

दृष्टम् किमपि लोकेऽस्मिन निर्दोषमनर्निगुणम्। 
आवृणुध्वमतो दोषान्विवृणुध्वम् गुणान्बुधः॥

लेखक—

# उपसंहार

हां लेखनी हृत्पत्र पर लिखनी है तुमको यह कथा,
दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा।
स्वच्छन्दता से कर तुझे करने पड़े प्रस्ताव जो,
जग जाँय तेरी नोक से सोते हुए हों भाव जो॥

( मैथिलीशरण गुप्त )

संसार की वर्तमान दशा बहुत ही बुरी है, एक मत दूसरे मत को एक जाति दूसरी जाति को, और एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को खाने को दौड़ रहा है। राजा से लेकर रङ्क तक किसी के चित्त को चैन नहीं है। मनुष्य इस असंतोषाग्नि के बुझाने के लिये नित्य नये उपाय सोचते हैं पर अन्त में सब के सब व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इसका कारण यह है कि लोगों ने असंतोष के मूल कारण को नहीं जाना। प्रकृत्ति का गुण ही अशान्ति है, कोई भी प्राकृतिक पदार्थ एक दशा में नहीं रह सकता। इस बात को सभी जानते हैं कि जो गुण जिस पदार्थ में होता है वही गुण उसकी संगत करनेवाले में भी आ जाता है। अग्नि के निकट रक्खा हुआ कठोर लोहा भी अग्नि हो जाता है, यही नहीं उससे विपरीति गुण रखने वाला बर्फ़ भी उष्ण जल बन जाता है। योरुप संसार में शांति नहीं फैला सकता, क्योंकि वह प्रकृत्ति का उपासक है। अब शान्ति के दो ही उपाय हो सकते हैं, प्रथम यह कि प्रकृत्ति की संगत ही त्याग दी जावे सो यह हो नहीं सकता। जब तक मनुष्य आवागमन के चक्र में पड़ा हुआ है उससे विलग नहीं हो सकता। दूसरा उपाय यह हो सकता है, कि प्रकृत्ति के इस गुण को ही नष्ट कर दिया जावे, यह तो असंभव है कि गुणी से गुण दूर कर दिया जावे। जिन लोगों ने केवल प्रकृत्ति-देवी के ही दर्शन किये हैं उनके सामने शांति का केवल एक गुण यह

और रह जाता है कि जैसे-तैसे शक्ति को बढ़ाया जावे तो फिर किसी का भय नहीं रहेगा। वास्तव में प्राकृतिक संसार में इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है, पर इसमें भी चित्त को चैन नहीं मिलता। दिन-रात अपनी शक्ति के बढ़ाने और दूसरों की शक्ति के घटाने की चिन्ता घेरे रहती है, और जब विपक्षी भी ऐसा ही करने लगता है तो यह चिंता और भी बढ़ जाती है। जापान, रूस, बृटेन फ्रांस और अमेरिका में यही खींचा तानी हो रही है। एक दिन वह भी शीघ्र ही आने वाला है जब कि समुद्र की मछलियाँ और स्थल के जीवों को पश्चिमी सभ्यता मांस संबंधी ऋण चक्रवृद्धि ब्याज सहित चुका देगी। चाहे बल बढ़ाने की चिंता कितनी ही बुरी सही पर जो ऐसा न करेगा वही समूल नष्ट हो जावेगा।

जिस मनुष्य ने प्रकृति से ऊपर आँख उठाकर भी देखा है तो उसको एक ऐसी शक्ति का भी अनुभव हुआ है जो अशान्ति से अनन्त गुनी शान्ति का समुद्र है, जो प्रकृति की अशान्ति का सदुपयोग करके उसे शान्ति की ही सामग्री बना रही है, तो उसे उस समय आशा ही आशा दिखाई देती है, सम्भव है लोगों को उस शक्ति का विश्वास बीसवीं शताब्दी में भी न हुआ हो, पर इस बात को तो वे अवश्य ही मानेंगे कि जब संसार में अशान्ति मौजूद है तो शान्ति भी अवश्य ही होगी क्योंकि जब शीत है तो गर्मी भी अवश्य ही मौजूद है। संसार में जिस पदार्थ की जितनी आवश्यकता है वह उतना ही अधिक मौजूद है, यदि रोग एक है तो औषधि भी असंख्य है, जितनी वायु की आवश्यकता है उससे अधिक वायु मंडल भरा पड़ा है। फिर यह कैसे हो सकता है कि सब से आवश्यक पदार्थ शान्ति का भंडार क्यों न होगा। पर जब तक उस शान्ति स्वरूप शक्ति के पास न जावें तब तक न तो शान्ति ही मिल सकती है न प्रकृति का सदुपयोग ही हम जान सकते हैं। संसार में कोई भी अपने ऊपर दूसरे का अधिकार नहीं चाहता। इसी नियम के अनुसार

प्रकृत्ति इस अल्प जीव को उस महान शक्ति से दूर रखने के लिये बड़े-बड़े प्रलोभन देती है। उस परम पिता ने इस प्रकृत्ति से जीव के कल्याण के लिये जहाँ अन्य पदार्थ बनाये उसके साथ ही अपने तक पहुँचने के लिये पूर्ण उपाय भी आदि सृष्टि में दिये जिनको वेद वा मूल ज्ञान कहते हैं।

प्रोफेसर मैक्समूलर, म० टालस्टाय और एन्ड्रो जेक्सन डेवीस का वचन है कि संसार की भावी सभ्यता और सच्ची शान्ति भारतवर्ष से ही फैलेगी जिस जाति से संसार शांति की आशा लगाये बैठा है। अब उससे अधिक गिरी हुई संसार में कोई भी जाति नहीं है। जिस जाति के पूर्वज कभी शत्रु का भी अपमान नहीं सहन कर सकते। आज वह इतनी निर्लज्ज हो गई है, कि उसके सामने उसकी रोती हुई पुत्रियों का सतीत्व नष्ट किया जा रहा है, हाय गोमाता का पवित्र रक्त गंगामाई की पवित्र भूमि में बहाया जाता है पर उसके विषय भोग में कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

परमात्मन्? आपने हमको ऐसी निर्लज्ज जाति में क्यों जन्म दिया है जिसको संसार में गुलाम के नाम से पुकारा जाता है। जिसमें सदाचार प्रेम और वीरता का नाम भी नहीं है। भगवान हमने वह कौन से पाप किये थे जिनके कारण हमें उस जाति में जन्म लेना पड़ा जिसमें दयालुता का बिलकुल ही दिवाला निकल गया है। पिताजी! इस मनुष्य योनि से तो यही अच्छा होता कि हमारा जन्म पशुओं में होता! हा! आज हमारी कायरता को देखकर दूसरी जातियाँ हमारे पूर्व पुरुषों को गड़रिया और असभ्य कहती हैं। भक्त वत्सल! क्या कोई समय ऐसा भी आनेवाला है जब अन्य मिटी हुई जातियों की लिस्ट में हमारा भी नाम लिखा जायगा? क्या संसार का कल्याण करनेवाले ऋषियों का कोई भी नामलेवा न रहेगा।

ओ! अपने भाइयों को दूर धक्का देनेवाले भोले सज्जनों क्या तुम नहीं जानते कि एक दिन तुम्हारे मुख में बलात्कार गोमांस ठूसने की तैय्यारी हो रही है। अरे! पकवान के खानेवाले सतयुगी पुरुषो क्या

तुम नहीं जानते कि बस १४ वर्ष के पश्चात् ऋषि भूमि में गोवंश नष्ट हो जायगा।

हा ! निर्दयी जाति तुझ में जन्म लेने पर बार-बार धिक्कार है जबकि हमारे बच्चे किसी के हाथ में दूध देखकर नदीदपन से गिड़गिड़ा कर मांगते हैं और हम अपने फूटे मुख से झिड़ककर ही संतोष नहीं करते, वरन् मारते-मारते मूर्छित भी कर देते हैं। हाय ! क्या इससे भी बुरा कोई समय होगा जबकि हमारे प्यारे रोगी बच्चों के लिए कुछ भी नहीं मिलता होगा।

हिन्दू जाति ! कितनी बे शर्मी और बेग़ैरती का स्थान है कि तू दूसरी से तो भोजन छुड़वाने का भी यत्न करती है और तुझसे गो माता की चरबी लगा विदेशी वस्त्र भी न त्यागा जावे। याद रख मुसलमान गो बध नहीं बन्द कर सकते यह गोवध तो काफिरों से स्वत्व सीधा करने का सर्वोत्तम उपाय है। यह तो उनका प्रिय भोजन और व्यापार का मूल है। यह तो उनके पांच मूल सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त है। ओ प्रमादी जाति ! निश्चय रख बातों में अहिंसा परमोधर्मः का पालन नहीं होता। इस धर्म के पालन के लिये तुझे अहिंसा देवी के आगे सिर काट कर अपने ही हाथ से भेट करना पड़ेगा।

चाहे सूर्य से वर्फ़ के ढेले बरसने लगें पर यह असम्भव है कि अंगरेज़ गोवध बन्द कर दें भला वे गोवध बन्द करके अपने दैनिक भोजन को प्राप्त करने के म़ज़ील को दूना मूल्य देकर उसकी हा हा क्यों करें। वे अपनी भेद नीति को हाथ से क्यों खोवें। जिस पर भारतवर्ष का ही नहीं-नहीं सारा साम्राज्य स्थिर है। समझो तो सही कौन सा कारखाना ऐसा है जिसमें गोवध की आवश्यकता, नहीं, भला जिस व्यापार के भय से जर्मनी से युद्ध छेड़ा उसे कायर लोगों की प्रसन्नता मात्र के लिये क्यों नष्ट करदें। क्या वे विदेशीय वस्तुओं के दास हिंदुओं के बराबर भी बुद्धि नहीं रखते।

सब दुखों के दूर करने का मूल मंत्र यह है कि अपनी गिरावट के कारणों को दूर करके संगठन करो। संसार में सब पदार्थ हैं पर बिना कर्म किये कुछ नहीं मिलता और तो और हमारा सब से बड़ा शुभ-चिन्तक परम पिता परमेश्वर भी कुछ नहीं दे सकता।

## हम संसार में क्यों मिट रहे हैं

( १ ) मद्यप लोग कहते हैं कि हमारी जाति उस समय तक उन्नति नहीं कर सकती जब तक उसमें योरुप की भाँति मद्य का अच्छा प्रचार न हो जावे, वे कहते हैं कि मद्य से बुद्धि की वृद्धि होती है। जब हम इनसे कहते हैं कि योरुप की उन्नति के मार्ग पर डालने वाले न्यूटनादि महापुरुष तो इसके बड़े शत्रु थे तो वे चुप हो जाते हैं।

२—मांसाहारी कहते हैं कि मांस न खाने के कारण आर्य्य जाति की बुद्धि और उसके बल का दिवाला निकल गया है। उनको इतना भी ज्ञान नहीं है कि हिन्दू लोगों में जो ९० प्रति सैकड़ा लोग मांस खाते हैं, इन माँस खानेवाली जातियों में जिनमें अधिक माँस खाया जाता है वे उतनी ही बलहीन और कायर भी अधिक हैं, जो लोग कभी-कभी मांस खाते हैं उनकी गिन्ती मांस खानेवालों में भी नहीं हो सकती। गत महायुद्ध में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अन्न दूध का सेवन करनेवाली जातियाँ बड़ी धीरता तथा वीरता से लड़ती हैं, उनके घाव शीघ्र ही भर जाते हैं वे भूख और गरमी-सरदी के सहन करने में बड़ी समर्थ होती हैं।

जिन्होंने कुछ भी शिक्षा पाई है वे जानते हैं कि साइंस मांस के भोजन को अस्वभाविक बतलाती है। योरुप के विद्वान् अब मांस खाने की प्रथा के बड़े शत्रु बनते जाते हैं, जिन देशों में जितना अधिक मांस खाया जाता है, वे उतनी ही अधिक बलहीन हैं। दूध-अन्न का सेवन करनेवाले डेनिश सबसे अधिक बलवान हैं, चावल खानेवाले जापानियों की वीरता

किससे छिपी है रोमन, ग्रीक और पारसी अपने उत्कर्ष काल में मांस का सेवन नहीं करते थे। भारतवर्ष का इतिहास तो उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इस देश में जब से माँस का प्रचार बढ़ा तभी से यह गिरता चला गया। यदि आर्य्य जाति में बाल-विवाह करने और व्यायामादि अच्छे कार्य न करने की प्रथा न चल पड़ती तो आज संसार में हमसे अधिक कोई भी बलवान न होता।

३—कुछ अँगरेज़ और उनके विचार शून्य भारतीय चेले कहते हैं कि कितने ही उपाय करो यह देश उन्नति नहीं कर सकता, इसकी जलवायु गर्म है। यदि इनकी हीं बातें ठीक होती तो टंडरा और ग्रीनलैंड के मनुष्य ही आज चक्रवर्त्ती होते। यदि भारतवर्ष की भूतकाल की उन्नति को देखना चाहते हो तो कृपया मि० ब्राउन और प्रोफेसर मैक्समूलर से तो पूछलो, चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रम, बालादित्य को तो तुम भी जानते हो जिन्होंने उन जातियों को परास्त किया था जिन से सम्पूर्ण संसार कांपता था। अच्छा भूतकाल को जाने दो आज भी संसार में यह मरा हाथी बटोरने से कम नहीं है। क्या जगदीशचन्द्र बोस के समान कोई फ़िलासफ़र संसार में है। क्या कोई कवि सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समान है? क्या किसी जाति के पास प्रो० राममूर्ति और म० गांधी हैं।

भले मनुष्यों कृतघ्न तो मत बनो, मित्र लोग फ्रांस के घोर युद्ध में जब जर्मनों की संगीनों की चमक को देख-देखकर लौंडियों की भाँति रो रहे थे उन जर्मनों और तुर्कों को रुई के समान धुनकर फेंक देने वाले अद्वितीय वीर सिक्ख, जाट, राजपूत और गोरखों की भुजायें तो अभी तक अपने में उष्ण रक्त बहा रही हैं।

४—सबसे अधिक कायर वे मनुष्य हैं जो कहते हैं कि अजी परिश्रम करना व्यर्थ है यह सब कलियुग की लीला है। हम इन तत्व ज्ञान के ठेकेदार महाशयों से पूछते हैं कि श्रीमानूजी अन्य देशों में कलि-युग कहाँ चला गया, इस पर बुड्ढे बाबा उत्तर देते हैं, अरे पुत्तर ? वे

वो म्लेच्छ और अनार्य्य लोग हैं, इस पर हम उनसे पूछते हैं कि महानुभाव क्या धर्म गिराता है ? तो फिर मनुजी क्यों कहते हैं "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।" कणाद क्यों कहते हैं "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धि स धर्मः।" भला यह तो बताओ वे तो थोड़े ही पाप करते हैं तुम्हारी जाति में कौन सा पाप नहीं होता ?

## हमारी अवनति का मूल कारण

कहने के लिये तो बहुत सी बातें हैं पर मूल कारण केवल अज्ञान है, कहीं उसने मतभेद की पदवी धारण कर रक्खी है, कहीं वह छूत-छात का भयंकर भूत कहलाता है और कहीं उसे कुप्रथा के नाम से पुकारा जाता है।

## मतभेद, छूतछात और कुप्रथा

इन तीन नामों की आजकल बड़ी दुर्गति हो रही है, शुद्धि के ठेकेदार कहते हैं कि चाहे प्राण चले जावें पर इन तीनों में जो बाल का भी अन्तर आगया तो विमान लौट ही जावेंगे। दूसरे अभ्युदय के स्वामी कहते हैं कि यदि पुरानी बातों में से कुछ भी भाग रह गया तो जाति नष्ट ही हो जावेगी। इस ग्रंथ में हम यही सिद्ध करके दिखावेंगे कि इन तीनों बातों के विषय में दोनों पक्ष के मनुष्य कितने पानी में हैं।

लेखक—

# विषय अनुक्रमाणिका

## वैदिक-काल

## वाम-काल



## जैन-बौद्ध-काल

# पौराणिक-काल

## यवन-काल

## ईसाई-काल

# विदेशीय मत-काल

## प्रदोप-काल



## भविष्य-काल



## प्रचार-काल

---

ओ३म्

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## प्रथम-अध्याय

### वैदिक-काल

आदि सृष्टि से २५०० वर्ष पू० ई० तक

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ ?,
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है !
उसका कि जो ऋषि भूमि है वह कौन ? भारतवर्ष है॥
( मै० श० गु० )

### आदि सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न हुई

इस सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन पदार्थ हैं, ईश्वर एक और सर्व शक्तिमान् है, अर्थात् उस को जगत् सम्बन्धी कार्यों के लिये अन्य किसी शक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं है। संसार में वही मनुष्य बड़े हुये हैं जिन्होंने सच्चे नियमों का अधिक पालन किया है, इसी नियम के अनुसार ईश्वर भी सबसे अधिक बड़ा है, क्योंकि वह तो सत्य-नियम-स्वरूप ही है। जिस प्रकार एक निराकार शक्ति ( आत्मा ) हमारे शरीर के बाहर-भीतर शासन कर रही है, इसी प्रकार एक महान् शक्ति ( परमात्मा ) इस जगत के

बाहर-भीतर राज्य कर रही हैं। जीव (आत्मा) असंख्य हैं और वे चेतन्य अर्थात् ज्ञान तथा गति स्वरूप हैं।

## आत्मा (जीव) और परमात्मा का अन्तर

(१) आत्मा असंख्य हैं पर ईश्वर एक ही है।

(२) आत्मा अल्प शक्तिमान् है, ईश्वर सर्व शक्तिमान्।

(३) आत्मा परिछिन्न है, ईश्वर सर्व व्यापक है।

(४) आत्मा को ईश्वर की सहायता की आवश्यकता है, परन्तु ईश्वर को किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है।

(५) ईश्वर एक रस है परन्तु जीव की दशा सदा बदलती रहती है अर्थात् जब ईश्वर की संगत (उपासना) में पड़ जाता है, तो उसकी बातों को धारण करके आनन्द स्वरूप बन जाता है, और जब प्रकृति की उपासना में लगजाता है तो उसके समान यह भी परिवर्तन प्रिय और जड़-सा हो जाता है।

## जीव और ईश्वर की समानता

(१) दोनों नित्य अर्थात् अनादि और अनन्त हैं।

(२) दोनों चेतन्य हैं।

(३) सृष्टि के लिये दोनों की आवश्यकता है।

(४) दोनों ही जीवों का कल्याण करते हैं।

(५) दोनों निराकार हैं।

प्रकृति जड़ और सृष्टि की पूर्ण सामिग्री है।

## तीनों का भेद

(१) प्रकृति केवल सत् अर्थात् नित्य है।

(२) जीव सत् भी है और चेतन्य भी है।

(३) ईश्वर सत्, चेतन्य और आनन्द-स्वरूप हैं इसी से उसे सच्चिदानन्द स्वरूप कहते हैं। जिस प्रकार रात-दिन

का चक्र लगा हुआ है इसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का भी एक चक्र लगा हुआ है। यदि जीव अल्पज्ञ होकर कर्म में लिप्त न होते तो सृष्टि के बनने की कोई आवश्यकता न होती, यह सृष्टि केवल जीवों के फल भोग के लिये बनाई जाती है। अथवा यों कहना चाहिये दयासागर परमेश्वर प्रकृति की संगत से पड़े कुसंस्कारों को दूर करने के लिये सृष्टि उत्पन्न करता है।

च्यार अर्ब बत्तीस करोड़ वर्षके पीछे प्रलय होजाया करती है और इतने ही समय तक प्रलय रहा करती है। प्रलय की दशा में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। वरन् मनुष्य की दशा ऐसी हो जाती है, जैसी कि डाक्टर की मूर्च्छित करनेवाली औषधि के सूंघने से हो जाती है, जिस प्रकार भूमि को छोड़ देने से उसमें उत्पन्न करने की शक्ति पुनः आ जाती है, अथवा जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि हो जाने से पदार्थों में जीवन आजाता है। इसी प्रकार प्रलय ( महारात्रि ) के होने से भी प्राकृतिक शक्तियों में शक्ति आजाती है। वर्तमान सृष्टि से पूर्व यह जगत प्रलय की दशा में था, जब प्रलय का नियत समय समाप्त होगया तो उस सर्वशक्तिमान् की प्रेरणा से सृष्टि बननी आरम्भ हुई। प्रथम आकाश बना, फिर वायु पश्चात् अग्नि, जल, मृत्तिका, ग्रह और उपग्रह बने। बहुत समय के पश्चात् जब भूलोकादि ठीक होगये तो बनस्पति आदि सम्पूर्ण आवश्यक पदार्थ उत्पन्न हुये। सब से पीछे जीव-धारी उत्पन्न हुये।

## मनुष्यादि किस प्रकार हुये

इस सीधे सादे प्रश्न को लोगों ने अज्ञान के कारण बड़ा ही जटिल बना दिया है। पश्चिमी मत कहते हैं कि ईश्वर ने

अप्रसन्न होकर एक मनुष्य को भूमि पर फेंक दिया उसी आदिम मनुष्य ने अपनी बाईं हड्डी को निकालकर अपनी स्त्री बनाया बस उन्हीं से मनुष्य उत्पन्न हुये। आगे चलकर हम बतायेंगे कि यह भ्रम मूलक विचार इन मतों के पास कहां से आया था।

पश्चिमी फिलास्फर (दार्शनिक) विद्वान् कहते हैं, कि जब भूमि ठीक होगई तो प्रथम कीड़े बने फिर वे मछली बन गये, मछली से वे बन्दर और बन्दर से पूंछ कटकर यह मनुष्य बनगये, आज पश्चिम के विद्वान् ही ऐसी निर्मूल बातों का खंडन कर रहे हैं। यदि यह विकासवाद ठीक होता, तो आज केवल मनुष्य ही मनुष्य होते। विकासवाद का मूल सिद्धान्त तो एक विशेष दशा में ठीक है। पर उसका प्रयोग अशुद्ध रूप में किया है, उस डारविन बाजी ने संसार में बड़ा ही असंतोष फैला दिया है। वैदिक-साहित्य में इस प्रश्न का उत्तर ऐसा अच्छा दिया है कि मोटी से मोटी बुद्धि का मनुष्य भी समझ सकता है। ऋतञ्च सत्यञ्च आदि मन्त्रों ने लोगों को इन्हीं गढ़ों से बचाने के लिये सृष्टि का ढाँचा बता दिया है। सब देखते हैं कि जल में, अन्न में, वस्त्रों में और खाटों में अपनी २ भांति के कीड़े आप से आप उत्पन्न हो जाते हैं, और फिर उन्हीं से संतान चलने लगती है। वर्षा-काल में संध्या के समय भूमि लाल-लाल दिखाई देती है, पर सवेरे उसी स्थान पर लाल-लाल कीड़ों का छत्ता देखा जाता है। यदि गऊ के गोबर में गदहे का मूत्र एक विशेष विधि और अनुपान से मिलाकर रख दिया जावे तो कुछ समय के पीछे उसमें एक बिच्छू दिखाई देगा। बात यह है कि एक ऐसी मिश्रित सामिग्री एकत्र हो जाती है, जिसमें उसके योग्य जीव शरीर धारण कर लेता है। इसी प्रकार आदि सृष्टि में उस पूर्ण सामर्थ्यवान् शक्ति ने ऐसी प्राकृतिक मिश्रित सामिग्री एकत्र करदी, जिस में आत्माओं

ने अपने २ संस्कारों के अनुसार शरीर धारण किये। इस सृष्टि को वैदिक-साहित्य में अमैथुनी सृष्टि कहते हैं, आदि में प्राणी युवावस्था में उत्पन्न हुये, यदि बच्चे होते तो कौन पालता और यदि वृद्ध होते तो वे सन्तान न चला सकते। आदि में एक ही जाति के अनेक जीवधारी हुये, योरुप के विद्वान् भी ऊपर कही बातों को थोड़े दिनो से मानने लगे हैं, शरीर शास्त्र ने यह बात संसार से मिटा दी कि मनुष्य एक ही स्त्री पुरुष के जोड़े से उत्पन्न हुये हैं। आर्ष-ग्रन्थों से यह बात सिद्ध हो गई है कि आदि में बहुत से मनुष्य और स्त्रियाँ हुईं जो बल, बुद्धि, सदाचार, ज्ञानादि में आदर्श थे मानो वे भावी सन्तान का साँचा थे। पूर्वों के इस सिद्धान्त को डारविन आदि भी सभी विद्वान् मानते हैं कि प्रकृति में अनावश्यक और व्यर्थ पदार्थ नहीं रहते। अतः इस समय मनुष्य मैथुनी सृष्टि से उत्पन्न होते हैं।

## आदि सृष्टि किस स्थान पर हुई

इस विषय में लोगों का बड़ा मतभेद है, कुछ महाशय कहते हैं कि आदि सृष्टिके मनुष्य उत्तरी ध्रुव या स्केण्डीनेविया आदि शीत प्रधान देशों में हुये, यह विचार उन्हों ने निर्मूल बातों के आधार पर खड़ा कर दिया है। ऐसी ही निर्मूल बातों के आधार पर बहुत सी कल्पना की गई हैं, पर तिब्बत और तुर्कस्थान के विषय में बहुमत है। भारतीय विद्वान् अविनाशचंद्रदास की कल्पना है कि हमारे पूर्वज भारतवर्ष में ही हुये थे, पुराणों में भी यही लिखा है, जो मनुष्य शीत प्रधान देशों में बतलाते हैं उन से हम सहमत नहीं हैं, क्योंकि उन देशों में मनुष्य के भोजन और आच्छादन का कुछ भी प्रबंध नहीं है, निस्संदेह जो लोग उपजाऊ देशों में बतलाते हैं वे ही ठीक कहते हैं,

मनुष्य को जहाँ भी उत्पन्न किया होगा वहाँ उसके स्वभाविक भोजन फल, अन्न, दूध और शरीर रक्षा का पूरा प्रबन्ध होगा, हमारे विचार में आदि सृष्टि की वनस्पति और मनुष्यादि जीव बसन्त ऋतु में ही हुये होंगे।

जो लोग यह कहते हैं कि सम्पूर्ण मनुष्य एक ही स्थान पर हुये उनसे हम सहमत नहीं हैं। यदि एक ही स्थान पर होते तो प्राकृतिक नियम के अनुसार चेहरा, मोहरा और शारीरिक गठन समान होता, जलवायु का प्रभाव केवल रंगरूप पर ही पड़ा करता है। आर्य्यन, मंगोल, अफ्रीकन और अमेरिका के आदि निवासी बिल्कुल एक दूसरे से भिन्न २ हैं, ठीक बात यह समझ में आती है कि कुछ मनुष्य तो भारतवर्ष में हुये, कुछ चीन में, कुछ अमेरिका में और कुछ अफ्रीका में। जिस प्रकार एक ही जीव की उपजातियाँ भिन्न देशों में उत्पन्न हुईं, इसी प्रकार यह भी हुआ कि मनुष्यकी यह उपजातियाँ भिन्न २ देशों में उत्पन्न हुईं। भूगर्भशास्त्र के अनुसार जो रंग इन जातियों का ठहराया जावेगा वही इनके मूल निवासस्थान का भी ठहराया जायगा। मंगोल जाति के मनुष्य पीले हैं तो वहाँ की भूमि भी पीली ही है। सम्पूर्ण मनुष्यों के एक ही स्थान पर उत्पन्न न होने का एक प्रमाण तो यह है कि सब मनुष्यों के कर्म भी इस योग्य न होंगे कि वे एक ही स्थान पर उत्पन्न होकर दुःख, सुख, और ज्ञान, अज्ञान की समान परिस्थिति को ही प्राप्त करें, यदि आदि में एक भूलोक में एक ही स्थान पर मनुष्य उत्पन्न किये होंगे तो उस दशा में समान २ कर्मों के योग्य जन्म लेने के लोक पौराणिकों की भांति भिन्न २ होंगे वा कुछ जीवों को कुछ रुककर जन्म लेना पड़ा होगा। परमेश्वर ने जो जहाँ तहाँ उपजाऊ और मनुष्य के रहने योग्य स्थान बनाये हैं वेभी इसी बात को सिद्ध करते हैं। जब हाथी,

रीछ, वानर, गौ, अश्वादि की भिन्न २ उपजातियाँ भिन्न २ स्थानों पर बनाई गईं तो यह कैसे समझा जा सकता है कि मनुष्य जाति एक ही स्थान पर उत्पन्न हुई। इससे यह फल निकालना व्यर्थ होगा कि इस प्रकार मनुष्य भी शीत प्रधान देशों में अवश्य हुये होंगे, यह बात कोई असम्भव तो कही नहीं जासकती, सम्भव है, परमेश्वर ने वहाँ पर उनकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर दिया हो, पर मनुष्य का नग्न शरीर और उसका शारीरिक शास्त्र से सिद्ध हुआ भोजन तो इसी बात को सिद्ध करता है कि वह साधारण जलवायु के रहने योग्य है।

## वेद किसने बनाये

ईवोल्यूशनथ्योरी ( विकासवाद ) के मानने वाले कहते हैं कि जिस प्रकार एक छोटे से कीड़े से उन्नति करते २ मनुष्य बनगये इसी प्रकार उन्नति करते २ मनुष्य ज्ञानी बन गये। वे कहते हैं कि आदि में मनुष्य संकेतों से अपना काम लेते थे, फिर वे पदार्थों और जीवों के नाम ध्वन्यात्मक गुणों के अनुसार रखने लगे, जैसे छू-छू बोलने से छछूंदर, उल्लू की बोली घू-घू है तो उसका नाम घुग्घू रख लिया। फिर मनुष्य वृक्षों और पत्थरों पर कुछ २ चिन्ह बनाने लगे। वास्तव में उन्नति का क्रम इसी प्रकार का होता है। पर यह बात अब सिद्ध होगई है कि संसार में यद्यपि इस प्रकृति का उद्देश्य सदा उन्नति ही है पर उन्नति और अवनति होती दोनों ही हैं। यदि दुःख न होता, तो सुख का अस्तित्व ही न होता, यदि ऊष्णता न होती तो शीत भी न होता और यदि धन विद्युत न होती तो ऋण विद्युत भी न होती। इसी प्रकार उन्नति का नाम ही नहीं हो सकता, यदि साथ में अवनति न हो। पुरातत्व की खोज और इतिहास ने भी यह भ्रम दूर कर दिया है आज

विद्वानों को ज्ञान होगया है कि हमारे पूर्वज, कला-कौशल स्वास्थ, सदाचार, राज्य प्रबन्ध और अन्य सब अच्छी बातों में हमसे बहुत ही ऊपर थे। जब सदा उन्नति ही होती है, तो अफरीका आदि अन्य देशों में मनुष्य असभ्य क्यों हैं। ऐसी दशा में जब कि उन्नति और अवनति दोनों का चक्र लगा हुआ है, तो इसका कोई मूल कारण अवश्य होगा, यदि दिन-रात का चक्र लगा हुआ है तो इसका कारण भी है। यह तो सभी जानते हैं कि उन्नति का मूल कारण केवल ज्ञान है और उसके अभाव से ही अवनति होती है। अब यदि ज्ञान मनुष्य में वैसा ही स्वभाविक माना जावे जैसा कि अन्य जीवधारियों में है तो उस दशा में न तो कभी अवनति ही होगी न मनुष्यों की उन्नति में असमानता। इसलिये सिद्ध हुआ कि मनुष्य में ज्ञान किसी निमित्त से ही आता है। इस बात को सभी जानते हैं कि मनुष्य जो कुछ सीखता है वह आदर्श और शिक्षा से सीखता है

## इसके अकाट्य प्रमाण

१—सम्राट अकबर और जर्मन लोगों ने बच्चों को एकान्त स्थान में रखकर यह अनुभव कर लिया है कि मनुष्य बिना आदर्श और शिक्षा के कुछ नहीं सीख सकता।

२—जिन जातियों का सम्बन्ध शिक्षित जातियों से नहीं हुआ, वे कभी उन्नति नहीं कर सकतीं। योरुप ने उस समय तक कोई उन्नति नहीं की जब तक उसने मिश्र यूनान और रोमन लोगों से कुछ शिक्षा नहीं पाई और मिश्रादि ने जब तक भारत-वर्ष से शिक्षा नहीं पाई उन्होंने भी कुछ उन्नति नहीं की। यदि इस में कुछ सन्देह हो तो इन देशों का इतिहास उठाकर देख लिया जावे। सृष्टि-नियम भी हमारे सम्मुख यही कह रहा है कि

ज्यों-ज्यों प्राणी उच्च कोटि की ओर जा रहे हैं, वे उतने ही अधिक अपने बच्चों की रक्षा-शिक्षा कर रहे हैं।

३—ज्ञान और प्रकाश एक ही बात है, जिस प्रकार प्रकाशवान् पदार्थ से अन्य पदार्थ भी प्रकाशवान हो जाते हैं उसी प्रकार एक के ज्ञान से दूसरे पर ज्ञान आना स्वाभाविक है।

४—संसार में दो ही प्रकार के पदार्थ हैं वे जड़ वा चेतन्य हैं। जिस प्रकार प्रकृतिवाद के अनुसार दुःख कोई पदार्थ नहीं केवल सुख के अभाव का ही नाम दुःख है अथवा ऊष्णता के न होने का नाम ही शीत है। इसी नियम के अनुसार उन लोगों को यह भी विवश होकर मानना पड़ेगा कि चेतन्यता ही प्रधान पदार्थ है, हम नहीं समझते कि वह कैसे भोले सत्युगी दार्शनिक विद्वान् हैं जो उस चेतन्य पदार्थ की सत्ता को स्वीकार नहीं करते जिसके आधार पर वे अपनी साइंस झाड़ रहे हैं। यदि उस चेतन्यता की कुछ सत्ता ही नहीं है तो उनकी कही हुई बातों का ही क्या अस्तित्व हो सकता है वैसे तो वे यूनानियों के द्वारा सुनी सुनाई भारतियों की दार्शनिक बातों के अनुसार अभाव से भाव नहीं मानते पर यहाँ पर मान बैठे। इससे यह बात सब प्रकार सिद्ध होगई कि बिना शिक्षा के प्राप्त किये मनुष्य इसी प्रकार टक्कर खाता फिरता है।

५—पश्चिमी विद्वान् कहते हैं कि संसार में कोई भी नवीन बात नहीं होती केवल पुरानी ही बातों को नवीन रूप दे दिया जाता है। यदि इस बात पर उनको पूरा २ विश्वास है तो ज्ञान के विषय में भी यही मानना पड़ेगा। क्योंकि जड़ पदार्थों से ज्ञान प्रधान है।

६—पशु पक्षियों के बच्चे अपने शरीर की रक्षा का ज्ञान स्वभाव से ही रखते हैं। पर मनुष्य का बच्चा बिना दूसरों का

सहायता के कुछ नहीं सीख सकता। इससे भी यही सिद्ध होता है कि मनुष्य को वाह्यज्ञान का आवश्यकता है।

## वेदों की आवश्यकता

१—जब यह बात सब प्रकार सिद्ध होगई कि मनुष्य विना शिक्षा दिये कुछ नहीं सीख सकता तो यह आवश्यक था कि वह परमपिता ज्ञान देने का उत्तम प्रबन्ध करे। संसार के सम्पूर्ण पदार्थ व्यर्थ होते, यदि ज्ञान न होता। मानलो हमारे सामने अच्छे-अच्छे पदार्थ रक्खे हैं यदि हमको उनका ज्ञान नहीं है, तो वह व्यर्थ है। यदि बच्चे के सामने केवल चित्र ही चित्र हों और भूगोल का ग्रन्थ न हो तो वह व्यर्थ है।

इसी प्रकार यदि मनुष्य के सामने केवल यह सृष्टि-रूप माडिल (चित्र) ही होता, तो वह उसमें चाहे कितना ही सिर मारता पर सब व्यर्थ था। इसीलिये परमेश्वर ने संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का मूल ज्ञान वेदों में दे दिया। योरुपादि ने जो विना वेदों की सहायता के इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे उसी प्रकार समझो जिस प्रकार कोई बालक काशी का नाम सुन भागे और फिर वह चित्र में भी उसे देखले। इसी प्रकार मिश्र और यूनान से जो प्राकृतिक बातें उन्होंने सुनी थीं उनको सृष्टि-चित्र में भली प्रकार देखकर जान लिया। जिन बातों की चर्चा मिश्रादि के ग्रन्थों में न थी उनमें वे भी कोरे बाबाजी हैं। इससे अधिक इस बात का और क्या प्रमाण हो सकता है कि जब तक भारतीय ग्रन्थ यहाँ नहीं पहुँचे थे वे लोग अपनी उन्नति के यौवन काल में भी स्त्रियों में जीव नहीं मानते थे।

२—प्रकृति का यह एक नियम देखा जाता है कि जो जीवधारी जितना सामर्थ्यवान अधिक होता जाता है। उसके लिये उसके माता पिता उतनी ही कम सहायता देते चले आते हैं।

सृष्टि का दूसरा नियम यह भी है कि जो प्राणी जितना शीघ्र समर्थ होजाता है वह उतना ही घटिया दर्जे का होता है। यहाँ पर हमारे मनमें यह विचार उठता है, कि जब सृष्टि में बलवान जीव निर्बलों को उत्तरोतर अपना भोजन बना लेते हैं अथवा दबाते रहते हैं तो फिर यह जीव अपने निर्बल बच्चों के साथ इतने बड़े निस्स्वार्थभाव का परिचय क्यों दे रहे हैं अथवा यों कहा जा सकता है कि एक ही प्राणी में यह दो विभिन्न गुण कैसे उत्पन्न हुये। बहुत से भोले भाई कदाचित् विद्युत-विद्या से अनभिज्ञ होनेके कारण इन दोनों को धन विद्युत और ऋण विद्युत का ही परिणाम कह उठेंगे। पर यह उनकी भूल होगी, क्योंकि सृष्टि नियम ही हम को यह बतला रहा है कि निस्स्वार्थ-भाव प्राणियों की पदवी की उच्चता के साथ २ बढ़ता जाता है। अथवा यों कहना चाहिये कि ज्ञान के साथ २ निस्स्वार्थ भाव भी बढ़ता जाता है। और ज्ञान की घटती के साथ २ कम होता जाता है। विद्युत-ज्ञान से कुछ भी समता नहीं रखती, क्योंकि वह जड़ता से सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक प्राणी अपने से घटिया श्रेणी के प्राणी को भोजन बनाने पर विवश देखा जाता है क्यों कि उसकी शारीरिक बनावट ही वैसी बनाई गई है। जब संसार में कोई बात भी अकारण नहीं होती तो फिर यह विवशता अकारण कैसे हो सकती है। इसका यही कारण है कि जीव ज्यों २ ज्ञान शक्ति (ब्रह्म) की ओर पग रखता जाता है, उतना ही वह उच्च कोटि का होता जा रहा है और जितना प्रकृति (जड़ता) की ओर झुकता जाता है उतनी ही निस्स्वार्थ-भाव से शून्य और घटिया श्रेणी का होता जाता है।

संसार में भी हम यह देखते हैं कि जहाँ स्वार्थ है, वहाँ प्रेम नहीं है प्रेम केवल निस्स्वार्थ-भाव में ही देखा जाता है। इसलिये यह बात अनिवार्य्य है कि आदिम मूल सृष्टि में उस

महान कर्तृ ज्ञान-सामर्थ्य शक्ति (परमात्मा) ने मनुष्यादि की रक्षा-शिक्षा का सब से अधिक उत्तम प्रबन्ध किया होगा। यह बात हम पीछे ही दिखला चुके हैं कि रक्षा, शिक्षा, प्रेम, सामर्थ्य और ज्ञान एक दूसरे से बिल्कुल जुटे हुये हैं. जब सृष्टि में भी माता पिता अपने बच्चों को शिक्षा सब प्रकार के प्राणियों में आवश्यकतानुसार कर रहे हैं तो क्या उस परमपिता परमेश्वर और पूज्य देवी माता ने मूल सृष्टि में सब की शिक्षा का कार्य न किया होगा मनुष्य के बच्चे तो कुछ भी बिना शिक्षा के सीख ही नहीं सकते पर साथ से ही सिंह का बच्चा भी कुछ दाँवघात नहीं सीख सकता। इन प्राणियों में मनुष्य को तो सब से अधिक शिक्षा की आवश्यकता है, इसलिये इसके लिये ज्ञान का प्रबन्ध अवश्य किया गया होगा। और क्योंकि मनुष्यों में भी सामर्थ्य भेद है, इसलिये वह ज्ञान सर्वोत्तम-समर्थ अथवा सब से अधिक निस्वार्थी मनुष्यों को सब से उच्च कोटि का ज्ञान दिया होगा और अन्य मनुष्यों और जीवों के लिये उनके पात्र के अनुसार प्रबंध किया होगा। जब यह बात सिद्ध होगई कि उच्च कोटि के जीव आवश्यकतानुसार उत्तरोत्तर अधिक देखभाल करते हैं; तो इसी नियम के अनुसार परम पिता ने भी मूल सृष्टि में जीवों की आवश्यकतानुसार अधिक समय तक रक्षा का प्रबंध किया होगा। अब हम इस समय भी अपनी आँखों से देख रहे हैं कि अनेक प्राणी अपने २ गर्भपिंडीर (खोलों) से प्रकट होते हैं अपनी रक्षा का प्रबंध आप ही करने लगते हैं तो फिर मूल सृष्टि के विषय में इस प्रकार की शंका करना बिल्कुल व्यर्थ है। जितनी २ योग्यता में प्राणी अब अपनी २ रक्षा करने लगते हैं उतनी ही योग्यता में उन्हों ने उस समय ऐसा किया। अन्तर केवल इतना हुआ कि इस समय माता-पिता के द्वारा बच्चों को समर्थ किया जाता है,

उस समय परम पिता ने साक्षात् स्वयं ऐसा किया। जो लोग यह कहने लगें कि अब वह ऐसा क्यों नहीं करता,वे मूर्ख हैं, क्योंकि शिक्षा का यह अटल सिद्धांत है कि जिस बात को बच्चे स्वयं कर सकते हैं उसको बड़ों को स्वयं नहीं करना चाहिये। नहीं तो वे संसार में असमर्थ होकर संसार से मिट जावेंगे। डारविन से नास्तिक भी इस को मानते हैं कि सृष्टि में व्यर्थ बातें नहीं हैं। दूसरे इस बात को तो सभी जानते हैं कि जो विशेषता मूल विशेष बात में होती है वह साधारण दशा में कैसे हो सकती है। अब रह गया यह प्रश्न कि उसमें तो दूसरों के द्वारा ही योग्य बनाने की शक्ति है, उसने स्वयं यह महान कार्य्य किस प्रकार कर लिया होगा सो अज्ञान है. क्योंकि वह सर्व शक्तिमान् है दूसरे जो अध्यापक बच्चों के द्वारा चित्र बनवा सकता है वह स्वयं और भी उत्तम चित्र बनाना जानता है। जो लोग इस बात को समझते हैं, कि किस प्रकार बच्चा माता के गर्भ में ठीक होकर उत्पन्न हो जाता है; वे मूल सृष्टि के विषय में भी भली प्रकार समझ सकते हैं जिनको इस विषय में भी भ्रम है वे उसके विषय में भी सदा भ्रम में पड़े रहेंगे। क्योंकि यह बात हम से नहीं हो सकती कि उनको सृष्टि बनाकर दिखादें।

## वेद किस प्रकार उतरे

अनार्य्य मतों के मानने वाले कहते हैं, कि खुदा ने एक २ पोथी आकाश से लेकर हजरतमूसा, ईसा और मुहम्मद के पास भेज दी ऐसी ही अनेक भोली बातों के आधार पर पश्चिमी विद्वान् ईश्वर और उसके ज्ञान को नहीं मानते परन्तु वेद इस प्रकार पोथों के रूप में नहीं फेंके गये। जिस प्रकार वेदों का ज्ञान मनुष्य को दिया वह स्वभाविक ही विधि है। जिससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। आदि सृष्टि में जो मनुष्य हुये वे

सब के सब प्रलय से पूर्व के भिन्न २ अपने संस्कारों को लेकर हुये उनमें चार मनुष्य जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य. और अङ्गिरा थे, सब से अधिक ज्ञानी थे । अब ऐसी दशा में जब कि मनुष्य बिना शिक्षा के कुछ जान ही नहीं सकता तो इस दशा में भी उन पर जो चारों वेदों का ज्ञान अनुपम प्रकट हुआ उसे ईश्वर के सिवा किसका ज्ञान कह सकते हैं, इसी से वेदों में परमेश्वर को गुरू भी कहा गया है। मैक्समूलरादि अनेक विद्वान् वेदों को संसार के सम्पूर्ण ग्रन्थों से पुराना मानते हैं इसके साथ ही पश्चिमी लोग वेदों में विद्याओं को भी दबे शब्दों में स्वीकार करते हैं। यदि मनुष्य. ईवोल्यूशन-थ्योरी के अनुसार शनैः शनैः ज्ञान वृद्धि करता, तो उन में विद्याओं का नाम भी न होता वरन् वही ग्वालों के गीत होते जैसे कि कभी वे बतलाते थे। जब योरुप के सम्पूर्ण विद्वान् एक स्वर से इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारतीय लोगों ने सम्पूर्ण विद्याओं का आविष्कार किया और भारतीय लोग वेदों को उनका आधार बतलाकर बात २ में वेदों के प्रमाण देते और माँगते हैं तो फिर वेदों को मनुष्यों का आविष्कार बता-कर अपनी बात को क्यों थोती करते हो ? तो फिर क्यों यह कहते हो कि मनुष्य पुरानी ही बातों को नवीन रूप देता है।

ऐसा जान पड़ता है कि इन विद्वानों के हृदय से पोपों के हस्ताक्षर द्वारा मुक्ति मिलने का मोह अभी नहीं छूटा। भला इन मृत पुरुषों की आत्माओं के आगे इन विद्वानों की आत्मायें क्या उत्तर देंगी जिन्होंने जीवित अग्नि में जलते हुये भी पोपों से यही कहा कि भूमि नारंगी की भाँति गोल है और २४ घंटे में अपनी कीली पर घूम जाती है।

—:o:—

## वेदों के विषय में कुछ प्रश्नोत्तर

अनार्य्य—वेद ईश्वर का ज्ञान तो दूर रहा, किसी समझ-दार मनुष्य का भी ज्ञान नहीं है।

आर्य्य— प्यारे भाई क्यों ?

अनार्य्य—उसमें तो पागलों की सी बक है।

आर्य्य—भाई इसका कोई प्रमाण दो।

अनार्य्य—जैसे चत्वारि शृंगा त्रियोऽस्यपादा'''इस मंत्र का अर्थ है कि चार हैं सींग उसके तीन हैं पांव उसके, दो हैं सिर उसके और सात हैं हाथ उसके तीन जगह बँधा होने पर भी वह बैल ढौंकता हुआ मनुष्यों में घुस गया।

आर्य्य—भाई तुम छन्द शास्त्र को जानते हो ?

अनार्य्य—जानता हूँ।

आर्य्य—शब्दालङ्कार और मूल अर्थ में कुछ भेद होता है या नहीं ?

अनार्य्य—बहुत अन्तर होता है।

आर्य्य—तो भाई यह भी अलङ्कार है।

अनार्य्य—इसका अर्थ क्या है ?

आर्य्य—व्याकरण युक्त वेद।

अनार्य्य—किस प्रकार ?

आर्य्य—संज्ञा, अख्यात, आसर्ग और निपात यह चार सींग हैं। तीनों काल ही तीन पाँव हैं। ध्वन्यात्मक और स्फोटा-त्मक यह दो सिर हैं। सात विभक्ति ही सात हाथ हैं। वृषभ का मूल अर्थ वर्षा करने वाला है अर्थात् ज्ञान की वर्षा करने वाला। शब्द छाती, कंठ और मुख में ही बंधा हुआ है। ऐसा जो व्याकरण सहित वेद ( शब्द ) है वह उन चार ऋषियों में आया।

अनार्य्य—यह तो तुम्हारी गढ़ंत है, इसका प्रमाण दो ?

आर्य्य—देखो वेद भाष्यादि ग्रंथ।

अनार्य्य—पुराणों में जो वेद ब्रह्माजी के चार मुख से निकले हुये बताये जाते हैं।

आर्य्य—इसका मूल अर्थ यह है कि ब्रह्माजी के द्वारा वे चारों वेद अन्य मनुष्यों तक पहुँचे।

अनार्य्य—लोग कहते हैं कि वेद अब नहीं हैं उनको तो कोई लेकर चला गया।

आर्य्य—भाई यह बात किसी समय वेदों की रक्षा के लिये बनाई थी।

अनार्य्य—वेदों में स्पष्ट ज्ञान क्यों नहीं है ?

आर्य्य—स्पष्ट ज्ञान होता तो मनुष्य की बुद्धि कुछ भी उन्नति न करती।

अनार्य्य—वेदों में तो इतिहास है।

आर्य्य—कैसे जाना ?

अनार्य्य- सिंध, गंगा, इंद्रादि के नाम हैं।

आर्य्य—इन पदार्थों के नाम से पूर्व यह शब्द थे या नहीं।

अनार्य्य—अवश्य होंगे।

आर्य्य—वे शब्द कहाँ से आये।

अनार्य्य—वेदों से ही आ सकते हैं।

आर्य्य—तो फिर तुम्हारा विचार ठीक नहीं।

अनार्य्य—वेद किसी पूरे वैयाकरणी ने नहीं बनाये

आर्य्य—भाई तुमने यह कैसे जाना ?

अनार्य्य—देखो ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद......इस मंत्र में जो पद्भ्यां () शूद्रोऽजायत पद है उसमें पञ्चमी विभक्ति ठीक नहीं है। क्योंकि पांव से तो शूद्र नहीं उत्पन्न होते।

आर्य—क्या तुमने व्याकरण में व्यत्यय नहीं पढ़े क्या तुम व्याकरण के अपवादों को नहीं समझते ? क्या तुम नहीं जानते कि वेदों का व्याकरण संस्कृत के व्याकरण से भिन्न हैं।

अनार्य—संस्कृत में यदि अपवाद हैं तो कुछ बुराई नहीं यदि किसी स्थान पर भाव बिगड़ता हो तो व्याकरण के विरुद्ध पद रखने से कुछ दोष नहीं कालिदास से कवि को भी ऐसा ही करना पड़ा है। पर परमेश्वर तो सर्वज्ञ था क्या उसके पास छन्द पूरा करने के लिये और कोई पद न था।

आर्य—भाई इस बात को तो तुम भी मानते हो कि छन्द की पूर्ति के लिये बड़े से बड़े विद्वान् को भी ऐसा ही करना पड़ता है इसलिये तुम्हारी यह बात आप ही कट गई कि वे किसी वैयाकरणी ने नहीं बनाये।

अनार्य—मानलो पूरे वैयाकरणी मनुष्य के समान ही वेद ने एक अशुद्धि कर दी तो फिर इसमें वेदों का महत्व ही क्या हुआ।

आर्य—(१) भाई प्रथम तो वेदों का ज्ञान ही मनुष्य के पात्र की अपेक्षा पूर्ण है। यह कोई परमेश्वर के पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा नहीं क्योंकि उसका ज्ञान तो अनन्त है। (२) दूसरे वेद मंत्र कवियों को यह भी अधिकार देते हैं कि देखो छन्द भंग के भय से भाव का अनर्थ न कर देना। (३) वेदों का वाक्य द्वारा भाव प्रकाशित करने की विधि ( महावरे ) भी भिन्न हैं जिस प्रकार कि भिन्न भाषाओं में हैं (४) यहां पर पद्भ्या शब्द बड़े ही मार्के की बात है।

अनार्य—वह मार्का क्या है ?

आर्य—प्रथम यह कि द्विज लोग तो गुण, कर्म और स्वभाव से ही श्रेष्ठ हैं पर शूद्रत्व में जन्म ही श्रेष्ठ है। दूसरे इस में यह भी रहस्य है कि पद शब्द और तप शब्द का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि पद और तप का संध्या आदि में और

व्यवहार में है। अर्थात् वेद मन्त्र यह बतलाता है कि शूद्र दुःख सहन करता हुआ भी सदा सेवा करे, कभी अपने हृदय में अहंकार को न आने दे। शूद्र शब्द का मूल अर्थ भी यही है।

अनार्य—आप चार ही वेद गा रहे हैं और हमने सुना है वेद बहुत हैं।

आर्य—मूल संहिता तो चार ही हैं पर वैसे वेद (ज्ञान) असंख्य हैं।

अनार्य—बहुत से मनुष्य तो उपनिषदादि को भी वेद मानते हैं।

आर्य—यह भी ठीक है इसको पौराणिक काल में समझना।

अनार्य—कोई २ तो तीन ही वेद बताते हैं।

आर्य—चारों वेदोंमें ज्ञान, कर्म, उपासना तीनही विद्या तोहैं।

अनार्य—वेद में स्पष्ट विद्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाला एक सा मन्त्र नहीं है।

आर्य—बहुत से मन्त्र हैं।

अनार्य—कोई प्रमाण दो।

—यथा गाय त्र्युष्णिगनुष्टुप बृहती पीङ्क्तिस्त्रुष्टुप जगत्यै। अथर्ववेद के इस मन्त्र में सातों छन्द हैं।

अनार्य—मन्त्रों पर ऋषियों के नाम क्यों हैं।

आर्य—उन्होंने उन मन्त्रों के तत्व को जाना था इस कृतज्ञता के लिये उनके नाम लिख दिये।

अनार्य—जब पिछले संस्कारों के ही अनुसार वेदों का ज्ञान दिया गया तो और मनुष्यों को भी हो सकता है।

आर्य—यह संभव है।

अनार्य—न्युटन ने वेद कब पढ़े थे जो उसे वेदों की आकर्षण विद्या का ज्ञान हुआ।

आर्य—उनके जीवन से प्रकट होता है कि वे स्वभाव से ही महात्मा थे वे पिछले जन्म में अवश्य वेदज्ञ होंगे।

अनार्य—उस समय तो भारत भी वेदज्ञ न था।

आर्य—यह असम्भव है हिमालय में आज भी मिल जावेंगे। भारत में न सही यह असंख्य ब्रह्माण्ड तो भरे पड़े हैं।

अनार्य—फिर वेदों के पढ़ने की क्या आवश्यकता रही।

आर्य—जब वेद न पढ़े जायँगे तो न्युटन से विद्वान् ही क्यों उत्पन्न होंगे।

अनार्य—जब वेद पूर्व सृष्टि के कर्मों के अनुसार ही उन चार पुरुषों को दिये तो वे क्या सृष्टि के मध्य में नहीं दिये जा सकते ?

आर्य—ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि प्रायः मुक्ति की अवधि प्रलय के अंत में ही समाप्त होती है। वेद का ज्ञान मुक्ति से लौटे हुये मनुष्यों को ही दिया जाता है। सृष्टि के मध्य में देने से आदिम मनुष्यों के साथ अन्याय है। और बार २ देने की आवश्यकता नहीं है।

अनार्य्य—इस विषय में तो आप के ऋषियों में ही मत भेद है कि मुक्ति से लौटते हैं वा नहीं लौटते।

आर्य्य—भाई मत भेद कुछ नहीं लोगों की समझ का फेर है।

अनार्य्य—यह आप कैसे कहते हैं ?

आर्य्य—(१) जिस ऋषि ने लौटना नहीं बताया वहां आवागमन से वा स्वर्ग से तुलनात्मक मुक्ति का महत्व प्रकट करने के लिये कहा है, जैसे एक ब्राह्मण परदेस को जा रहा था, उस से किसी वैश्य ने यज्ञ कराने के लिये कहा तो उसने उत्तर दिया कि सेठजी अपना प्रबन्ध कर लेना मैं अब नहीं आऊंगा। इसका यह तो आशय नहीं है कि वह फिर अपने घर लौटेगा ही नहीं।

(२) एक ग्रामीण बालक नित्य प्रति पास के नगर की पाठशाला में पढ़ने जाता था, एक दिन संध्या के समय गुरु ने उससे कहा परीक्षा निकट है, तुम यहीं रहने का प्रबन्ध करो दूसरे दिन जब वह घर से चला तो उसकी माता ने नगर से कुछ पदार्थ मोल मंगाया इस पर बालक ने उत्तर दिया मैं अब घर नहीं आऊंगा इसका आशय यह नहीं है कि वह बालक कभी घर नहीं आवेगा।

(३) जब मनुष्य एक बार मुक्त हो जाता है तो फिर यह मुक्ति का तांता टूटना ही कठिन हो जाता है। क्योंकि नियत समय के पश्चात् जब वह जन्म लेता है तो वहाँ पर भी उसको मुक्ति के पूरे साधन मिलते हैं।

## वेदों का समय

सृष्टि सम्वत् और वेदों के समय के विषय में पश्चिमी विद्वानों में बड़ा मत भेद है। उनकी कल्पना है कि वेदों का समय १० सहस्र वर्ष पूर्व ईसा से अधिक नहीं है। चाहे समय के विषय में कुछ मत भेद सही पर इस बात को तो प्रोफेसर-मैक्समूलर आदि विद्वान् भी मानते हैं कि वेद इस संसार में सब से पुराने ग्रन्थ हैं। अब तक पश्चिमी विद्वान बाईबिल के सिद्धान्तानुसार भूमि की आयु ६ सहस्र वर्षों के भीतर ही मानते थे परन्तु भूगर्भ शास्त्र ने यह भ्रम दूर कर दिया है इसलिये कुछ हठधर्मी विद्वानों को छोड़कर सभी विद्वान् भूमि की आयु २ अर्ब वर्ष के लगभग मानते हैं। आर्यों का सृष्टि सम्वत् भी उनके संकल्पानुसार इस सन् १९२१ ई० में १९७२९४९०२५ वर्ष है। कुछ विद्वानों की कल्पना है कि ऋग्वेद तो सब से पुराना वेद है और शेष तीन वेद पीछे बने क्योंकि उन में ऋग्वेद के मंत्र ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। पर उनकी यह कल्पना निर्मूल है। स्वयं ऋग्वेद में (जिसे

वे सब से पूर्व १५०० वर्ष. ई. से पहिले ही वर्त्तमान रूप में दिया हुआ मानते हैं ) चारों वेदों का नाम आता है यथा—

तस्माद्य जात सर्व हुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छंदांसि जज्ञिरे तस्माद्य जुस्तस्माद् जायत ॥

वेद मन्त्र ईश्वर का ज्ञान होने से ऐसे पूर्ण हैं कि जिस विषय के लिये जो मन्त्र बनाया गया है ( दिया गया है ) उसके सिवा अन्य पदों का मन्त्र उस भाव को प्रकट ही नहीं कर सकता । इसी लिये चारों वेदों में जहाँ जिस विषय के लिये जिस मन्त्र की आवश्यकता हुई उसे ज्यों का त्यों ही रखना पड़ा, यही नहीं जहाँ उस मन्त्र से भाव के सन्दिग्ध होने की भी शंका हुई तो उसमें कुछ परिवर्त्तन भी कर दिया है, इन नवीन शब्दों और पदों में भी यही विशेषता रक्खी गई है । चारों वेदों में ज्ञान, कर्म, उपासना तीन ही विषय हैं। ऋग्वेद में ज्ञान विषय प्रधान है, यजुर्वेद में कर्म और सामवेद में उपासना विषय प्रधान है, परन्तु अथर्ववेद में तीनों विषयों को प्रधान और अत्यन्त आवश्यक बातें रक्खी गई हैं । इसके दो प्रधान कारण हैं । प्रथम यह कि इन तीनों विषयों का उससे भी अधिक गहरा सम्बन्ध है जितना कि अङ्कगणित, रेखागणित और बीज गणित का है अथवा जितना भूगर्भशास्त्र, इतिहास और भूगोल का है । जिस प्रकार कोई भी मनुष्य उस समय तक इतिहास का पूरा पंडित नहीं हो सकता जब तक शेष दो विषयों को कुछ न जाने । इसी प्रकार शेष दो विषयों के विषय में समझना चाहिये ।

ज्ञान, कर्म, उपासना में से प्रत्येक शेष दो के बिना व्यर्थ है । इसीलिये चारों वेदों में तीनों २ बातें रक्खी गई हैं। योरुप अब तक ज्ञान और कर्म को ही प्रधान समझता था पर अब उसकी आंख खुल गई है और वह उपासना को भी स्थान

देना चाहता है । यदि ईसाई मत योरुप के सामने टूटी फूटी उपासना भी न रखता तो वह ज्ञान और कर्म की इस अपूर्ण उन्नति को भी कभी प्राप्त नहीं कर सकता था दूसरा कारण यह है कि सब मनुष्य चारों वेदों के पंडित कभी नहीं हो सकते इसलिये वे यदि १ वेद भी पढ़ते हैं तो कुछ सफलता प्राप्त कर लेते हैं चारों वेदों की इस गूढ़ बातको न समझकर कुछ विद्वान् कहते हैं कि चारों वेद अपने रचे जाने के बहुत काल पीछे वर्त्तमान रूप में लाये गये। इसके लिये वे इस पौराणिक दन्त-कथा का भी प्रमाण देते हैं कि व्यासजी ने वेदों को क्रम दिया था । इस का यह आशय नहीं है कि मन्त्रों के ढेर में से छाँटछाँट कर चारों वेदों का नाम तो व्यासजी से पूर्व ग्रन्थों में भी आता है। निस्सन्देह चारों वेदों को अध्यायों में बांटना, असंख्य ब्राह्मणादि ग्रन्थों और विद्वानों की सहायता से प्रत्येक वेद मन्त्र पर ऋषि छन्द देवतादि का नाम लिखना, वेदों के पठन पाठन की विधि में कुछ न कुछ सुधार उन्होंने अवश्य किया होगा । सम्भव है वेदों को लिपिबद्ध करने का कार्य्य भी उन्होंने ही प्रथम किया हो। जैसा कि अलबेरूनी के ग्रंथों से भी कुछ २ प्रकट होता है।

## खटकती हुई बातें

पश्चिमी विद्वानों के हृदय में यह बात नहीं बैठती कि ईश्वर ने इन चारों ऋषियों को कौन से मुख से सुनाकर वेदों का ज्ञान दिया यदि हम लोग विचार करें तो यह बात तो सीधी सी है।

(१) जो विद्वान् किसी विषय पर मनन करते रहते हैं वे जानते हैं कि दैवयोग से कभी २ उनको ऐसी विलक्षण बातें सूझ जाती हैं जिनकी उनको कुछ भी आशा नहीं होती। सम्भव है प्रकृति के उपासक पश्चिमी विद्वान् यही समझे हों

कि जितनी अच्छी बातें सूझती हैं उसमें केवल हमारी ही सम्पूर्ण सामग्री है। अथवा इस कार्य में उस महान् शक्ति का कुछ भी हाथ नहीं है जिसके आधीन यह सम्पूर्ण नियम अपने कार्य को कर रहे हैं। इसलिये हम उनके परदादा न्यूटन की युक्ति सुनाते हैं। वह कहता है कि "मैं तो कुछ भी आविष्कार नहीं करता। मेरी दशा तो ठीक उस वच्चे से मिलती है, जो समुद्र के किनारे बैठा हुआ है, कभी तो उसके हाथ में सीपी और घोंघे आजाते हैं, कभी मोती आजाता है।"

इस बात को पश्चिमी विद्वान् अपनी खोपड़ी मेंसे निकाल कर फेंक दें कि जो मनुष्य कोई एक आविष्कार कर लेता है वह मानों बुद्धि का ठेकेदार हो गया वह जिस विषय में चाहे टाँग अड़ा सकता है और तो और फ़ोनोग्राफ़ के तत्व को जानने वाला सूप (छाज) भी ठीक नहीं बना सकता। स्वयं न्यूटन की जीवनी में ऐसी ही एक घटना हुई थी। जाड़े के दिनों में उसने एक बूढ़ी बढ़ईन से कहा कि माई मेरी किवाड़ें में दो छेद करदो। इस पर बूढ़ी ने कारण पूछा तो कहा मेरे पास दो बिल्लियाँ हैं एक छोटी एक बड़ी वे रात्रि में बाहर तो जा सकती नहीं इस ही में मल मूत्र करदेती हैं। बूढ़ी ने कहा तो श्रीमान् इसमें दो छेदों की कोई आवश्यकता नहीं यह कार्य्य तो एक छेद से ही चल सकता है। पहिले तो यह सुन कर वह चुप होगया पर जब समझ गया तो बड़ा ही लज्जित हुआ निश्चय रखना चाहिये कि बड़ों से भूल भी अवश्य ही होती है जब यह बात तै होगई कि मनुष्य तो अपने पात्र के अनुसार केवल निमित्त मात्र है वास्तविक ज्ञान दाता कोई अन्य ही शक्ति है तो जिस प्रकार साधारण मनुष्यों को बातें सूझ पड़ती हैं इसी प्रकार उन सर्वोत्तम, आदर्श और जीवन मुक्तों को वेद का ज्ञान हुआ।

अब रही यह बात कि कौन से मुख से ईश्वर ने वेद सुनाये सो इसके तत्त्व को समझना चाहिये कि मुख से ही दूसरों को ज्ञान दिया जाता है अथवा और किसी विधि से भी ज्ञान दिया जाता है।

(१) प्रकृति और घटना में कौन सा मुख है जिसको देखते ही बड़े २ पोथे रच दिये जाते हैं।

(२) फोनोग्राफ़ में मनुष्यों का सा मुख कहां होता है।

(३) झंडी और तारादि में कौन सा मुख होता है।

जिस प्रकार विद्वान् लोग इन बातों से सारा ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं इसी प्रकार वे महापुरुष जिन्होंने सर्वोत्तम प्रोफेसर (ईश्वर) कालेज में शिक्षा पाई थी साक्षात् ज्ञान स्वरूप परमेश्वर से वेद ज्ञान को खींच लेते हैं।

पाठको! मुख तो एक आत्मा का औज़ार (करण कारक) है जिसमें इतनी शक्ति है कि वह बिना औज़ार के ही कार्य्य करले उसे औज़ार की क्या आवश्यकता है। हाँ यदि योरुपियन ईश्वर होता तो उसे हाथ के होने पर भी छुरी-कांटे की आवश्यकता तो कम से कम अवश्य होती।

महाशय गण! करण कारक तो वाक्य में वहीं आना चाहिये जहाँ कर्त्ता में क्रिया के करने की शक्ति न हो। इसमें आप का कुछ भी अपराध नहीं क्योंकि आप तो बोलते ही इस प्रकार हैं कि लड़की पांव से चलती है। भला लड़की से उसके पाँव क्या भिन्न हैं। भला जब मनुष्य के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार किसी विषय को लेकर बैठते हैं तो वे कौन से मुख से एक-दूसरे को विषय का ज्ञान देते हैं? यह तो प्राकृतिक ही हैं, जब इनको ही मुख की आवश्यकता नहीं तो इनसे भी उत्तरोत्तर बहुत सूक्ष्म, चेतन्य सर्व शक्तिमान् परमेश्वर को मुख की क्या आवश्यकता. साधारण मनुष्यों को ज्ञान देने के लिये मुख की

आवश्यकता इसलिये है कि आत्मा प्रकृति ( माया ) की क़ैद में है अब यदि उस बन्दी आत्मा तक उसकी मित्र आत्माओं को कोई समाचार पहुँचाना है तो श्रवण रूपी जेलर के द्वारा ही पहुँचा सकते हो। यदि सूचना देने वाला भी किसी दूसरी कोठरी का बन्दी है तो उस अपने मुख रूपी जेल अध्यक्ष के द्वारा ही श्रवण रूपी अध्यक्ष के द्वारा सूचना देनी होगी। अब यदि दोनों में से एक स्वतंत्र है तो एक ही अध्यक्ष का सहारा लेना पड़ेगा। यदि दोनों ही स्वतंत्र हैं तो किसी के सहारे की भी आवश्यकता नहीं। जिस समय राजा किसी विशेष महात्मा से मिलना चाहता है तो मार्ग बिल्कुल ही साफ़ हो जाता है। जब परमेश्वर भी स्वतंत्र और चारों मनुष्य भी स्वतंत्र थे तो समाचार के लिये किसी के सहारे की क्या आवश्यकता।

## मित्रों के अन्तिमतीर

पश्चिमी विद्वान् यह सन्देह करते हैं कि भला चारों ऋषियों को एक ही से कुछ मन्त्र कैसे सूझे।

हम नहीं समझते कि मित्रों को इस विषय में शंका करने की क्या आवश्यकता है जब ये स्वयं मानते हैं कि रसल वैलेस और डारविन को अथवा न्यूटन और लैब्नित्स को एक २ ही बात का एक साथ ज्ञान हुआ। अब रही यह बात कि शब्दों का एक साथ ज्ञान कैसे हुआ? यह तो मोटी सी बात है, प्रत्येक भाषा की कविता में ऐसे उदाहरण मिल जावेंगे जहाँ कवियों ने बिना एक दूसरे का देखे पद के पद एक से रच दिये हैं। भाव के सामने शब्द तो मोटी सी बात है।

## एक महा भ्रम

कुछ लोगों को यह भी भ्रम है कि वेदों में बहुदेव वाद को छोड़कर ईश्वर वाद का नाम भी नहीं है। इस भ्रम का प्रथम

कारण तो वर्त्तमान बहुदेव वाद है। दूसरे वेदों में ईश्वर के अनेक नाम हैं और तीसरे विकास वाद हैं। विकास वाद की आशा के अनुसार प्रथम बहुदेव वाद और फिर ईश्वर वाद होना चाहिये। जो लोग यूनान से और भारत के इतिहास तथा प्राचीन ग्रन्थों से अनभिज्ञ हैं वेही ऐसी निर्मूल कल्पनाओं में पड़े रहते हैं। अधिक न लिखते हुये हम केवल उन्हीं के कथनानुसार संसार के सब से पुराने ग्रन्थ का प्रमाण नीचे देते हैं। ईश्वर ऋग्वेद में कहते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्त द्वायुस्तद् चन्द्रमाः
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म रूपं ता आपः स प्रजापतिः

अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, जल, प्रजापति, ब्रह्म उसीके नाम हैं, हम लोग मुसल्मान, ईसाइयों की भाँति उनित अक्षरों पर चिढ़ते नहीं, वरन् बड़े ही प्रसन्न होते हैं।

## ब्राह्मण ग्रन्थों का समय

आर्य्य लोग बाहर से आये अथवा भारतवर्ष ही में उत्पन्न हुये यह बात अभी झगड़े में ही पड़ी हुई है। भारत के महा विद्वानों में दो ही विद्वान ऐसे हैं जो हमारे पूर्वजों को विदेश से आया हुआ बतलाते हैं उनमें एक तो लो० तिलक हैं जिनसे हम सहमत नहीं दूसरे भगवान दयानन्दर्षि हैं जो कि आर्य्य जाति के पूर्वजों की जन्म भूमि त्रिविष्टप में मानते हैं, हमारे विचारमें स्वामीजी का त्रिविष्टप वर्त्तमान तिब्बत नहीं है, वरन हिन्दू कुश ध्यान, इरान, और यूराल के मध्य का देश है, इसका दक्षिणी भाग इस समय भी उपजाऊ है, किसी समय यह सारा देश बड़ा उपजाऊ था, यह बात अब दबे हुये नगरों से

सिद्ध हो गई है। चाहे हमारे पूर्वज बाहर से आये चाहे भारत में जन्में, पर यह बात तो सब प्रकार सिद्ध है कि सृष्टि के आदि में आर्य्य लोग इस पुण्य भूमि में मौजूद थे। आर्य और अनार्य ग्रन्थों में उत्तरीय भारत के तीन नाम लिखे मिलते हैं १ ब्रह्मावर्त्त २ आर्य्यावर्त्त ३ मध्य देश इन में पहिला नाम सब से पुराना है यह नाम उन्हीं ब्रह्मा के नाम पर रक्खा गया था जिन्होने चारों वेदों को चारों ऋषियों से पढ़ा था। यह नाम आदिम ब्रह्मा के नाम पर ही रक्खा जा सकता है। क्योंकि पश्चात् नाम भी व्यास नाम की भांति पदवी वाचक होगया था। आर्य्यवर्त्त नाम उस समय रक्खा गया जब कि आर्य्य लोग उत्तरी भारत में फैल गये मध्य देश नाम सब से नवीन है।

ब्राह्मण ग्रंथों में ब्रह्माजी का नाम आता है। दूसरे ब्राह्मण ग्रंथों का विषय ऐसा सविस्तार और गम्भीर है कि उसे बिना लिखे कार्य्य नहीं चल सकता। इसके साथ ही ग्रंथों से यह भी सिद्ध हो गया है कि ब्रह्माजी की पुत्री सरस्वती ने लिखने और गाने आदि की विद्यायें निकालीं। आविष्कार की माता आवश्यकता है, जब ब्राह्मण ग्रंथों की रक्षा का प्रश्न सामने होगा तभी यह विद्यायें भी निकाली गई होंगी। सरस्वती ने यह बातें ब्रह्माजी के जीवन काल में ही निकाली थीं, यह बात भी ग्रंथों से सिद्ध हो चुकी है। इसलिये यह अनिवार्य्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थ इस से कुछ पहिले ही बनने आरम्भ हुये। पश्चिमी विद्वान् भी कुछ बातों के आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों का समय वेदों से ५०० वर्ष पश्चात् मानते हैं। ठीक २ निश्चय न होने पर उनकी भाँति हम भी इसी समय को स्वीकार करते हैं। यह ग्रंथ असंख्य थे, इस समय ११२७ की संख्या सुनी जाती है पर मिलते नहीं। कुछ थोड़े से ग्रन्थ अपने बच्चे स्वरूप में देखे जाते हैं। इन्हीं ग्रन्थों का नाम इतिहास, पुराण, गाथादि भी है। वैदिक

साहित्य में सब से अन्तिम पुराण हैं जिन को व्यास जी ने बनाया था । इसलिये इन ब्राह्मण ग्रन्थों का समय वेदों से ५०० वर्ष पीछे से, ईसा से ३००० वर्ष पूर्व तक समझना चाहिए।

## विशेष बातें

विचार शील लोग अवश्य पूछेंगे कि इन ब्राह्मण ग्रन्थों के रचने का क्या कारण था । पश्चिमी विद्वानों ने ( नहीं २ हमारे ही अभाग्य ने ) इन ग्रंथों के रचे जाने के कारण के विषय में बड़ा भ्रम उत्पन्न कर दिया है । वे ब्राह्मण ग्रंथों को वेदों का परिशिष्ट भाग बतलाते हैं । परन्तु वास्तव में ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की कुंजी हैं । यह बात तो वे लोग भी मानते हैं । कि वेदों के मन्त्रों की उन में व्याख्या है ।

यह ग्रंथ कोई पशु यज्ञ के वाद-विवाद पर नहीं लिखे गये इन का लिखा जाना वैसाही स्वभाविक है जैसा कि अन्य ईश्वरीय कार्य्य । ज्ञान और उपासना का धर्म ही परोपकार है । आदिम आर्य्यों ने ( जो कि पूर्ण ज्ञानी और उपासक थे ) यह उचित समझा कि वेद के गम्भीर विषयों की व्याख्या कर देनी चाहिये जिस से मनुष्यों का भला हो, साथ ही उनके लिये यह कार्य स्वेच्छा पर न था वरन् वेद की आज्ञा भी यही थी कि सब मनुष्यों में इसका प्रचार करो जैसा कि यथे माँवा चम... आदि की श्रुतियों से प्रकट होता है । प्रचार करने के लिए आवश्यक है कि कुछ तैयारी भी आवश्यक करली जावे ।

ब्रह्मा जी की आयु जो हमारी कल्पना के अनुसार ५०० वर्ष के लग भग होजाती है उसमें शंका करना व्यर्थ है क्योंकि, ( १ ) ३०० वर्षके योगी तो स्वयं अंग्रेजों ने भारत में देखे हैं । ( २ ) १५० वर्ष के लगभग आयु वाले मनुष्यों का नाम सन् १६२३ ई० में ब्रह्मा और मंचोरिया देश में पत्रों में लिखा था ।

(३) आर्ष ग्रन्थोंमें भी देवताओं की आयु कई गुनी लिखी है।
(४) इसको तो सभी मानते हैं कि पहिले मनुष्यों की आयु अब से बहुत अधिक होती थी। क्योंकि वे पूर्ण ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी थे वे पुष्ट भोजन करते थे। उनके जीवन में बहुत ही सादगी थी।

## यज्ञ-महिमा

यज्ञ शब्द का मूल अर्थ शुभ कर्म है, किन्तु यज्ञ का पारिभाषिक, लौकिक, अर्थ, हवन ही है। इस का भी कारण है। क्यों कि संसार का कोई शुभ यज्ञ के कर्म हवन से बढ़ कर नहीं है। अथवा यों कहना चाहिये कि संसार के जितने शुभ कर्म हैं, वे सब हवन के अन्तर्गत् हैं। जिन कर्मों से संसार में दुःख और अशान्ति फैले वे पाप हैं। और जिन से सुख और शान्ति का प्रसार हो उन को शुभ कर्म पुण्य-धर्म कहते हैं। शान्ति उस अवस्था का नाम है कि जब मनुष्यों में रोग न हों, भोजनादि का अभाव न हो, परस्पर ईर्षा द्वेष और झगड़े न हों। जो शान्ति संसार के सम्पूर्ण शुभ कर्मों से नहीं फैल सकती वह केवल यज्ञों से फैल सकती है। क्योंकि अन्य शुभ कर्म अशान्ति को दूर कर सकते हैं, पर यज्ञ अशान्ति को उत्पन्न ही नहीं होने देते इस स्थान पर हम साइन्स के द्वारा यह सिद्ध करेंगे कि यज्ञ संसार में न रोग उत्पन्न होने देते हैं, न भोजनादि का अभाव होने देते हैं, न संसार में अन्य उपद्रव होने देते हैं।

किसी समय पश्चिमी वैज्ञानिकों को वेदों में अश्रद्धा होने के कारण यह भ्रम होगया था कि हवन से कार्बन-डायाआक्साइड उत्पन्न होती है, जिस से संसार का अमूल्य स्वास्थ्य नष्ट होता है। कुछ थोड़े दिन हुये कि परमहंस राम कृष्ण, स्वामीरामतीर्थ स्वामी विवेकानन्दजी ने प्राच्य विद्वानों को मायावाद अथवा

अद्वैतवाद पर मोहित देखकर उन को वैदिक सभ्यता का चेला बनाना चाहा था, इसलिये इन महापुरुषों ने भी यज्ञों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा था, क्योंकि यह एक नियम होता है कि प्रचारक जिन बातों को अपने मार्ग में बाधक जानता है उन का खंडन ही किया करता है। इस विषय पर हम आगे लेखनी उठावेंगे कि अद्वैतवाद बौद्धों के मायावाद और पश्चिमी प्रकृतिवाद में नाम मात्र ही अन्तर है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी रसायन वेत्ता मि० त्रिले ने सोचा कि, संसार की सब जातियों में जो लकड़ी जलाकर रोग दूर करने की विधि है वह कहां तक ठीक है, उन्हों ने अपनी गहरी जांच से जाना कि लकड़ी जलाने से फ़ार्मिक आल्डी हाइड नामक गैस निकलती है जिस से सब प्रकार के रोग-कृमि नष्ट हो जाते हैं। यह वही पदार्थ है जिस के ४० भागों में जल के १०० भाग मिलाने से फार्मेलिन नामक रोग नाशक, विकार बाधक और कृमि नाशक औषधि बिका करती है। लकड़ी जलाने से पर्याप्त उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये किसी अन्य ऐसे पदार्थ की आवश्यकता है, जो बहुत सी फा-आ-हा-गैस उत्पन्न कर सके मि० त्रिले ने यह भी अनुभव किया है कि खांड जलाने से और भी अधिक फा० आ० हा० गैस उत्पन्न होती है।

रसायन में गन्ने अंगूर और फल तीन प्रकार की खाँड मानी जाती है, यह तीनों प्रकार की खाँड हवन की सामग्री में डाली जाती है। इसके सिवा सामग्री में जो जो, अनुपम रोग नाशक और शक्ति तथा प्राण प्रदाता पदार्थ डाले जाते हैं, उन को विद्वान् भली प्रकार जानते हैं। भोले भाई यह कहा करते हैं कि फार्मेलिन आदि औषधियों को छिड़ककर ही जब रोग दूर हो जाते हैं तो फिर हवन के द्वारा इतना झगड़ा फैलाकर रोग कृमियों को नाश करने की क्या आवश्यकता है। यदि वे कुछ

भी विचार करें तो ऐसा कभी न कहें क्योंकि यह औषधियाँ कृमियों को उस प्रकार नष्ट नहीं कर सकतीं जिस प्रकार हवन की तप्त वायु नष्ट कर सकती हैं। साथ ही औषधियाँ कृमियों को मार ही सकती हैं, पर उस अशुद्ध वायु को जिस में विषैले कीड़े उत्पन्न होते और मरते हैं, बाहर कदापि नहीं निकाल सकती। इस के विरुद्ध हवन की गर्मी उस वायु को हलकी करके बाहर निकालकर भी फेंक देती है और जो नवीन शुद्ध वायु आती है उसका भी संस्कार कर देती है। हवन के आदि में जो कुछ समय तक घृत की आहुतियों से अग्नि को बहुत प्रज्वलित किया जाता है उसका यही आशय है। यह एक मानी हुई बात है कि बहनी हुई दूपित वायु इतनी हानि नहीं पहुँचाती जितनी कि बन्द शुद्ध वायु हानि पहुंचाती है। वायु के शुद्ध होने से जल, और जल के शुद्ध होने से बनस्पति और अन्नादि पदार्थ भी शुद्ध होते हैं। इन पदार्थों के शुद्ध होने से मनुष्य जाति में न रोग आते हैं न बुद्धि मलीन होने से पाप बढ़ता है।

इन पदार्थों के जलाने से जहाँ रोग नाशक वायु उत्पन्न होती है उसके साथ ही कार्बन डाया आक्साइड भी उत्पन्न होता है इस गैस को भोले भाले लोग केवल दम घूटने वाली और हानि कर ही जानते हैं पर बात यह नहीं है। सोडा लैमनेट में हम इसी को पीते हैं जिस से प्यास बुझती और अन्न पचता है। इस दशा में यह आक्षेप हो सकता है कि सोडा पान का फेफड़ों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता पर हवन में का. डा. आ. का प्रभाव पड़ सकता है। बात ठीक है, पर विचार से शून्य है। यदि हवन की वायु का फेफड़ों पर प्रभाव पड़ता तो पास के मनुष्यों का दम अवश्य घुटना चाहिये था पर ऐसा नहीं होता क्योंकि यह गैस यद्यपि साधारण वायु से डेढ़ गुना भारी होता है, पर गर्मी

से हलका होकर ऊपर को उड़ जाता है। और इस अवस्था में यदि वह साँस के भी साथ जाता होगा तो विशुद्ध सोडे का प्रभाव रखता होगा। जिस प्रकार शीशे में से प्रकाश तो चला जाता है पर गर्मी भीतर से बाहर नहीं लौट सकती. इसी प्रकार का.डा.आ. भी सूर्य के प्रकाश को नहीं लौटने देता। क्यों कि यह गैस भारी होने से भूमि के पास ही रहता है इसलिए भूमि और इसके पर्दे के बीच में गर्मी कैदरहती है। यदि संसारमें यह गैस न होती तो कोई भी प्राणी न जी सकता, वैज्ञानिकों का कथन है कि यदि यह गैस आधी भी हो जावे तो अफ्रीका सा गर्म देश भी टंडरा के समान ठंडा बन जावे कार्बन-डा.आ के अधिक होनेसे गर्मी का अधिक होना स्वभाविक है। गर्मी के अधिक होने से कई प्रभाव पड़ा करते हैं, प्रथम यह कि भूमि के पासकी वायु हलकी होकर ऊपरउठेगी और उसके स्थान पर ठंडी वायु आने लगेगी, दूसरे वाष्प जो वायु के साथ मिलकर रोग उत्पन्न करती है उसे भी दूर भगादेगी. तीसरे का.डा.आ. और जल के मिलने से बनस्पति भी उत्पन्न होती हैं, उसके निम्न लिखित प्रमाण हैं।

( १ ) फ्राँस के प्रसिद्ध स्थान यूवरीन में जहाँ कार्बन निकालने वाले स्रोत वृक्ष बहुत हैं।

( २ ) ज्वालामुखी से भी गस निकलती है इसी से इन के आस पास भी बहुत बनस्पति होती है।

( ३ ) वैज्ञानिकों का कथन है कि प्राचीन समय में यह कार्बन अधिक था तो उस समय बनस्पति भी अधिक थी।

यह तो एक साधारण सी बात है कि जिन जिन स्थानों में जल और गर्मी अधिक है वहीं पर बनस्पति भी है। यही नहीं हवनों से वर्षा भी होती है। क्योंकि—

(१) वायु के गर्म होकर उठने से समुद्र की सजल वायु आया करती है।

(२) गर्म और सर्द वायु के मिलने से वर्षा हुआ करती है।

(३) वायु के धीरे २ ऊपर जाने से वर्षा हुआ करती है।

(४) वायु में कणों के मिलने से भी वर्षा हुआ करती है।

लोगों में एक यह भी भ्रम फैला हुआ कि आर्य्य लोग जो मंत्र पढ़ते हैं, वे इस से अग्नि की पूजा करते हैं। यदि वे हवन मंत्रों को पढ़ें, तो उनको ज्ञात होगा कि उनमें क्या भाव भरे हुये हैं। इन मंत्रों में हवन के लाभ और आर्य्य-शास्त्र के मूल सिद्धान्त भरे हुये हैं। इन मंत्रों के पढ़ने से मनुष्य में उच्च भावों का सञ्चार होता है। वह स्वार्थ त्यागी होने का क्रियात्मक अभ्यास करता है और इन सब से बढ़कर बात यह है कि वेदों की रक्षा होती है। वेद मंत्रों के मनन से मनुष्य अपने मन को इच्छानुसार चलाने वाला और संयमी बनाता है। संसार में जिसने अपने मन को अपना जितना दास बना लिया, उसने संसार की सुख राशि में से उतना ही भाग ले लिया। यह एक स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि मनुष्य जिस बात पर अधिक मनन करता है, वह उसी में उत्तरोत्तर कृतकार्य होता जाता है। कुछ भोले भाई यह भी कहा करते हैं कि घी को हवन में जलाने से तो यही अच्छा है कि उसको स्वयं खा लिया जावे। यह वही बुद्धि के दिवालिये हैं जो अन्न को भूमि में गलाना व्यर्थ समझ कर उसको भून कर चबा लेना ही उचित समझे बैठे हैं। यह बोर्नेव द्वीप के वही वनवासी लोग हैं जो एक ही पक्ष की बोई हुई ऊख के टुकड़ों को इस लिये उखाड़ कर खा जाते कि उस से तो चीनी बहीं नहीं झड़ती। याद रखिये एक रत्ती भर घृत साधारण रीति से खाये जाने से उतना लाभ नहीं पहुँचा सकता, उतना स्वादिष्ट

नहीं हो सकता जितना बघार देने से हो सकता है। हम नहीं समझते कि जब सिगरेट और मांस की दुर्गन्ध से स्वास्थ्य नष्ट नहीं होता, चाय पकाने से का. डा. आ. उत्पन्न होकर संसार को नष्ट नहीं करती तो हवन से हानि कैसे हो सकती है, यज्ञों के इस महात्म्य को सुनकर बहुत से थोते ज्ञानी कह उठेंगे कि यज्ञ क्या हुये इन्हों ने तो मानो प्रकृति को अपना दास ही बना डाला। भोले लोगो, हमारा तो धर्म सनातन से यह ही कहता आ रहा है कि प्रकृति के दास मत बनो, वरन् उसको अपना दास बनाओ। वर्तमान प्राच्य सभ्यता ने प्रकृति को जिस प्रकार अपना दास बना डाला है उसे कौन नहीं जानता, पर भेद इतना है कि पश्चिम ने रावण की भांति प्रकृति को दास अवश्य बनाया पर साथ ही आप भी दास बन गया है। इस बात की तो हमको बड़ी प्रसन्नता है, कि इन्होंने इस जादूगरनी को अपना दास बनाने में बड़ा साहस दिखलाया, पर दुःख इस बात का है कि वे भी इस पर भी मोहित होकर दास बन गये। महात्मा एन्ड्रो जैक्सन डेवीसन ने सत्य कहा है, और बिल्कुल सत्य कहा कि इस जगत में वे ही पदार्थ अपूर्णावस्था में हैं, जिन्हें पूर्ण करना मनुष्य का कर्तव्य है। और वे ही पदार्थ नहीं हैं जिनको मनुष्य स्वयं उत्पन्न कर सकता है। योरुप ने भोजनादि के प्रश्न को हल करने के लिये यह यज्ञ किया था पर इस पर भी भोजन का प्रश्न गम्भीर होता जाता है। उसने संसार में शान्ति, संतोष और प्रेम के लिये यह कार्य्य किये थे पर आज अशान्ति, असंतोष और द्वेष बढ़ रहा है। इसका कारण यही है कि उसमें यज्ञ शब्द की गम्भीरता को नहीं समझा हमने संसार में सच्ची शान्ति फैलाकर दिखला दी थी और किसी समय फिर फैलाकर दिखला देंगे क्योंकि अब हमारी नद्रा भंग हो गई है, अब हमारी थकन उतर गई है।

## उपनिषदों का समय

ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् उपनिषदों के बनने का समय आया। संसार का नियम है जब तक मनुष्य के भोजन का ठीक २ प्रबन्ध न हो उसे कुछ ज्ञान ध्यान नहीं सूझता। जब जब भोजनादि आनन्द पूर्वक मिलने लगते हैं तो उस समय अज्ञानी मनुष्य तो ऐसी बातों में फँस जाते हैं जो उनको नष्ट कर देती हैं पर ज्ञानी मनुष्य वह कार्य्य करते हैं जिस से अपना और दूसरों का कल्याण हो। इसी बात को ध्यान में रखते हुये आर्य्यों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों के द्वारा भोजन का प्रश्न हल किया। आज बीसवीं शताब्दी में इस बात के सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रही कि भोजनादि का यज्ञों से क्या सम्बन्ध है। पश्चिमी विद्वान् कहते हैं कि जब आर्य्य लोग यज्ञादि के बन्धनों से ऊब गये तो उनके हृदय में यह प्रश्न उठे कि इन देवताओं का बनाने वाला कोई और ही है। यह उनकी घर की बात है जो मनुष्य उपनिषदों के बनाने वाले मनुष्यों को यज्ञादिक से ऊबा हुआ बतलाता है मानों वह प्रत्यक्ष ही इस विषय में अज्ञानी है। इन ग्रन्थों में यद्यपि मुख्य विषय परमेश्वर का ही है परन्तु स्थान २ पर यज्ञों का महत्व भी दर्शाया गया है। वेदान्त दर्शन जो कि उपनिषदों का निचोड़ है उसके दो ही प्रधान विषय हैं। प्रथम पूर्व मीमांसा अर्थात् कर्मकाण्ड दूसरे उत्तर मीमांसा अर्थात ब्रह्मवाद। निस्सन्देह यह हो सकता है कि आर्य्यों के हृदय में यह प्रश्न उठे हों और उनका उत्तर उन्होंने अपने आचार्य्यों से माँगा हो यह बात तो उपनिषदों के प्रश्नोत्तरों से भी प्रकट होती है। अब जो यह लोग यह कहते हैं कि उन प्रश्नों के जो मन माने उत्तर उन्हें सूझे उनको उपनिषदों में लिख दिया। इसके कहने में थोड़ा-सा

भेद है। आदिम आर्य्यों के लिये यह विषय कुछ गम्भीर न था परन्तु आगे चलकर बुद्धि स्रोत ज्यों २ मलीन होने लगा यह प्रश्न भी गम्भीर होता गया। आदि में जब लोगों के हृदय में प्रश्न उठा तो उनके समाधान के लिये अधिक व्याख्या की कुछ भी आवश्यकता न हुई। उनके सामने यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय रख दिया, हमारी कल्पना है कि आदि में प्रश्न उठते ही इस अध्याय को ईशोपनिषद् का नाम नहीं दिया गया बल्कि आगे चल कर ऋषियों के लिये यह प्रश्न बहुत गम्भीर हो गया और न्यून से न्यून एक उपनिषद् और बनाया तभी इसको यह नाम दिया गया मूल उपनिषद् यही है और क्यों कि यह उपनिषद् यजुर्वेद का अन्त और वेदों के सम्पूर्ण विषयों का निचोड़ है इसी लिये उपनिषद् विद्या का दूसरा नाम वेदान्त विद्या भी है। उपनिषद् शब्द में भी ऐसा ही श्लेष है क्योंकि इसके अर्थ हैं उपासना और समिति। आर्य्यों के सामने जब कोई प्रश्न उठा उन्हों ने उसे वेद से ही हल किया है, यदि किसी बात पर वेद की मुहर नहीं लगी तो उसे उन्हों ने कभी नहीं माना। इस समय थोड़े से उपनिषद् ही ऐसे हैं जिनको वैदिक कह सकते हैं शेष अवैदिक काल से सम्बन्ध रखते हैं किसी समय इनकी संख्या बहुत थी। पश्चिमी विद्वान् उपनिषदों का समय ब्राह्मण ग्रन्थों से ५०० वर्ष पीछे से मानते हैं क्योंकि हमारे पास उनके विरुद्ध समय मानने के लिये कुछ भी प्रमाण नहीं है इसलिये इसको ही स्वीकार करते हैं। हमको ठीक २ तो ज्ञान नहीं पर अनुमान से यह कहा जा सकता है कि कृष्ण भगवान की गीता और बादरायण व्यास का वेदान्त इनके अन्तिम काल में बने इस लिये इनका समय वेदों के १००० वर्ष पीछे से ईसा से लगभग २००० वर्ष पूर्व तक है।

---

## उपनिषदों का महत्व

कुछ दिनों से इन उपनिषदों का टूटा फूटा अनुवाद पश्चिमी भाषा में होगया है, जिसको पढ़कर वे लोग आश्चर्य्य और हर्ष के मारे फूले नहीं समाते। अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी और दारा शिकोह भी इनको देख कर इसलाम को छोड़ बैठे थे। अबुल-फ़ज़ल ने कुरान का सम्बन्ध वेदों से जोड़ने के लिये अल्लोप निषद् लिखा था।

## सूत्र-ग्रन्थों का समय

ज्ञान प्राप्ति के तीन द्वार हैं, प्रथम ईश्वर उपासना दूसरे आत्मा का पूर्ण ज्ञान, तीसरे सृष्टि विज्ञान। पहिले दो विषय तो उपनिषदों में आगये तीसरा विषय सूत्र ग्रन्थों में है। जिस प्रकार ज्ञान, कर्म, और उपासना का गहरा सम्बन्ध है, इसी प्रकार इन तीनों का सम्बन्ध है। संसार में ज्ञान प्राप्त करने वाले तीन ही प्रकार के होते हैं। यह तीनों कोटि के मनुष्य सारे युगों में होते हैं पर किसी समय किसी कोटि के मनुष्यों की संख्या बढ़ जाती है और किसी समय किसी कोटि के मनुष्यों की। अपने २ मात्र के अनुसार तीनों ही मार्ग अच्छे हैं। बच्चे के लिये दूध जो लाभ पहुँचाता है चिड़ियों के लिये अन्न और सिंह के लिये मांस वही मूल्य रखता है। जब ज्ञान प्राप्ति के प्रथम दोनों मार्ग ठीक होगये तो फिर आर्य्यों ने तीसरे मार्ग की तैयारी करदी। इसलिये उन्हों ने एक २ वेद मंत्र पर गहरी दृष्टि डाली। जिस मंत्र का गूढ़ भेद जिस ऋषी ने जाना उसी ने उसको स्पष्टीकरण करना आरम्भ कर दिया और जब वह कार्य्य समाप्त होगया तो उस विषय को सूत्रों के रूप में लिख दिया जिससे लिखकर और कंठ करके रक्षित रखने में सुगमता मिले। जिस प्रकार वेदों से

ब्राह्मण ग्रन्थों की और ब्राह्मण ग्रन्थों से उपनिषदों की संख्या अधिक थी इसी प्रकार सूत्र ग्रन्थों की संख्या उपनिषदों से भी अधिक थी। सूत्रग्रन्थों का समय विद्वान् उपनिषदों से ५०० वर्ष पीछे मानते हैं। हम भी इन से सहमत हैं। सूत्रकारों में पतञ्जलि सब से पश्चात् अर्थात् १८५ वर्ष पू० ई० में हुये हैं इसलिये सूत्रों का समय वेदों से १५०० वर्ष पीछे से १८५ वर्ष. पू० ईसा समझना चाहिये।

## विशेष बात

( १ ) इसी काल में चारों उपवेद भी बने थे। उनमें भी केवल चार विशेष विद्याओं का विषय था।

( २ ) जिस प्रकार वेदों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में है इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों की व्याख्या उपनिषद् और सूत्रों में है।

## अन्य वैदिक ग्रन्थ

( १ ) जब वर्त्तमान चतुर्युगी के सतयुग के १० सहस्र वर्ष बीत गये तो मनु जी ने मनुष्यमृत्ति नामक धर्मशास्त्र सूत्रों में बनाया था इसकी पद्य पीछे हुई। प्रधान धर्मशास्त्र यही है।

( २ ) पद्य रचना का कार्य्य त्रेता युग में वाल्मीकिजी ने आरम्भ किया। इस युग के ग्रन्थों में रामायण, नारद स्मृति और वशिष्ठस्मृत्ति का ही कुछ विकृत रूप मिलता है।

( ३ ) द्वापर युग में पूर्व मीमांसा, गीता, महाभारत, व्यासस्मृत्ति, पाराशरस्मृत्ति पाराशरगृहसूत्र और पुराण बने। साथ ही व्यासजी ने शारीरिक सूत्र भी लिखे।

# ग्रन्थों के विषय में विशेष बातें

## कराल-कलिकाल

आदि सृष्टि के मनुष्य बड़े ही प्रतिभासम्पन्न थे। जिस प्रकार जल का स्रोत आगे चलकर बहुत ही मैला हो जाता है इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि भी सतयुग से लेकर कलियुग के अन्त तक इसी प्रकार मलीन होती जाती है। बुद्धि के शुद्ध और अशुद्ध होने का यह चक्र केवल युगों में ही अपना प्रभाव नहीं डालता वरन् मन्वन्तरों, वर्ष समुदायों वर्षों, ऋतुओं, मासों, पक्षों, रात्रियों और दिनों में भी प्रभाव डालता है। पर इससे यह परिणाम निकालना कि यह सब कलियुग का दोष है हमारा कुछ अपराध नहीं महा मूर्खता है। शरद ऋतु में रोगों के दूर होने में बड़ी सहायता मिलती है तो क्या हम भादों और कुआर के मास में औषधि न करके यही कह देंगे कि हमारा कुछ भी अपराध नहीं है सब भादों-कुआर का दोष है। ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर सन्ध्या करने से चित्त के रोकने में बड़ी सहायता मिलती है तो क्या आर्य्य लोग ज्येष्ठ मास की सन्ध्या न करके अपने को निर्दोष सिद्ध कर सकते हैं। जो मनुष्य केवल प्रातःकाल की सन्ध्या में ही कुछ मन को रोक सकता है उस को उस मनुष्य से अधिक फल नहीं मिल सकता जो शीतोष्ण दशा में भी मन को रोक सकता है। इसी वास्ते कहा गया था कि सतयुग की १०० वर्ष तपस्या कलि की १२ वर्ष की वैसे ही तपस्या के समान है जिस प्रकार काल का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार देश का पड़ता है। संसार का कोई भी पदार्थ अपने मूल में न बुरा है न अच्छा पात्र, कुपात्र के विचार से ही बुरा वा अच्छा ठहराया जाता है वही आपत्ति जिसमें फँस

कर मनुष्य अपनी कुल मर्यादा और कीर्ति को खो बैठते हैं रामचन्द्र भगवान, प्रताप, और गुरूगोविन्दसिंह के लिये कीर्ति का कारण बनी। वही एक धन है जिसे धर्मात्मा यज्ञों में लगाकर स्वर्ग सुख प्राप्त करता है और पापी उसे वेश्या को देकर आतिशक का रोग मोल ले लेता है। इतनी व्याख्या हमको प्रसंग-वश ही लिखनी पड़ी। अभिप्राय केवल इतना ही है कि अब २ मनुष्य की बुद्धि मलिन होने लगती है तो विद्वानों को उनके समझाने के लिये अधिक ग्रंथ लिखने पड़ते हैं। जो बालक मेधावी होते हैं वे संकेत मात्र से ही बात को समझ लेते हैं पर जो बालक मूर्ख होते हैं उन्हें पढ़ाने के लिये बहुत बकना पड़ता है। इसी नियम के अनुसार सतयुग से त्रेता में त्रेता से द्वापर में और द्वापर से कलियुग में अधिक ग्रंथ लिखे जाते हैं।

## कौन सच्चा है

भारतीय विद्वानों और पश्चिमी विद्वानों में वैदिक साहित्य और वैदिक सिद्धान्तों के विषय में कहीं २ बड़ा मत भेद है। उसका कारण यह है कि अनेक मत मतांतरों ने ग्रन्थों में गड़बड़ कर डाली है। पश्चिमी विद्वान् उसी को सत्य मानते हैं। उस के कारण हैं (१) हमारा अवैदिक आचरण (२) हमारी परतन्त्रता (३) योरुप का माया वाद (४) पश्चिमी सभ्यता को ठेस लगने का भय (५) ईसाई मत को हानि पहुँचने का भय। हमारे पास अपनी बातों को सत्य सिद्ध करने के ऐसे अकाट्य प्रमाण हैं कि दस बीस वर्ष में पश्चिम पूर्व होजायगा।

# सारे संसार में वैदिक धर्म का प्रचार था

(१) वेद ने सारे संसार में धर्म प्रचार की आज्ञा दी गई।

(२) मनु जी ने अपने धर्म शास्त्र में भी लिखा है कि संसार के मनुष्य यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करें। यथा—

एतद्देशे प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्व मानवः॥

(४) संसार की भिन्न २ जातियां आज भी अपना प्रथम राजा और धर्म शास्त्र प्रणेता मनू-मनः-मनस वा मीनस को ही मानती हैं।

(४) मिश्र में कभी वैदिक सभ्यता फैली हुई थी
(मि० ब्रूसेव)

(५) आर्यों ने संसार में उपनिवेश बनाये।
(मि० पी० कोक)

(६) अमेरिका के हारपर्स नामक मासिक पत्र में मि० फ्रायर ने लिखा था कि बौद्ध मत का प्रचार कोलम्बस के जाने से बहुत पहिले अमेरिका में था।

(७) पेरू देश में सूर्य्य का वैसा ही मन्दिर है जैसा कि उनाव (दतिया) में है।

(८) सन् १८८४ ई० के डेली ट्रब्यून पत्र में मि० ब्राउन ने लिखा था कि हिन्दू ही संसार के धर्म, साहित्य और सभ्यता के जन्मदाता हैं।

(६) कम्बोडिया और पूर्वी द्वीप समूह की जातियां हिंदुओं की बातें मानती हैं।

(१०) महाभारत के युद्ध में सारे देशों के राजा आये थे।

(११) इस्लाम से पूर्व अरब में हिंदुओं की ही सब बातें थी।
(अल बेरूनी)

( १२ ) यूनान के नदी पर्वतों के नाम भारत के नदी पर्वतों के समान हैं।

( १३ ) स्केन्डीनेविया के पुराने नगरों और देवताओं के नाम वैदिक थे।

( १४ ) ईसाई मत से पूर्व जर्मनों में हिन्दू धर्म की बहुत सी बातें थीं।

( १५ ) ब्रिटेन के पुराने मनुष्य आवागमन को मानते थे।

( १६ ) आर्य्यों का पवित्र चिह्न 卐 है और योरोपियन जातियों का ईसा से पूर्व का भी चिह्न + वा × है।

( १७ ) तुर्क स्थान में जो नवीन खोज से पुराने पत्रादिक मिले हैं। उनसे सिद्ध होता है कि वहाँ कभी वैदिक सभ्यता फैली हुई थी।

( १८ ) चीन की ज्योतिष सम्बन्धी परिभाषा बिल्कुल वैदिक है। उनका चीनी भाषा में कुछ अर्थ नहीं।

( १९ ) फ्रेंच विद्वान् जैकोली रांट भी यही लिखते हैं

( २० ) प्रायः भोले मनुष्य स्मृति आदि ग्रंथों में लिखी हुई बातों को ही वैदिक धर्म समझ कर उसे एक देशीय धर्म कहने लगते हैं पर यह उनकी भूल है। यह बातें तो विद्वानों ने भारतवर्ष के लिये ही बनाई हैं अन्य देशों की परिस्थिति के अनुसार अन्य नियम बनाये जासकते हैं।

## सारी भाषा वैदिक भाषा से निकली है

भाषाओं के विषय में जो विद्वानों ने खोज की है वह नीचे लिखी जाती है।

( १ ) योरुप की सारी बोलियाँ लैटिन और ग्रीक भाषाओं से निकली हैं।

( २ ) अरबी भाषा इबरानी भाषा से निकली है।

( ३ ) वर्त्तमान फ़ारसी ज़न्द की भाषा से निकली है।

( ४ ) वैदिक भाषा से प्राकृत, प्राकृत से दो भाषा निकली हैं एक संस्कृत दूसरे देशीय भाषा।

( ५ ) मध्य एशिया में एक ऐसी भाषा का पता चला है जो संस्कृत से मिलती है विद्वानों का अनुमान है कि मंगोल जाति की भाषा उसी से निकली होगी।

( ६ ) लैटिन, ग्रीक, इबरानी, ज़न्दादि भाषा में वैदिक भाषा से बहुत ही मिलती हैं।

( ७ ) विद्वानों का निश्चय है कि सारी भाषा एक ही किसी पुरानी भाषा के विकार से बनी हैं। जब वेद संसार के पुस्तकालय में सब से पुरानी पुस्तक है तो यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि सारी भाषा उसी के विकार से बनी हैं। कुछ भाषा ऐसी भी हैं जिनका प्रत्यक्ष संस्कृत से कुछ सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता, परंतु जिस प्रकार देश काल के प्रभाव से जो अंतर ज़ंद की भाषा और फ़ारसी में पड़ गया है उसी प्रकार उन भाषाओं और वैदिक भाषा में पड़ गया हो यह बिल्कुल सम्भव है।

( ८ ) चन्द्रनगर के एक उच्च अधिकारी मि० जकोलीयट ने स्वा० दयानन्द से बहुत पहिले अपने ग्रंथ में यह लिखा था कि संसार के सम्पूर्ण मत और भाषा वैदिक धर्म भाषा के रूपांतर हैं। संसार का कल्याण उसी धर्म से होगा। इस विद्वान् ने फ्रेंचों से ईसा मत को छोड़ने की भी अपील की थी।

## आर्य्य लोग आदि सृष्टि से लिखते थे

कुछ लोगों का मत है कि आर्य्यों ने लिखना बहुत ही थोड़े दिनों से सीखा है, उनमें से कई तो वर्त्तमान अक्षरों को संसार की सम्पूर्ण पुरानी जातियों की वर्ण माला से पीछे बतलाते

हैं। अपनी इस बात के वे कई प्रमाण देते हैं जो कि नीचे लिखे जाते हैं।

( १ ) यह बात इवोल्यूशन थ्योरी के विरुद्ध है कि वैदिक वर्ण माला इतनी पूर्ण होते हुये सब से पुरानी हो।

( २ ) साहित्य को सूत्रों में रखने की प्रणाली बतलाती है कि आर्य्य लोग आदि में लिखना नहीं जानते थे।

( ३ ) आर्य्य लोगों में कंठस्थ ज्ञान की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

## समाधान

(१) विकास-वाद के थोतेपन को हम पीछे ही भली प्रकार दिखा चुके हैं, जब विकास-वाद के विरुद्ध वे वैदिक साहित्य को सब से पुराना और पूर्ण मानने पर विवश हैं फिर लिखने के विषय में सन्देह करना किसी प्रकार उचित नहीं।

(२) साहित्य को यदि सूत्रों में न रक्खा जाता तो उस समय में जब कि भोजपत्रादि पर लिखते थे साहित्य की रक्षा किस प्रकार की जाती भोज-पत्र खास की भाँति प्रत्येक स्थान पर नहीं मिलता था। सूत्रों में रखने से दो लाभ और थे प्रथम कंठ करके रक्षा करने में सुगमता। दूसरे विषय की मोटी २ बातें मस्तिष्क में रहने से उसपर मनन करने में सुगमता। आज ज़रा २ सी बात के लिये पुस्तक खोलते फिरते हैं इसी लिये वे किसी विषय पर पूर्ण मनन नहीं कर सकते जिसका फल यह होता है कि डारविन महोदय आज जो लिखते हैं कल उसका खंडन तैयार हो जाता है। कोई भी मनुष्य उस समय तक किसी विषय पर मनन नहीं कर सकता जब तक कि उस विषय का खाका उसके मस्तिष्क में खिचा हुआ न हो। तीसरा लाभ सूत्रों से पत्रों के अपव्यय से बचना था।

(३) आर्य्य जाति में कण्ठस्थ ज्ञान की इस समय भी प्रतिष्ठा है और सदा रहेगी। साहित्य की रक्षा का सब से उत्तम उपाय यही है।

## कुछ प्रमाण

(१) ब्राह्मण ग्रंथों का अतुल साहित्य बिना लिखे नहीं रह सकता। इस विषय पर हम पीछे भले प्रकार प्रकाश डाल चुके हैं।

(२) सूत्र ग्रंथों को पश्चिमी विद्वान् भी सब से पुराना मानते हैं उन्हीं में आपस्तम्ब सूत्र में ज्यौमेटरी (भूमिति) का विषय है। जिसको लोग पैथेगोरस की साध्य कहते हैं वह इसी सूत्र में दी गई है। अब विचारने की बात है कि ज्यौमेटरी की विद्या बिना लिखे कैसे आ सकती है।

(३) अङ्क-गणित, बीज-गणित, ज्योतिष विद्याओं को आर्य्यों ने निकाला, इसको पश्चिमी विद्वान् ही कहते हैं। अब विचार करने की बात है कि यह विद्या बिना लिखना जाने कैसे निकाली जा सकती है।

(४) यदि सूत्र केवल लिखना न जानने की दशा में बनाये थे तो व्याकरण को सूत्रों में क्यों लिखा। क्योंकि व्याकरण तो लिखना जानने से पीछे ही लिखा गया होगा।

(५) वेदों में लिखने के अनेक प्रमाण हैं यथा—

अ-उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम,

उत त्वः शृण्वन्न श्रणात्येनाम ॥ ऋ० सं० ॥

अर्थ—आश्चर्य है कि एक मनुष्य वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता। और सुनता हुआ भी नहीं सुनता। अब विचारिये कि वाणी को लिखने के सिवा देखा कैसे जा सकता है।

व-यद्यद् युत्तं लिखितमर्पणेन,
तेन मा सुस्रोत्र्ब्रह्मणाऽपि तस्यामि ॥

(अथर्व-संहिता)

अर्थ—मैं उसी ज्ञान से उसी ज्ञान का बीज बोता हूँ, जो १ उत्तम रीति से लिखा हुआ है उसका नाश न हो।

स-क एषा कर्करी लिखित । अथर्व ।

अर्थ— इनमें से कौन लेखनी लेकर लिखता है।

## आर्यों ने इतिहास लिखना बताया

आजकल के विद्वान् कहते हैं कि आर्य्य लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे। इसमें उनका कुछ भी अपराध नहीं है क्योंकि इस समय उनको कोई पूरा इतिहास नहीं मिलता इतिहास के विषय में उनकी कल्पना बिल्कुल ऐसे ही है जैसी कि उस मनुष्य की कल्पना है जो यह कहता है कि अकबर कोई बादशाह न था क्योंकि इस समय न तो उसके वंशजों का राज्य है न वह स्वयं है। उनका यह विचार प्रथम तो ऐतिहासिक तत्व ज्ञान के विरुद्ध है क्योंकि २ अरब वर्ष के इतिहास का ज्यों का त्यों रक्षित रहना किसी प्रकार न तो सम्भव है न कुछ लाभदायक यदि कभी कोई मनुष्य इस बात पर विचार करे कि इतिहास का मूल कारण क्या है तो वह हिन्दुओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा करेगा। इतिहास के लिखने का यह कारण नहीं है कि बादशाहों, जातियों, घटनाओं और सनों की लम्बी चौड़ी लिस्ट कंठ हो जावे, वरन् इसका यह कारण है कि मनुष्य काल सहित घटनाचक्र के प्रभाव को जानकर अपने जीवन में कुछ पाठ सीखे। वे यह तो मानते हैं कि इतिहास अपने को दुहराता है पर उनको इस का कुछ भी ज्ञान नहीं है कि इतिहास क्यों अपने को दोहराता है। चाहे हमारे भाई असंख्य

इतिहास के पोथे लिख मारे पर उनसे कुछ भी लाभ नहं, जब तक उनमें उस मूल कारण को न दिखलाया जावे। पश्चिमी लोग किसी घटना का कारण दिखलाते भी हैं तो ऐसे बुरे रूप से जिसे पढ़कर उनकी बातों में कुछ भी श्रद्धा नहीं रहती। ब्राह्मण ग्रन्थ तो दूर अपने बिगड़े हुये रूप में भी जो लाभ महाभारत, रामायण और करखे से पहुँचा सकते हैं वह सम्पूर्ण योरुप का इतिहास भी नहीं पहुँचा सकता। एक छोटा सा संकल्प जिस काल चक्र को दर्शाता है उसे असंख्य सम्वत सहित घटना भी नहीं दर्शा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि हम इस समय पश्चिमी विद्वानों की पाँव की धूल के बराबर भी मूल्य नहीं रखते, पर इसका यह आशय नहीं है कि हम इतने निलज्ज हो गये हैं जो अपने सामने सत्य का खून हो जाने दें। इसलिये आर्यों की इतिहास विद्या सम्बन्धी बातों के विषय में कुछ प्रमाण देते हैं।

## प्रमाण

(१) जिन ब्राह्मण ग्रन्थों को वे भी पुराना मानते हैं, उन्हीं में पूरा २ इतिहास है और उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प और गाथा भी है।

(२) महाभारत और रामायण में इतिहास के मूल सिद्धान्तों का अच्छा चित्र खींचा है।

(३) डाक्टर स्टाइन लिखते हैं कि भारत वर्ष में १२वीं शताब्दी में भी राज तरङ्गणी नामक इतिहास के लिखनेवाले कल्हण मिश्र से इतिहासज्ञ होते थे जिसने अपने इतिहास में ११ अन्य इतिहासों के नाम दिये हैं।

(४) मि० एच० ब्रस लिखते हैं कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जब योरुप सभी इतिहास का नाम भी नहीं

जानता था तब यहां भारत कल्हण से विद्वान् थे यदि आर्य्य लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे तो कल्हण का यह कार्य्य ईवोल्यूशन थ्यौरी के विरुद्ध मानना पड़ेगा।

( ५ ) मेगस्थनीज़ लिखता है कि चन्द्रगुप्त के दर्बार में देश की घटनाओं को लिखने वाले रहते थे।

( ६ ) हीवान सांग लिखता है कि चौथी शताब्दी में राजाओं के दर्बार में घटनाओं को नोट करने वाले रहते हैं इनकी पोथी का नाम नीलपत्री होता है। इससे तो योरुप का यह भी भेद खुल गया कि उन्होंने जो ल्युकुस के आधार पर इतिहास लिखना सीखा वह भारत से ही सीखा है।

## वैदिक साहित्य कहां चला गया

( १ ) अनेक बार जल प्रलय हुये।

( २ ) कितनी ही बार धर्म की हानि हुई।

( ३ ) कितनी ही बार नाना प्रकार के विप्लव हुये।

( ४ ) हस्त लिखित ग्रन्थों को अधिक मूल्यवान और अनावश्यक होने से जन साधारण नहीं रखते थे। बड़े २ धनवान और राजा ही रखते थे। जब राज्य परिवर्तन हुये तो उनके साथ ग्रन्थ भी नष्ट होगये।

( ५ ) नाना मतों ने उन ग्रन्थों को नष्ट कर दिया जिनमें उनके सिद्धान्त के विरुद्ध बातें थीं।

( ६ ) मुसलमानों ने वैदिक साहित्य को बड़ी हानि पहुंचाई।

( ७ ) संकुचित हृदय मनुष्यों ने ग्रन्थों को छिपाया अब भी भारत में असंख्य ग्रन्थ हैं।

( ८ ) शत्रुओं के भय से बहुत से ग्रन्थ गाड़ दिये गये जो अब भी मिलते हैं।

( ९ ) अज्ञानियों ने थोड़े से प्रलोभन में फंसकर ग्रंथ विदेशियों को दे दिये। फ्रांस, जर्मनी इंगलैंडादि में जो संस्कृत के कई लाख हस्त लिखित ग्रंथ रक्खे हैं, वह इसी प्रकार भारत से गये। उनमें से बहुत से लूट में भी गये थे।

( १० ) साधारण ग्रंथ इस योग्य तो होते नहीं कि उनकी रक्षा का विशेष प्रबन्ध ही किया जावे इसलिये अपनी आवश्यकता के काल के पश्चात् आपही नष्ट हो जाते हैं।

वेदों और विशेष ग्रंथों को छोड़ अन्य साधारण ग्रंथ एक चतुर्युगी से अधिक रक्षित नहीं रह सकते, यह स्वभाविक बात है। न उनकी कोई आवश्यकता रहती है क्योंकि वेद और मनुष्य की बुद्धि में ऐसे ग्रंथों के रचने की शक्ति है, जब २ मनुष्यों को आवश्यकता होगी ग्रंथ बनते चले जावेंगे। यदि सारे साहित्य की रक्षा का प्रबंध करें तो प्रथम यह बात असम्मभव है, दूसरे यह मनुष्य की बुद्धि के विकास को बन्द कर देगी इतने साहित्य की रक्षा में अपनी शक्ति को लगाने से मनुष्य उसी प्रकार ज्ञान शून्य हो जावेंगे जिस प्रकार दीन ब्राह्मणों ने वेदों की रक्षा में अपने सर्वस्व को अर्पण करके ज्ञान शून्यता प्राप्त की। जिस का पूरा २ विवेचन हमें आगे करेंगे।

( ११ ) एक ही विषय के जब कई ग्रंथ हो जाते हैं, तो उनमें से प्रचलित ग्रंथ को छोड़कर बहुधा सब नष्ट हो जाते हैं।

## वैदिक धर्म का प्रचार बन्द हो गया था

लक्षणों से जाना जाता है कि द्वापर युग के अंतिम वर्षों में धर्म और विद्या का प्रचार बंद हो गया था, इस के नीचे लिखे प्रमाण हैं।

( १ ) आर्य्यों में बहु विवाह, अयोग्य-विवाह का प्रचार देखा जाता है।

(२) लोगों में धर्म सम्बन्धी बातों का पूरा ज्ञान न होने से ढोंगों का नाम धर्म था।

(३) भीष्म से धर्मात्मा भी काशी नरेश की कन्याओं को बलात्कार से लाने में अधर्म नहीं समझते थे।

(४) यहूदियों और ईसाइयों के ग्रंथों में भी लिखा है कि उस समय लोग बड़े ही अन्याई और पापी थे। उन पर क्रुद्ध हो ईश्वर ने जल प्रलय कर दी।

(५) पारसियों का धर्म ग्रंथ जो वेदों की बातों को न समझने से बना, वह इसी समय रचा गया था।

(६) अलबेरूनी लिखता है कि महाभारत से पूर्व धर्म प्रचार बंद हो गया था। व्यासजी ने अपने चारों शिष्यों को वेद पढ़ाकर और बड़ा साहित्य लिखकर वेदों का पुनरुद्धार किया। वेद प्रचार किया, वर्त्तमान लिपि का भी प्रचार किया।

(७) भविष्य पुराण में भी मिश्री लोगों के शिक्षा प्राप्त करने का विषय है।

(८) महाभारत और पारसियों के ग्रंथों से भी धर्म प्रचार के लिये व्यासजी का जाना सिद्ध है।

## वैदिक धर्म के सिद्धान्त

(१) वेद ईश्वर का दिया हुआ ज्ञान है, इसी से वे स्वतः प्रमाण हैं।

(२) जो जैसा करेगा आवागमन के अनुसार उसको वैसा ही फल मिलेगा। जिस समय मनुष्य पूरा-पूरा योगी हो जाता है, तो उस समय उसे स्वतंत्रता की चरम सीमा (मुक्ति) मिल जाती है।

(३) ईश्वर, जीव, और प्रकृति तीनों पदार्थ नित्य हैं।

( ४ ) एक ही परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये उसका है मुख्य नाम ॐ है और गुण वाचक नाम असंख्य हैं।

( ५ ) मांस खाना पाप है, क्योंकि प्रथम तो वह दूसरे जीवों को कष्ट पहुँचाकर मिलता है। दूसरे वह मनुष्य से बल, बुद्धि, धैर्य और वीरता को दूर करके असहन शील, क्रोधी विचार शून्य और कायर बना देता है। अहिंसा ही परम धर्म है, पर हिंसक जीवों और दुष्टों को मारना अहिंसा का प्रधान अंग है शिखा उसका चिन्ह है।

( ६ ) पञ्च यज्ञ प्रत्येक द्विज के दैनिक धर्म हैं जो उनको नहीं करता वही शूद्र है।

( ७ ) प्रत्येक द्विज पर मातृऋण, पितृऋण और देव ऋण यह तीन ऋण हैं। इन्हीं के चिन्ह स्वरूप तीन धागों का यज्ञोपवीत हृदय पर होता हुआ पहिना जाता है।

( ८ ) जाति के सम्पूर्ण मनुष्य गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार चार भागों में बांटे जाते हैं, जिनको वर्ण कहते हैं। इन वर्णों का विशेष सम्बंध गृहस्थ ( सामाजिक रक्षा और भोजन ) से है, इसलिये साधारणतः यह वर्ण जन्म से ही होते हैं, परन्तु मनुष्यों के बिल्कुल योग्य और अयोग्य होने की दशा में वर्ण परिवर्त्तन भी हो सकता है।

( ९ ) लौकिक और पार-लौकिक उन्नति के लिये प्रत्येक आर्य्य का जीवन ब्रह्मचर्य्यादि चार आश्रमों में बांटा जाता है।

( १० ) स्त्री, पुरुष का वैवाहिक सम्बंध माता, पिता, गुरु, जाति और लड़के लड़की की प्रसन्नता और स्वीकृति से होता है इसमें लड़के, लड़की की प्रसन्नता प्रधान है। द्विजों में यह सम्बंध अटूट होता है। केवल उन्हीं लड़कों, लड़की का पुर्नविवाह हो सकता है जिनका पाणिग्रहण संस्कार मात्र हुआ हो।

# अवतार-विषय

यह बात सारे आर्य्य ग्रंथों से सिद्ध होती है, कि जब २ मनुष्यों में धर्म की हानि होती है तब २ जीवन मुक्त (महापुरुष योगी) धर्म प्रचार और मनुष्य समाज के उठाने के लिये संसार में जन्म लेते हैं, इन्ही महापुरुषों को ऐश्वर्य्यवान् होने से ईश्वर वा भगवान भी कहा जाता है, लोग इस बात को बिल्कुल ही नहीं मानते वे धोखा खा रहे हैं। परन्तु जो मनुष्य यह समझे बैठे हैं कि पारब्रह्म परमेश्वर जन्म लेता है वे उनसे भी कहीं अधिक भूल पर हैं। यदि वही पारब्रह्म जन्म लेता तो एक ही समय में परशराम और रामचंद्र भगवान अथवा व्यास और कृष्णभगवान के अवतार क्यों होते। जैन और बौद्ध अपने महा' पुरुषों को पारब्रह्म न मानते हुये भी ईश्वर क्यों मानते। शंकर स्वामी अपने ६ पदार्थों में ईश्वर और ब्रह्म को भिन्न २ पदार्थ क्यों मानते, विचार-सागर में स्पष्ट लिखा है कि मुक्तात्मा का नाम ईश्वर होता है। इस विषय का पूरा २ व्याख्यान तो अगले अध्यायों में करेंगे, पर इतना कहना यहाँ पर भी ठीक है कि दोनों पक्ष के विद्वानों को हठ ठीक भी है। जो विद्वान् नहीं मानते वे कहते हैं कि भला वह अमर-अजर ईश्वर किस प्रकार जन्म ले सकता और जो विद्वान् मानते हैं उनकी बात यों ठीक है कि गीता आदि आर्ष ग्रंथों में ऐसा लिखा भी है। भ्रम में पड़ने का कारण यह है कि ईश्वर अर्थात् मुक्तात्मा में उपासना के द्वारा बड़ी गहरी समानता आ जाती है। यहाँ तक कि प्रेमी ( जीवनमुक्त ) अपने को अपने प्यारे (परमेश्वर) से भिन्न नहीं समझता और वास्तव में समानता भी ऐसी ही आ जाती है। स्वामी आनन्दगिरि कृत गीता की टीका से भी यह बात सिद्ध होती है।

# वैदिक काल में छूत-छात

वैदिक-काल में वर्त्तमान जातीय घृणा और छूत का कुछ भी नाम नहीं था। चारों वर्ण एक दूसरे के हाथ का भोजन करते थे। कभी २ विवाह भी परस्पर हो जाते थे। कच्ची पक्की का नाम भी न था। पर अपवित्र रहने वाले मनुष्यों के हाथ का वे कभी भोजन नहीं करते थे। धर्म शास्त्र में इतना भी अवश्य लिखा है कि जो भोजन घृत में न बना हो उसे उसी समय खालेना चाहिये। जिन उपवर्णों के पेशे ऐसे थे कि जिनका शुद्ध रहना बहुत ही कठिन था और जिन्होंने अपनी जाति की कठिन सेवा का भार अपने सिर पर लिया था। उनके लिये भोजनादि का ऐसा प्रबंध किया था कि जिससे उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो। इसीलिये गृहसूत्रों में लिखा है, चाहे द्विज भूखे मर जावें पर उनके स्वयंसेवक सदैव आनंद से रहें। इसका सब से अच्छा प्रबंध उन्होंने यह सोचा कि इनको बस्ती से पृथक रखकर अछूत कह दिया जावे और उनके लिये एक विशेष २ भाग निकाले जावें। इस से प्रथम लाभ तो यह सोचा गया कि यह लोग बस्ती पर आने वाली आपत्तियों से बचे रहें दूसरे अन्य मनुष्यों में इनकी संगत से अपवित्रता न फैले। तीसरे लोग उन दीनों को भोजनादि का भार न डालें चौथे मुसलमानों की भाँति लोग इनके भी भाग को न खा जावें। उनके अतिरिक्त और भी कई कारण थे, योरुपादि में भी विशेष २ कार्यालयों को बस्ती से बाहर रखने की आज्ञा है। मूल अछूत शब्द अन्त्यजों पर भी वैसा ही घटता है जैसा कि अन्य आर्य्यों पर घटता है। क्योंकि यदि और लोग अन्त्यजों को नहीं छूते थे तो यह अन्त्यज भी इनको नहीं छूते थे। ईसाई लोग जो कहते हैं कि अन्त्यज वे ही लोग कहलाये

जिन्होंने आर्य्यों के सिद्धान्त नहीं माने । यह उनकी चतुराई इनको हड़प जाने के लिये है । और अभाग्य वश हमारे अज्ञान ने उनकी बात को सच्चा सा सिद्ध कर दिया है । पर उनका यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि वे इनको अपना शत्रु और नीच समझते थे, यदि ऐसा होता तो आर्य्य लोग इन वंशों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को अपना ऋषि और पूज्य ही क्यों मानते । वर्तमान छूत-छात किस प्रकार चली यह विषय अगले अध्यायों में लिखेंगे ।

## वैदिक काल में मनुष्यों की दशा

आर्ष-ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि उस समय भोजन, वस्त्र और शिक्षा का प्रश्न कुछ भी कठिन नहीं था । देश में दूध की नदियाँ बहती थीं । मनुष्य तो दूर; जीव जंतु भी भूखे नहीं मरते थे । दूध और घी का बेचना पाप था । प्रत्येक बस्ती एक सर्वसुख सम्पन्न प्रजातंत्र राज्य बनी हुई थी । जो अपनी रक्षा आप करती और अपनी आवश्यकताओं को आप पूरा कर लेती थी । उस समय राज्य का उद्देश्य राजा अथवा साम्राज्य की स्वार्थपूर्त्ति न था इसी से प्रजाको नाम मात्र कर देने पड़ते थे । राजगद्दी पर बैठते समय राजा को यह शपथ लेनी पड़ती थी कि मैं कोई भी ऐसा कार्य्य न करूंगा जिससे प्रजा का अहित हो । इसी से उनको असंख्य अदालत और जेल-खाने बनाकर आडम्बर रचने और धन बटोरने की कोई आव-श्यकता न थी । वे अपराधों पर बड़े २ कठोर दंड देते थे जिस से पाप का नाम भी सुनने में नहीं आता था । उस समय राज्य का भार लेते हुये लोग बड़े ही डरा करते थे । छोटे २ राजाओं के ऊपर महाराजाधिराज और सब के ऊपर चक्रवर्ती राजा होते थे । उस समय ब्राह्मणों और सन्यासियों को राज्यच्युत करने के

भी अधिकार थे। क्योंकि ब्राह्मणों को किसी प्रकार की भौतिक सम्पत्ति रखने की इच्छा न थी इसी से उनसे कोई भी कर नहीं लिया जाता था। पंजाब, काश्मीर और काबुल के कुछ भाग का नाम स्वर्ग भौम था, और यहाँ के मनुष्यों को देवता आदि की पदवियाँ थीं। सम्पूर्ण आर्य्यों में जो सब से अधिक तपस्वी मनुष्य होता था वही इस देश का राजा बनाया जाता था। उसका पदवी वाचक नाम इन्द्र था। स्वर्ग भौम का यह सब प्रकार से पूर्ण अधिकारी था, पर इसके साथ २ वह सम्पूर्ण विद्वानों का भी स्वामी गिना जाता था। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि पोपों की भाँति यह लोग भी कुछ विषय भोग में फँस गये थे जिससे आगे चलकर इनका अधिकार नाम मात्र ही रह गया था। महाभारत में इन्द्र का नाम तो सुना जाता है पर उनकी वह अपूर्व शक्ति नहीं देखी जाती। वैदिक। काल में भयंकर और मूल्यवान् अस्त्रों का प्रयोग केवल धर्मात्माओं को ही कड़ी परीक्षाओं के पश्चात् सिखाया जाता था, जिस से संसार में अशान्ति न फैले। इसी से महाभारत में हम पढ़ते हैं कि द्रोण ने व्याध को धनुर्वेद नहीं सिखाया था। वैदिक परिभाषा में इसी का नाम वरदान है।

## विशेष ग्रन्थ।

(१) कपिल का सांख्य (२) गौतम का न्याय (३) पातांजलि का योग दर्शन (४) कणाद का वैशेषिक (५) पूर्व मीमांसा (६) उत्तर मीमांसा

ॐ

# धर्म इतिहास रहस्य

## दूसरा-अध्याय

### वाम-काल

२५०० वर्ष-पू० ई० से ५०० वर्ष-पू०ई० तक यह मत किस प्रकार चला।

वैदिक-काल में हमने सिद्ध कर दिया था, कि द्वापर युग के पिछले भाग में संसार में वैदिक-धर्म । का प्रचार-ढीला पड़ गया था। इसका प्रथम कारण तो यह हो सकता है, कि आर्य्यावर्त्त के ब्राह्मणों ने दूसरे देश के ब्राह्मणों को शिक्षा देकर यह कार्य्य उन्हीं के ऊपर छोड़ दिया हो और वहाँ जाकर प्रचार करना बन्द कर दिया हो। सम्भव है मनुष्य मनुजी के इस वचन से कि विदेशी मनुष्य यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करें, यही अभिप्राय निकाल बैठे हों कि हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि विदेशों में ठकर-खाते फिरें, वरन इतना ही कार्य्य है कि जो लोग आवें उन्हें शिक्षा दें इस में भी दो कारण हो सकते हैं प्रथम प्रमाद दूसरे वैदिक। धर्म की मान मर्यादा का विचार। वैदिक धर्म की मान मर्यादा का विचार ब्राह्मण ग्रंथों के समय से चला आता है। दूसरा कारण संसार के धर्म शून्य होने का यह हो सकता है, कि मनुष्य जाति उस आपत्ति में

फंस गई जिसे नूह का तूफान अथवा मनु का जल प्रलय कहते हैं। जल प्रलय से अपने देश नष्ट होकर समुद्र की थाह में चले जाते हैं, और बहुत से नवीन देश और द्वीप निकल आते हैं। हमारे इस विचार की पुष्टि इस से भी होती है कि वैदिक ग्रंथों में लिखे देशों और महाद्वीपों से वर्त्तमान देश और महाद्वीप कुछ भी टक्कर नहीं खाते। मनुष्य जब किसी आपत्ति में फँस जाता है तो उसको प्राण रक्षा के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता इसके साथ ही जब धर्म और ज्ञान का नाता टूट जाता है, तो फिर उसका जुड़ना बड़ा ही कठिन हो जाता है। चाहे कितने ही देश डूब गये हों पर यह तो बिल्कुल निश्चय है कि बचे हुये देशों की लिस्ट में भारतवर्ष का नाम अवश्य है। और क्या आश्चर्य है कि प्रोफेसर अविनाशचंद्र दास के कथनानुसार राजपूताना, और उत्तरी भारत के पूर्वी भाग का दक्षिणी देश से मिल गया हो। पर सारे भारत में इसका प्रभाव नहीं पड़ा, यदि ऐसा होता तो मनु के प्रलय का वृत्तान्त ही कैसे लिखा जाता। पुराण में लिखा है कि पुण्य भूमि काशी का प्रलय में भी नाश नहीं होता, शिवजी उसे अपने त्रिशूल पर उठा लेते हैं, हमारे विचार में इसमें दो बातों की ओर संकेत है। प्रथम यह कि काशी अपने पास आने वाले जल प्रलय से भी बच गई दूसरे यह कि जिस भूमि पर वेद प्रचार का पुण्य कार्य्य होता हो, वहाँ पर कोई बड़ी से बड़ी आपत्ति भी नहीं आ सकती क्योंकि परमेश्वर उसकी रक्षा करते हैं। पुराणों के इस वचन की पुष्टि इतिहास के इस परिणाम से भी होती है कि इस पुण्य भूमि में जितने नवीन मत फैले या जितनी जातियाँ आईं सब यहीं के हो रहे। हमारे कथन का सार केवल इतना ही है। कि इस पुण्य भूमि में ज्ञान की डोरी बिल्कुल कभी नहीं टूटी इस महाप्रलय के पश्चात् व्यासर्षि और उनके पूर्वज ऋषियों

ने अभी भारतवर्ष में कुछ २ और संसार में नाम मात्र ही धर्म प्रचार किया था कि महाभारत का भयंकर युद्ध छिड़ गया, जिसमें सभ्य संसार के सम्पूर्ण वीरों और विद्वानों का सत्यानाश हो गया था। मि० पिकोक लिखते हैं कि महाभारत का युद्ध यद्यपि नाम मात्र के लिये १८ दिन में ही समाप्त हो गया था, परन्तु वास्तव में उसका प्रभाव ऐसा बुरा पड़ा कि कई वर्षों तक लगातार युद्ध देश में जहाँ तहाँ होते रहे। दोनों पक्ष के मनुष्य एक दूसरे का खोज मिटाने पर तुले हुये थे। अत्याचारी मनुष्यों ने इस उपद्रव के समय में न जाने लोगों के साथ क्या २ किया होगा महाभारत से तो १२ वर्ष का वन-युद्ध सिद्ध ही होता है, पर साथ ही यूनान देश के इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है, उसमें लिखा है कि देवता लोगों ने इस देश में आकर धर्म और विद्या का प्रचार किया, जो २ लक्षण उनका इतिहास, उन देवताओं में बतलाया है। वह सब आर्यों के अतिरिक्त किसी पर नहीं घट सकते। पांडव लोग तो इस दुर्घटना से वैराग्यवान् होकर पर्वतों में चले ही गये थे, पर सम्भव है कि इस उपद्रव के समय में अनेक वंश तथा जातियाँ भी इस देश को छोड़कर चली गई हों इस महायुद्ध का वैदिक-धर्म पर दो प्रकार से और भी बुरा प्रभाव पड़ा, प्रथम यह कि कृष्ण भगवान उस समय सर्वमान्य और आदर्श पुरुष थे, दोनों ही पक्ष के मनुष्य उनकी बातों के सामने गर्दन झुकाते थे इस दशा में उन्होंने जो पांडवों का पक्ष लेकर और कौरवों को दुष्ट बतलाकर युद्ध सम्बन्धी चतुराई की, उनका दोनों पक्ष के मनुष्यों पर बुरा प्रभाव पड़ा, कोई ज्ञानी मनुष्य तो रहा ही न था, लोगों ने सोचा होगा कि धर्म, कर्म, और कुछ नहीं। जिस प्रकार हो सके अपनी स्वार्थ सिद्धि करनी चाहिये। महाभारत में भी कृष्ण पर अक्षेप किये हैं।

दूसरा बुरा प्रभाव यों पड़ा कि लगातार युद्ध से देश में अकाल भी अवश्य पड़ा होगा। जिन देशों में एक वर्ष भी युद्ध छिड़ जाता है, वहाँ के मनुष्यों को दसों वर्ष तक महा कष्ट उठाना पड़ता है। योरुप के गत महायुद्ध का इतना भारी प्रभाव पड़ा था कि संसार भर में अकाल पड़ गया था। जिस प्रकार इस युद्ध में लोगों, ने घोड़े, खच्चरों, और मरे हुये मनुष्यों के मांस से पेट भरकर प्राण रक्षा की थी इसी प्रकार भारतवर्ष के मनुष्यों में भी इस आपदा काल में ऐसा ही किया होगा। वैदिक-धर्म का यह अटल सिद्धान्त है कि विना होम किये किसी भी पदार्थ को नहीं खाया जाता। संसार में तो नूह के तूफ़ान की आपत्ति से मांस का प्रचार हो ही गया था, पर इस आपत्ति से पुण्य भूमि में भी मांस का प्रचार होगया। मद्य मांसादि का चसका जब एक वार लग जाता है फिर तो जीवन के साथ ही यह छूटता है। ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि लोगों ने इस बुरे समय में भी बड़े वाद विवाद के पश्चात् मांस को ग्रहण किया था। ग्रन्थों में लिखा है कि अमुक ऋषि को जब सात दिन बिना अन्न जल किये हो गये तो उन्होंने मरे हुये कुत्ते को उठा कर खा लिया। दूसरे स्थान पर लिखा मिलता है कि जब कई वर्ष क लगातार अकाल से होम करने के लिये कुछ भी न मिला। तो अमुक ऋषि ने मांस की आहुति देनी आरम्भ करदी कि कहीं संसार से यज्ञों का करना ही बन्द न हो जावे, तो यह देख सम्पूर्ण देवता कांप गये, और उन्होंने बड़े ज़ोर से वर्षा की। वेदों में यद्यपि अनेक स्थान पर अन्य जीवों के न मारने की आज्ञा भी दी है यह गो का तो नाम ही अघ्न्या यजुर्वेद में लिखा है, सम्भव है लोगों ने इस विपत्ति में इस से यही सिद्ध किया हो कि गो को छोड़ सब को मार सकते हैं, पर भारतवर्ष में गोवंश ही ऐसा था जिससे यह आवश्यकता पूरी हो सकती

थी इसलिये कुछ समय के पश्चात् इन पर भी हाथ साफ़ होने लगा। आगे चल कर देश की ज्ञान शून्यता ने बड़ा ही भयंकर रूप बना दिया, राजनैतिक और धार्मिक अधिकार मूर्खों के हाथ में आगये। अन्धा सूझते के पीछे न चले तो क्या करे, मूर्ख अनुकारण न करे तो क्या करे। बस लोगों ने उन्हीं बातों को धर्म समझ लिया जिनको उनके बाप दादे करते चले आते थे। लोगों ने प्रधान बातों को तो त्याग दिया, और गौण तथा अनावश्यक बातों को बहुत गहरा रूप देकर अपनी सारी श्रद्धा भक्ति उन पर समाप्त करदी, इससे अधिक वे कर भी क्या सकते थे। महाभारत से लग भग ५०० वर्ष पश्चात् वैदिक धर्म के दो सम्प्रदाय हो गये।

एक सम्प्रदाय कहता था कि मांस खाना वेदोक्त धर्म है, दूसरा कहता था कि यह वेद विरुद्ध कार्य्य है। पहिले सम्प्रदाय के लोग उत्तरी भारत में थे और काशी इस सम्प्रदाय का केन्द्र था दूसरे सम्प्रदाय के मनुष्य दक्षिण में रहते थे। कारण यह था कि युद्ध का प्रत्यक्ष बुरा प्रभाव उत्तरी भारत पर ही पड़ा था दक्षिण से अन्य देशों की भाँति कुछ सेना और कुछ रण पंडित ही आये थे। इसलिये वहाँ पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा वैदिक-काल में उत्तरी भारत ज्ञान प्रधान देश था और दक्षिण के लोग उनके सामने कुछ भी नहीं थे, इसलिये इन लोगों में वैदिक-धर्म की छोटी २ बातों के प्रति बड़ा ही प्रेम था वे रीति, रिवाज जो वैदिक-काल में गौण थे इस काल में आकर धर्म के प्रधान अंग बन गये। वेद भगवान और आर्ष ग्रंथों में परमेश्वर को भिन्न २ रूपों और नामों से पुकारा गया है, व्यास भगवान ने इन परमेश्वर के नामों को उत्प्रेक्षा, शब्दालङ्कार, श्लेष, व्यङ्ग, और कविता के प्रधान अङ्ग अतिशयोक्तियों से बहुत ऊंचा उठादिया

था, यह एक सीधी सी बात है कि जब हम किसी एक नाम को बहुत बढ़ा देते हैं तो अन्य नामों का महत्व उसके सामने हल्का पड़ जाता है, इस अज्ञान दशा में जो पुराण जिसके पास था वा जो पुराण जिसको अच्छा लगा वह नित्य प्रति के स्वाध्याय से उसी का हो रहा, और उसी का उपदेश तथा उसी की प्रशंसा करने लगा। कुछ काल के पश्चात् इन्हीं नामों के अनेक सम्प्रदाय बन गये, जो अपने मत को अच्छा और दूसरों को बुरा कहकर लड़ने झगड़ने लगे। उत्तरीय भारत के मनुष्यों में महाभारत युद्ध के कारण यद्यपि अश्रद्धा अवश्य आगई थी, पर वेद के प्रताप ने उनको भी चौंधिया दिया था इन लोगों का मूल सिद्धान्त यह था कि वेद ईश्वर की वाणी है, वह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष, जो आज्ञा देता है वह चाहे सत्य है वा असत्य सब प्रकार से माननीय है। उसके करने से चाहे प्रत्यक्ष पाप ही ज्ञात हो पर वास्तव में वही धर्म है, जो ग्रंथ और हमारे पूर्वजों के जो आचार, विचार वेद के अनुसार हैं, वही मानने के योग्य हैं अन्यथा नहीं। वे कहते थे कि हमारे पूर्वज बिल्कुल सत्य मार्ग पर ही चलते थे, क्या वे कभी भूल ही नहीं करते थे, यदि यही बात थी तो महाभारत में क्यों कट मरकर नष्ट हो गये, क्या धर्मात्मा मनुष्यों में कभी परस्पर ऐसे अनर्थ हो सकते हैं? दक्षिणी और उनके साथी उत्तरी भारत के कुछ आर्य्य इन लोगों को वाममार्गी कहने लगे, और उत्तरी भारत के मनुष्य इन लोगों को नास्तिक, वेद विरोधी, कहते थे पर हम अपने ग्रंथ में उनको सरल मार्गी नाम से याद करेंगे। इन दोनों मतों में बड़ा भारी अन्तर यह था कि वामी लोगों में वेद मुख्य और सदाचरण गौण था और सरल मार्गी लोगों में सदाचार मुख्य और वेद गौण था। सिद्धान्त के रूप में हमारा साहस नहीं होता कि इन में से किसी को बुरा

कह सकें। यदि संसार में सदाचार न रहे तो वह मिट जावे और यदि वेद न रहे तो संसार धूल में मिल जावे। पर हम लोग कट्टर वेद भक्त होते हुये भी इतना अवश्य कह देंगे। कि यदि वेद हम को सदाचार नहीं सिखाता तो वह त्याज्य है, और सदाचार यदि हमको वेदों का भक्त नहीं बनाता तो भी ग्रहण करने के योग्य नहीं है। महापुरुषों को छोड़कर उन मनुष्यों को हम महामूर्ख समझते हैं, जो वेद और सदाचार को दो विरुद्ध बातें जानते हैं। जिन मनुष्यों को इतिहास का कुछ भी ज्ञान है वे जानते हैं कि इस कराल काल-चक्र ने एक छोटी सी बात को भी विरोध का सहारा देकर कितना बढ़ा दिया है, इस मत भेद का फल यह हुआ कि सरल मार्गी तो लकीर के फ़क़ीर बन गये और वामी पुरानी बातों के कट्टर विरोधी बन गये। हा स्वार्थ तेरा सत्यानाश हो! हा अज्ञान तेरा बुरा हो! सरल मार्गी लोग जब कभी आक्षेप करते तो वामी झट वेद का प्रमाण देकर उनको चुप कर देते, पर उनके हृदय को संतोष नहीं होता था। जिन साधारण ग्रंथों को सरल मार्गी अपने स्वाध्याय में रखते थे, वे भी वेदों के ही प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते थे, इसलिये कुछ दिनों तक सरल मार्गी लगातार परास्त होते रहे। सरल मार्गियों में जो वेदों के तत्त्व जानते थे वे प्रायः सन्यासी और वानप्रस्थी थे, जो संसार के झगड़ों में पड़ना उचित नहीं समझते थे। कुछ काल के पश्चात इन लोगों में वेदों की परताल का कार्य्य आरम्भ हुआ, और इस विषय पर खूब विचार किया कि वेदों का अर्थ किस प्रकार करना चाहिये पर भाष्य करने की जो विधि यह लोग बतलाते थे वह साधारण बुद्धि के मनुष्य समझ भी नहीं सकते थे, इसलिये इन लोगों को कुछ सफलता न हुई। उस काल में प्राकृत भाषा तो सभी जानते थे और साधारण योग्यता का मनुष्य भी

संस्कृत जानता था, क्योंकि उस काल की प्राकृत और संस्कृत में नाम मात्र का भेद था। इसलिये वामी लोगों ने जो वेद भाष्य परिभाषिक और प्रचलित शब्दार्थ के अनुसार किये वे सब की समझ में आते थे, वामी लोग जो बात २ में वेदों की दुहाई देते थे, इस से जनता को विश्वास हो गया कि यही ठीक कहते हैं, और सरल मार्गी जो बड़े टेढ़े, तिरछे, एँड़े बेंड़े अर्थ करते हैं वह केवल उनकी खींचा-तानी है। इस काल के राजा लोग बड़े ही विषयी, मांसाहारी और शराबी थे इन लोगों ने सरल मार्गी लोगों के विरुद्ध मद्य माँस सिद्ध करने में हर प्रकार से सहायता की। फिर क्या था यथा राजा तथा प्रजा, सारी प्रजा मांस खाने लगी। इसका सब से अच्छा प्रमाण यह है कि इसी काल में सायणाचार्य्य किसी राजा के मन्त्री थे उन्होंने वेदों का सच्चा भाष्य करने की प्रतिज्ञा की, इसलिये भूमिका और भाष्य के उपक्रम में वेद भाष्य करने के जो नियम स्थिर किये आगे चलकर उनका सर्वथा पालन नहीं किया इसके दो ही कारण हो सकते हैं प्रथम यह कि मूल अर्थों के विचार करने का वे परिश्रम नहीं उठा सके दूसरे यह कि ऐसा करने के लिये किसी दूसरी शक्ति ने ही उनको विवश किया था वेदों से मांस सिद्ध कराने का यत्न आर्य्य पथिक पं० लेखराम के समय में भी एक राजा ने किया था और इसके लिये उस ब्राह्मण को बहुत बड़े धन का भी प्रलोभन दिया था। वेदों पर तो भाष्य लिख मारे पर अन्य आर्य्य ग्रंथ तो इसके शत्रु थे इस लिये अब दूसरा कार्य्य यह आरम्भ किया कि जितने भी आर्ष ग्रंथ थे सब में बिना सोचे विचारे अन्धाधुन्ध मांस का विषय ठूंस दिया, बड़ी २ विचित्र कथायें गढ़ मारीं न जिनके सिर न पैर। जिन ग्रंथों की राशि का साधारण मनुष्यों को भी ज्ञान था, उनमें से बहुत सी बातें कर अपने घर की बातें

ठूस दीं। असंख्य ग्रंथ नष्ट कर दिये अथवा छिपा दिये। नृमेध गोमेध, अजामेध, की बड़ी ही विलक्षण विधि ही निकाली। बड़े २ तन्त्र ग्रंथ ऋषि मुनियों के नाम पर रचे गये यदि कोई समझदार मनुष्य इनके करतूतों को देखे तो वह अवश्य ही कहेगा कि इन लोगों की बुद्धि बिल्कुल ही मारी गई थी। विषय चल रहा है ज्ञान वैराग्य का और मूढ़ महाशय मांस का नोट चढ़ा रहे हैं। जिस का फल यह हुआ कि एक छापे का ग्रंथ दूसरे से बिल्कुल नहीं मिलता अन्य ग्रंथों की बात तो दूर रही केवल मनुजी का प्रमाणिक धर्म शास्त्र आज '२८ प्रकार का मिलता है, इसके ३०० से अधिक वचन अन्य ग्रंथों में तो मिलते हैं पर आज काल की मनुस्मृति में उनका कुछ भी खोज नहीं मिलता। ४०० के लगभग वचन तो प्रत्यक्ष ही प्रक्षिप्त सिद्ध होगये। आगे चलकर हम यह प्रकट करेंगे कि इन ग्रंथों को और किस किस मत वालों ने नष्ट किया जब यह अत्याचार बहुत ही बढ़ गये तो कुछ महापुरुषों ने इनको रोकने का यत्न किया, जिन आर्ष ग्रंथों वेदों और महापुरुषों के नाम ले लेकर अत्याचार करते थे, और जिस परमेश्वर को यज्ञों का फल दाता मानते थे, इन महापुरुषों ने इन सब का खंडन किया, इनका मूल मन्त्र यह था कि यदि तुम्हारा परमेश्वर वेद बनाकर ऐसे ही पाप करता है उसे मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

## सरल मार्गियों का अपूर्व कार्य्य

अब सरल मार्गियों को बड़ी चिन्ता हुई, उन्होंने देखा कि अब तो वैदिक-धर्म के बड़े शत्रु हो गये, कहीं ऐसा न हो कि संसार से वेदों का नाम ही मिट जावे इसलिये इन लोगों ने सम्पूर्ण साहित्य का मोह त्याग कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति वेदों

की रक्षा में लगा दी। वेदों के पढ़ने का अधिकार ब्राह्मणों को छोड़ किसी को न रहा, यदि कोई पढ़ भी लेता तो उसको पढ़ाने का अधिकार न था। वैश्यों और शूद्रों को तो सुनने का भी अधिकार न रहा क्योंकि इन लोगों का सम्बन्ध सब प्रकार के मनुष्यों से रहता था। बढ़ते २ यह बात यहाँ तक बढ़ी कि संस्कृत पढ़ने के भी बड़े कठोर नियम बन गये, इन लोगों को भय था, कि कहीं लोग संस्कृत पढ़कर भ्रष्ट न हो जावें। वेदों के पढ़ने, पढ़ाने का कार्य्य बाँट लिया गया, शुद्ध पाठ पर ही ज़ोर दिया जाने लगा, वेदों की रक्षा के इन लोगों ने ऐसे अनुपम उपाय निकाले कि जिनको देखकर आज सारा संसार चकित हो रहा है। बहुत से लोग पूछेंगे कि कि क्यों जी जब वेदों की रक्षा के लिये ही यह बन्धन लगाये गये, थे तो अन्य वर्णों को इससे क्यों रोका गया। पहले तो हम यह पूछते हैं कि इस बुरे काल में वेद पढ़ता ही कौन होगा, पर बंधन लगाने में बड़ी भारी बुद्धिमानी थी, प्रथम यह कि जो कार्य्य सब का होता है, वह किसी का नहीं होता। दूसरे अन्य वर्णों को वेदों के रक्षा सम्बन्धी नियमों के लिये अवकाश ही मिलना कठिन था, यदि कोई बचा वेद पाठी बन भी जाता तो अपने वर्ण के कर्म को भूल जाता। तीसरी बात यह थी कि अधूरे ज्ञान का मनुष्य धर्म विषय में भयंकर होता है, न तो वह धार्मिक बातों के तत्त्व को ही जानता है, न उसमें श्रद्धा ही रहती है, जिससे वह किसी विद्वान् की बात माने चोथी बात यह थी कि जहाँ अन्य लोग दूसरे उद्यमों से खाते थे वहाँ ब्राह्मणों के भोजन का सहारा ही यह था। पाँचवी बात यह थी क अब्राह्मण लोगों पर इतना विश्वास भी न था कि वे इस महान कार्य्य को उठा भी सकेंगे। छठी बात यह थी कि वेदों की रक्षा के अधिक उपाय ऐसे थे कि वेद जन्म बाद से ही

अधिक सम्बन्ध रखते थे। सरल मार्गी ब्राह्मणों का अविश्वास अन्य लोगों पर इतना बढ़ा कि वे अन्य वर्ण के मनुष्यों से अधिक मिलते-जुलते भी न थे। इनकी देखा-देखी दूसरे मनुष्य भी अपने से नीच लोगों से अपने को शुद्ध सरल मार्गी प्रकट करने के लिये बचाव करने लगे। इन लोगों की देखा-देखी वामी लोगों ने भी अपने को आस्तिक सिद्ध करने और अपने कुकर्मों को छिपाने के लिये इसे ग्रहण कर लिया था क्योंकि जैन महापुरुषों के निरन्तर परिश्रम ने देश में एक हल-चल पैदा कर दी थी, ऐसी दशा में यदि वामी ब्राह्मणों को कुछ प्रतिष्ठा और भोजन की आशा थी तो इसी दशा में। पर इन लोगों की यह सब बातें दिखावटी थीं। जब जैन मत का प्रभाव बढ़ने लगा, तो यह लोग उधर को भी सरकने लगे थे किन्तु सरल मार्गी ब्राह्मणों ने बड़ी २ आपत्ति सहन करते हुये भी वेदों की रक्षा की। और सब से अधिक कार्य्य दक्षिणी लोगों ने किया दक्षिण देश में आज भी जितने वेद पाठी मिलेंगे उतने सारे भारतवर्ष में भी न मिलेंगे। दक्षिणी ब्राह्मणों में बहुत से कुल अभी तक ऐसे हैं कि उनको चाहे कितनी ही बड़ी नौकरी मिलती हो, पर वे लोग उसे वेद पाठ में बाधक होने के कारण कभी स्वीकार न करेंगे। ईसाई लोगों ने जब उन लोगों की वेदों में ऐसी श्रद्धा देखी तो अब्राह्मण लोगों को आदि निवासियों की संतान बताकर उभाड़ दिया।

## इसका प्रभाव

वेदों की रक्षा में यह लोग इतने डूबे कि उन्होंने वैदिक साहित्य की कुछ भी सुध न ली, इसका फल यह हुआ कि इनके साथ-साथ दूसरे मनुष्य भी ज्ञान शून्य हो गये। पर वे बिचारे इससे अधिक और क्या करते।

## इस समय के ग्रन्थ।

(१) उवट भाष्य (२) महीधर भाष्य (३) रावण भाष्य (४) सायण भाष्य (५) तन्त्र ग्रंथ (६) ग्रंथों में प्रक्षेप (७) निरुक्त के ग्रंथ (८) निघन्टु के ग्रंथ (९) व्याकरण के ग्रंथ (१०) छंद शास्त्र-ग्रंथ (११) हठ योग के ग्रंथ (१२) अन्य ग्रंथ यथा (पाणनी की अष्टाध्यायी)

## लोकायतिक अथवा चारवाक

सरल-मार्गियों और जैनियों के सिवा एक सम्प्रदाय और था जिसने वामियों का विरोध किया, उसका नाम लोकायतिक अथवा चारवाक था। चारवाक मत जैन मत से पुराना है क्योंकि जैन ग्रंथों में उसका उल्लेख पाया जाता है। दूसरे इस मत के ग्रंथों से भी यही सिद्ध होता है और कहा जाता है कि बृहस्पति नाम के एक महा विद्वान् ने कामान्ध हो अपनी बहिन के साथ बलात्कार किया, इस पर ब्राह्मणों ने उसे जाति से पतित कर दिया। अब उसने ब्राह्मणों से बदला लेना चाहा। उसने अपने शिष्य चारवाक को ब्राह्मणों के विरुद्ध उभारा। यद्यपि जैन और ब्राह्मण दोनों ही इस कथा में एक स्वर हैं पर हम सहमत नहीं हैं क्योंकि यह दोनों ही आदि में चारवाक मत के शत्रु थे। ठीक बात यह जान पड़ती है कि जब चारवाक ने ब्राह्मणों के अमानुषिक बन्धनों और पशु-यज्ञ के द्वारा प्राप्त होने वाली स्वर्ग की ठेकेदारी के विरुद्ध आन्दोलन किया तो बृहस्पति जैसे महा विद्वान् से यह कब हो सकता था कि वह चारवाक के इस शुभ कार्य्य में हाथ न बटाये। चारवाक का जन्म २४३६ पू-ई-स- में वैसाख सुदी १५ के दिन अवन्ति देश की

शङ्खोद्धार नगरी में हुआ। इसके पिता का नाम इन्दुकाँत और माता का नाम रुग्मिणी था। इसकी शिक्षा वेदों के विरुद्ध थी वह केवल दृश्य चार भूतों को मानता था। उसके मत में परलोक को कोई स्थान नहीं था। २३७३पू॰ई॰स॰ में जब चारवाक का देहान्त होगया तो इस मत के चार भेद हो गये। कुछ काल के पश्चात् क्षपयणक नामके आचार्य ने इसकी उन्नति की। आठवीं शताब्दी में इस मत के मानने वाले मौजूद थे पर अब बहुत कम हैं।

## एक राजनैतिक घटना

महाभारत युद्ध के पीछे जब देश में बहुत से छोटे२ स्वतंत्र राज्य होगये तो २१८२ वर्ष पू॰ ई॰ में मलका सेसमी रामस ने भारत पर २० लाख पदचरों और २ लाख सवारों के साथ आक्रमण किया पंजाब के वरतित ने इसे बुरी तरह परास्त कर के सिंध पार भगा दिया। यह मलका मिश्र देश के प्रसिद्ध अभिमानी राजा ननरूद के पुत्र नाईस की स्त्री थी। इसके पति ने बाबुल, अनाट टूलिया पारस और बाख़्तर आदि देश भी जीत लिये थे। इस घटना से ज्ञात होता है कि आर्य्यों में मरते मरते भी कितनी वीरता रह गई थी। भारतवर्ष पर यह सब से पहिला आक्रमण था। इस विजय से आर्य्यों की धाक कुछ समय के लिये बैठ गई थी।

ॐ

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## तीसरा अध्याय

### जैन बौद्ध काल

५०० वर्ष पू० ई० से ५०० सन् ई०—तक

श्रुति संहिताओं से निकल कर धर्म चिंता ह्रादनी,
हो बौद्ध जैन मर्यात्रिपथगा वह चली कलनादिनी।
शतः प्रवाहों में उसे अब देखते हैं हम सभी,
फिर एक होकर ब्रह्म सागर में मिलेगी वह कभी॥

(मैं० श० गु०)

### जैन मत का वृत्तान्त

इस बात को हम वैदिक काल में पश्चिमी विद्वानों के कथनों से ही सिद्ध कर चुके हैं। कि पुराने समय में सारे संसार में वेदों का धर्म फैला हुआ था, पर इस पर भी हमारे मित्र कुछ पादरी अंग्रेज़ों को ईसाई मत के प्रचार का इतना भूत सवार हुआ है कि वे सत्य का खून करने से भी नहीं डरते कौन सा अनुचित कर्म है, जिसका प्रयोग उन्होंने हमारे महापुरुषों को

कलंकित करने के लिये न किया हो। पहिले तो वे लोग ऋषि मुनियों को जंगली और असभ्य तथा वेदों को गड़रियों के गीत अथवा पागलों की बड़ कहा करते थे। पर जब स्वामी दयानंद ने उनको ही सब प्रकार से असभ्य सिद्ध कर दिया तो अब स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में उन्हीं वेदों और ऋषि मुनियों को सम्पूर्ण विद्याओं का भंडार कहने लगे, पर फिर भी कुछ न कुछ नुक्ता अपनी सभ्यता का बिना लगाये न रहे। अब इन लोगों ने जैन और बौद्ध महापुरुषों को हवशी, विधर्मी और विदेशीय सिद्ध करने का यत्न किया है।

## क्या जैन महापुरुष हवशी थे

जैन ग्रन्थों में कहीं पर बर्बर देश का नाम आगया है, इसको लेकर इन लोगों ने क्या अलाप आरम्भ किया कि ईजिप्त वाले और दक्षिणी भारत के मनुष्य रकार का उच्चारण अच्छी तरह नहीं करते, दूसरे ईजिप्त वाले कुत्ते, बिल्ली, सूकर आदि का भी बहुत पूजन करते थे क्योंकि आज तक यह जीव मसाले लगे हुये मिश्र देश में मिलते हैं। तीसरे नैऋत कोण (ईजिप्त) में रहने वाली निऋति राक्षसी के पुत्र नैऋतेय अर्थात् राक्षसों से आर्य्य भी डरते हैं, यह बात वेद में लिखी है। चौथे जैन ग्रन्थों में भी लिखा है कि हमारे महापुरुष विदेश से आये थे। इसलिये सिद्ध हुआ कि जैन महापुरुषों की डोंगी वायु के झोंके से दक्षिण में आ लगी होगी। इस पर भी टीका चढ़ाते हुये लिखते हैं कि भारतवर्ष में तो अहिंसा को मानने वाला कोई था ही नहीं। फिर यह जैन धर्म कैसे फैला। उनकी विशाल बुद्धि में जैन धर्म और बौद्ध धर्म में कुछ भी भेद नहीं है। वे जैन मत को एक ऐसा मत बतलाते हैं जिस पर चलकर मनुष्य जाति कायरता और अवनति के गढ़े में पड़ी रहेगी।

# यह सब बातें थोती हैं

(१) रकार के उच्चारण की जो बात कही जाती है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। क्योंकि यह बात सिद्ध हो गई है कि मिश्र देश भारत का उपनिवेश था। रकार का उच्चारण तो चीन वाले भी नहीं करते तो क्या उनके पूर्वजों का भी होगा अफ्रीका से वह आया था। श्रीमान् जी! जब संसार की सभी भाषाओं का मूल एक है तो केवल देश-काल के अन्तर से पड़ने वाले प्रभाव को लेकर वे सिर पैर की उड़ाना सर्वथा अन्याय है। जिन भाषाओं को लोग आज तक बिल्कुल भिन्न-भिन्न जानते हैं, उनका मूल भी वही है। आज तक किस को ज्ञान था कि सप्त सिन्धु से इंडिया, चन्द्रगुप्त से संडरा कोटसा, सल्यूकस से मलयकेतु और प्लेटो से अफ़लातून बनगया है। अरबी, और संस्कृत में अलिफ (अ) कहीं २ लिखा तो जाता है उच्चारण नहीं होता, तो हम को भय लग रहा है कि कहीं आप यह न अलाप उठें कि वेद तो बद्दुओं ने बनाये थे।

(२) यदि जैन महापुरुष कुत्ते बिल्ली के पूजने वाले ही होते तो जैन मत में इनकी गर्दन में कलावा बांधकर दंडवत करना क्यों नहीं लिखा। पादरीजी आपका ध्यान ईजिप्त के जङ्गलों में तो चला गया पर मनुजी के इस वचन पर न गया कि भोजन करने से प्रथम कुत्तों, कौओं, चीटियों, कीड़ों और दीन दुखियों का भी भाग निकालना चाहिये। हरे वृक्षों को भी मत काटो उन में जीव हैं। वेद के इस वचन पर न गया कि सब को आंखों की पुतली जानो।

(३) निकृति की कहानी तो पादरीजी की उस कहानी से मिलती है कि मरियम के पुत्र ईसा ने जो शत्रु के एक चपत लगाने पर डर के मारे दूसरा गाल भी आगे करदिया था। न

वेद में ऐसी वेपर की बातें हैं, न आर्य्य कभी किसी से डरे। वे तो सदा यही गीत गाते थे कि मित्रादभयं मित्रादभयं ज्ञाताद भयं परोक्षात, ।

(४) सच बात तो यह है कि जो लोग पापाचरण करते हुये भी ईसा के द्वारा मुक्ति मानते हैं, वे कभी सत्य बोल ही नहीं सकते हैं, विदेश शब्द का अभिप्राय उन्होंने बर्बर देश कैसे समझ लिया जब आप ही दक्षिण से आये हुये भी मानते हैं। जब जैन ग्रंथ ही ऋषभ देव स्वामी को राजा इक्ष्वाकु की की सन्तति में मानते हैं। हबशी लोगों से जो आकृति मिलती हुई बतलाते हैं, वह सब आँखों का फेर है किसी जैन मन्दिर में जाकर भी नहीं देखा जैन लोग कोई हबशियों की भांति नंगे नहीं रहतेथे, वे तो परमहंस थे जिनको दुख, सुख, शीतोष्ण आदि का कुछ भी ध्यान नहीं था। मोटे होटों की जो युक्ति दी जाती है वह भी निर्मूल है, यह सब अनगढ़ मूर्ति बनाने वालों को दोष होगा। यों तो हनुमान की मूर्ति के भी होट आगे को निकले रहते हैं, उसके पीछे पूंछ भी होती है, तो क्या हनुमानजी अफ्रीका के बन मानस थे।

(५) मूल जैन सिद्धान्त किसी को नहीं गिराते यों अन्धे दिन में भी मार्ग भूल आवें तो सूर्य्य का कुछ दोष नहीं। दार्शिनक विद्वान् कामट और ईसाइयों का एक नवीन सम्प्रदाय भी जैन सिद्धान्तों को ही मानता है इस से आगे वे लोग बढ़ ही नहीं सकते।

## जैन मत क्यों चला

जिस समय वाममार्गियों और सरल मार्गियों में धर्मा-धर्म के विषय में खींचा-तानी हो रही थी। उसी समय ऋषभ देव नाम के एक महात्मा दक्षिण देश से उत्तरी भारत में आये थे,

इनके पूर्वज उत्तरी भारत से दक्षिण देश में चले गये थे, क्योंकि जिस सूर्य्य वंशी इक्ष्वाकु के वंश में आपका जन्म हुआ था, अयोध्या का राज्य उसके अधिकार में से निकल गया था। जिस प्रकार ऋषि मुनि लोग उपदेश दिया करते हैं, उसी प्रकार इन्होंने भी बिना किसी को बुरा भला कहे अहिंसा और सदाचार का उपदेश दिया। संसार में जहाँ बुरे लोग होते हैं वहाँ पर एक दो अच्छे भी होते हैं, जो लोग ब्राह्मणों के नित्य नये झगड़ों से धर्म-धर्म के विषय में किं कर्तव्य विमूढ़ हो रहे थे, उन्होंने महात्मा के उपदेश को माना। इन महात्मा का समय ईसा से लगभग १७५० वर्ष पूर्व कहा गया है, आपके परम्परा अनुगामी २१ महात्माओं ने इस कार्य्य को उत्तरोत्तर बढ़ाया। यह बात तो अनिवार्य्य है कि जिस बात का प्रचार किया जाता है उस के विरुद्ध बातों का खंडन भी करना पड़ता है इसलिये धीरे २ वामियों से विरोधग्नि बढ़ने लगी। पापी लोगों ने नृमेध में जैन लोगों को वध करना आरम्भ कर दिया, यही नहीं जो कोई भूला भटका मनुष्य मिल जाता उसी को वधकर डालते और नियम ऐसा रक्खा कि जो कोई बड़ा ही शुद्ध पवित्र हो माँस न खाता हो उसमें कोई शारिरिक खोट न हो वही इस यज्ञ में चढ़ सकता है संसार का कौन सा पाप था जो इन पापियों ने धर्म नहीं ठहराया था। माता, बहिन, बेटी से भोग करते हुये वेद मंत्रों का जाप करना तो मानो योग की अन्तिम सीढ़ी थी। कुछ तो मनुष्य स्वाभाव से ही निरंकुशता प्रेमी होता है, और कुछ नृमेध में चढ़ने के भय से उत्तरी भारत के सरलमार्गी भी प्रकट रूप में इन्हीं की हाँ में हाँ मिलाते थे। इसी बीच में ईसा से ७७७ वर्ष पूर्व पार्शवनाथ नाम के एक महात्मा हुये, जिन्होंने वाम मार्ग का बड़ा ही तीव्र खंडन किया यहाँ तक कि जिन वेदों के नाम को पापी लोग दुहाई देते थे

उनका और उनके बनाने वाले ईश्वर का भी खंडन किया। महात्माजी के निर्वाण के पश्चात् उनके चेलों ने इन बातों को और गहरा रूप दे दिया, २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथजी से २५० वर्ष पीछे अर्थात् ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व एक राजकुमार हुये जिनका नाम वर्द्धमान था, वे मगध के राजा के प्यारे पुत्र थे, किसी २ का कथन है कि वे मगध के राजा के कोई सम्बन्धी थे और गोरखपुर के राजा थे। वे भरी युवावस्था में वैराग्यवान हो पार्श्वनाथजी के मत में आगये और जब पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया तो आपको जिन और महावीर की पदवी मिली, वास्तव में इन से अधिक जिन अर्थात् सिद्ध कौन हो सकता है जिन्होंने परोपकार के लिये अपने सारे सुखों पर लात मार दी। इन से अधिक वीर कौन हो सकता है, जिन्होंने पाप का नाश किया। इनके प्रचार का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा क्योंकि तीन बड़े राजा इनके मत में आ गये थे। ब्राह्मण लोगों ने कहा यदि आप वेद और ईश्वर का खंडन न करें तो हम आपकी बातों मानने को तैयार हैं, स्वामीजी ने कहा यह असम्भव है, थोड़े दिनों के पश्चात् तुम फिर यही पाप फैला दोगे क्योंकि तुम्हारे वेद पापों से भरे पड़े हैं, यदि तुम वेदों में पशुवध को पाप ठहरादो तो मैं इनका खंडन न करूंगा। उन पापियों की बुद्धि को तो मांस खा गया था, वे सिद्ध ही कैसे कर सकते थे। हाँ ग्रन्थों में अहिंसा धर्म की चोट से बचने के लिये यह वाक्य तो लिख दिये कि पशु-वध सतगुण के समर्थ पुरुषों के लिये थे, जो जान भी डाल सकते थे, पर आंखों से उनको मांस मद्य का सेवन करते हुये देखकर, जैनी लोग कब इनके धोखे में आते थे इसलिये इन पापियों की सब तरह से खबर ली। और इनका नाक में दम कर दिया। यही महात्मा जैन मत के अन्तिम २४ वें तीर्थ कर हुये हैं। इनके निर्वाण के पश्चात् जैन मत में

किसी भी महात्मा को जिन की पदवी नहीं मिली । महात्मा गौतम बुद्धि ने इन्हीं से उपदेश लिया था।

## जैन मत का साहित्य

महावीर स्वामी की मृत्यु के पश्चात् जब महात्मा गौतम बुद्ध ने बौद्ध मत का प्रचार किया तो उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातें अपने मत में ले लीं यह कार्य किसी बुरी इच्छा से नहीं किया वरन् मत भेद रखते हुये भी उन्होंने महात्मा गौतम बुद्ध का आदर किया। महात्मा गौतम बुद्ध को जिन की २५वीं पदवी तो महावीर स्वामी की आज्ञानुसार दे ही नहीं सकते थे, इसलिये जिन और बुद्ध पर्य्यायवाची होने से गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी को एक ही समझा। आगे चलकर ज्यों २ ब्राह्मणों के मत से सामना होता गया उनके आक्षेपों से बचने के लिये ग्रंथों में नवीन बातें मिला दीं, और नवीन ग्रंथ रच डाले। ब्राह्मण लोग जब अपने महापुरुषों को सेर कहने लगे तो जैनियों ने अपने महापुरुष को सवासेर कर दिये, इसका फल यह हुआ है, कि इन ग्रंथों में बहुत सी परस्पर विरुद्ध बातें भरी पड़ी हैं। जैनी लोग अपने मत के पुस्तकों के दिखाने और प्रचार में उदारता से कुछ कार्य्य नहीं लेते थे पर इस समय इन लोगों के हृदय में बड़ी उदारता है, जब हमको जैन ग्रंथों की आवश्यकता हुई तो सब ने अपनी उदारता का परिचय दिया।

## जैन मत के मूल सिद्धान्त

(१) अहिंसा ही परम धर्म है।

(२) आवागमन में कर्मों का फल भोगना पड़ता है, पर जब मनुष्य सुख, दुःख को समान समझकर अपनी इच्छाओं को मार देता है तो फिर वह जन्म नहीं लेता जिसको निर्वाण की पदवी कहते हैं।

( ३ ) जीव, पुद्गल ( प्रकृति ) आकाश, काल, धर्म, अधर्म यह ६ पदार्थ नित्य हैं।

( ४ ) यज्ञ करना पाप है।

( ५ ) वेदों के बनाने वाला और मुक्ति देने वाला कोई ईश्वर नहीं है. जो मनुष्य निर्वाण पद को प्राप्त करले वह स्वयं ईश्वर है, न किसी ईश्वर ने इस जगत को बनाया जगत सदा से है और सदा रहेगा।

# सिद्धान्तों पर गहरी दृष्टि

## प्रथम सिद्धान्त

यह सिद्धान्त वास्तव में वेदों का तत्त्व है धर्म शास्त्र में भी अहिंसा को सर्व श्रेष्ठ धर्म कहा गया है, इस अहिंसा शब्द का ऐसा व्यापक अर्थ है, कि सारे धर्म इसी के भीतर आ जाते हैं। साधारणतः इसी का अर्थ लोग किसी को न मारना ही समझे बैठे हैं, पर बात यह नहीं है, इसका अर्थ है कि मन वचन कर्म से किसी को कष्ट न देना और न अपने सामने होने देना, अब कहिये भला कौन सा धर्म इसमें नहीं आ सकता जैन लोग जो वनस्पति में भी जीव मानते हैं यह सर्वथा सत्य है, मनुजी भी हरे वृक्षों के काटने को महापाप मानते हैं, योरुप के विद्वानों की प्रो० जगदीशचंद्र बोस ने वृक्षों को जीवधारी सिद्ध करके आखें खोल दी है। जैनी लोग जो छोटे २ जीवों के मारने को भी पाप समझते हैं, यह भी वैदिक धर्म की प्रधान आज्ञा है। पञ्च यज्ञ में जो बलि वैश्वदेव यज्ञ ( अग्नि पर अन्नादि का छोड़ना ) किया जाता है वह छोटे २ भूल में जो कीड़े मर जाते हैं उन्हीं के प्रायश्चित में ही किया जाता है, इन्हीं कीड़ों का भाग भी निकाला जाता है। छोटे २ कीड़ों की रक्षा से क्या

लाभ है? ऐसा कभी २ अज्ञानी और स्वार्थी मनुष्य कहा करते हैं। प्रथम तो मनुष्य का धर्म ही है कि वह दूसरों की रक्षा करे दूसरे यदि कीड़े न हों तो मनुष्य संसार में एक घड़ी भी नहीं जी सकता। प्रथम बात तो यह है कि छोटे कीड़े उत्तरोत्तर बड़े जीवों का भोजन हैं, यदि बड़े जीवों को छोटे जीव न मिलें तो फिर मनुष्य पर ही नम्बर आजावे। एक अंगरेज़ ने अपने ग्रंथ में लिखा है, कि यदि कीड़े इस भूमि की मिट्टी को उलट पुलट कर पोला न करें तो पहिली मिट्टी के अशक्त हो जाने से और भूमि के भीतर छेद न होने से कोई भी बनस्पति नहीं उग सकती, जिन देशों की जल वायु गर्म तर होती है, वहाँ पर यह कीड़े भी बहुत होते हैं, यदि यह कीड़े न हों तो कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। बहुत से विचार शून्य गोबर गनेश आक्षेप किया करते हैं कि जब वृक्षों में भी जीव होता है तो अहिंसा २ पुकारना व्यर्थ है धन्य है इन विलक्षण बुद्धियों को, अरे मूर्खों! यह तो जान लो, कि पाप और पुण्य किसका नाम है। जो मनुष्य जिसका पात्र है, उसके करने में उसे कुछ पाप नहीं है; माता, पिता और गुरु यदि किसी बच्चे को मारें तो पुण्य है, दूसरा मारे तो पाप हो जाता है। राजा यदि बल से भी कर ले तो धर्म है और दस्यु यदि ले तो पाप है जब मनुष्य का स्वभाविक भोजन ही साग, पात, अन्न और दूध है तो इस में क्या पाप, हाँ यदि इनका भी अनुचित प्रयोग करे तो महापाप है। पाप तो दूसरों का भोजन छीन कर उन्हें दुखी करने में पाप है। मूर्खो! प्रकृति का तो निरीक्षण करो जो पदार्थ जिसके लिये बनाया है, उसमें भोग करने से कुछ पाप नहीं। डाक्टर डेविड लिविंगस्टोन पादरी लिखते हैं कि साँप, मकर और और सिंह जिस जीव को खाते हैं, तो वह उनकी दृष्टि मात्र से मूर्च्छित हो जाता है, यदि वह

कुछ शब्द भी करता है, तो क्लोरोफार्म दिये हुये मनुष्य की भाँति ही करता है, ऐसी ही एक घटना उन्होंने आप बीती सुनाई है, कि जब मुझे सिंह ने पकड़ा तो कुछ भी सुध न रही, दैवयोग से दूसरे मनुष्य की बन्दूक की आहट पाकर जो सिंह भागा तो कई घंटे पीछे मुझे ज्ञान हुआ कि मैं कहां आ गया परम पिता की कृपा का यह कैसा अच्छा प्रमाण है पर जैनी लोगों ने दुष्टों के आक्षेपों से बचने के लिये जो इसका स्वरूप बिगाड़ दिया वहीं उनके नाश का मूल हुआ क्या लोगों के आक्षेप इस पर बन्द हो गये थे जैनियों को आक्षेपों से कभी न डरना चाहिये था। इसमें संदेह नहीं कि अहिंसा सम्बन्धी बढ़ी हुई बातों का पालन साधु, संत ही करते हैं, जो कि आदर्श, और यह आदर्श वास्तव में उच्च ही रहना चाहिये पर लोगों पर भी इन बातों का बुरा प्रभाव पड़ता है।

## दूसरा सिद्धान्त

यह दूसरा सिद्धान्त भी वैसा ही है जैसा कि प्रथम सिद्धान्त। यह सिद्धान्त अहिंसा धर्म पर चलने के कारण को बतलाता है। जो मनुष्य आवागमन को नहीं मानता मानों वह नास्तिक है क्योंकि वह संसार में किसी ऐसी शक्ति को नहीं मानता जो न्याय करके हमारे कर्मों का फल देती है। इन दोनों सिद्धान्तों का ही यह फल है कि जैनी लोग ईश्वर और वेद को न मानते हुये भी धर्मात्मा होते हैं और मुसलमान ईसाई ईश्वर २ का शोर मचाते हुये भी अन्याय और अधर्म पर अधर्म करते हैं। सच बात तो यह है कि अहिंसा और आवागमन को वैदिक-धर्म से निकाल लिया जावे तो वैदिक धर्म उस दूध के समान रह जाता है जिसमें से मक्खन निकल गया हो। इसी से मिलता जुलता फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि मौ० रूम ने एक शैर लिखा है।

मनज़े कुराआँ मग़ज़रा बरदाश्तम,
उस्तख़्वाँ पेशे सगाँ अन्दारख़्तम ॥

अर्थात् मैंने ईश्वर वाणी कुरान से गिरी तो निकाल ली और हड्डियाँ कुत्तों के सामने फेंकदी हैं, जिन पर वह लड़े मरे जाते हैं। इन दोनो बातों को मानते हुये जैनियों की दशा बिल्कुल ऐसी रह जाती है जैसी कि उस मनुष्य की रह जाती है जो मुंह से तो यही कहता है, कि मैं ताज़ीरातहिन्द को और बादशाह को नहीं मानता पर वैसे बड़ा ही सदाचारी परोपकारी हो। और ईश्वर को मानते हुये भी पापी मनुष्य ऐसा है जो राजा को तो सिर झुकाता हो और रात्रि में उसके घर डाका मारता हो।

## तीसरा सिद्धान्त

हमारे बहुत से झूठे आस्तिक जैनियों के ६ पदार्थों की ओर बड़ी कुदृष्टि रखते हैं, क्योंकि जैन महापुरुषों ने यह एक चक्र रख दिया था जिसमें गर्दन आते ही तुरन्त ही प्राण निकल जाते हैं, इन ६ पदार्थों में ईश्वर का नाम न होने से कोई तो इनके जानी शत्रु बन गये हैं। यदि इन लोगों ने इन ६ पदार्थों की परिभाषा पढ़कर कुछ भी मनन किया है, तो वे जैनियों के महापुरुषों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करेंगे। जैनियों के ६ पदार्थ बिल्कुल वैदिक-धर्म के तीन ही पदार्थ हैं इसको इस प्रकार समझना चाहिये कि अशर्फ़ियों की तीन ढेरी थीं उन में से दो तो ज्यों की त्यों रहने दीं और तीसरी बड़ी ढेरी के रुपये लेकर चार थैलों में भर दिये अब जो दो शेष अशर्फ़ियों की ढेरी रह गईं उनको भी दो थैलियों में बन्द कर दिया यद्यपि प्रत्यक्ष में अब तीन अशरफ़ियों की चमकदार ढेरियां नहीं रहीं, पर यह ६ थैलियाँ वही काम दे सकती हैं जो वे

तीन ढेरियां देखीं। पर इन दोनों अवस्थाओं में कुछ अन्तर अवश्य है। ढेरियों को देखते ही उनका मूल्य और लाभ समझने में बड़ी सुविधा होती है और थैलियों को जब तक खोला न जावे, और फिर गिना न जावे, तब तक वे ठीकरी के समान हैं पर साथ ही खुली ढेरियों में दस्यु लोगों के उचक भागने का भय हो तो उस दशा में आवश्यकता नुसार थैलियों में बन्द करने ही में कल्याण है। इसी उदाहरण के अनुसार जैन महापुरुषों ने स्वामियों को परास्त करने के लिये तीन पदार्थों के ६ पदार्थ कर डाले। इस काम के लिये उन्होंने जीव और प्रकृति को तो ज्यों का त्यों रहने दिया। और परमेश्वर के स्थान पर काल आकाश धर्म और अधर्म को मान लिया। हम इन ३ पदार्थों के स्थान पर ३०० पदार्थ बना सकते हैं पर इससे लोगों में केवल भ्रम ही बढ़ेगा लाभ कुछ न होगा। हमारा यह अभिप्राय नहीं है, कि इन महापुरुषों ने लोगों को व्यर्थ ही भ्रम में फांसा था, नहीं २ इन स्वामियों के दार्शनिक मिसांसे लोगों को बचाने के लिये एक ही अनुपम उपाय था जिस से आगे मनुष्य की बुद्धि पहुंच ही नहीं सकती। जो मत आकाश, काल, धर्म, अधर्म को मानता है, वह नास्तिक सिद्ध नहीं हो सकता। जैनी लोग ईश्वर के नाम को नहीं मानते, पर उसके गुणों को वह भी मानते हैं। यह बिल्कुल ऐसी ही बात है जैसे कोई गुड़ को खाते हुये यह कहे कि मैं तो मीठा खाता हूँ गुड़ नहीं खाता। अब सोचने की बात है कि गुण तो गुणी से भिन्न कुछ भी नहीं है। गुण औगुणी में इतना अभेद है कि कभी तो बोलने में एक उपयोग दूसरे से भी लेते हैं जैसे कहते हैं कि मैं मीठा खाया हूँ। उस दयालु (परमेश्वर) ने हमको नाना प्रकार के पदार्थ दिये।

---

## चौथा सिद्धान्त

जैन महापुरुषों ने तो पशु यज्ञ का ही खंडन किया है। शास्त्र तो उन यज्ञों को भी बुरा बतलाता है जो हृदय में स्वार्थ रखते हुये की जाती हैं, यज्ञ के खंडन से जैन महापुरुषों ने शुभ कर्मों के खंडन की चेष्टा नहीं की। वे तो सब प्रकार से पूर्ण थे, मोटी से मोटी बुद्धि का मनुष्य भी उत्तम होम दान पुण्य, विद्याध्ययन, कला-कौशल आदि यज्ञों का खंडन नहीं कर सकता। जैनियों के विरोधी हम से यह भी प्रश्न कर सकते हैं कि यदि वे पशु-यज्ञ को बुरा समझते थे तो उन्होंने उत्तम यज्ञों को अपने मत में स्थान क्यों नहीं दिया। वास्तव में उनका यह प्रश्न सर्वथा उचित है, परन्तु वाम काल के इतिहास को जानने वाला यह प्रश्न कभी नहीं कर सकता, जिसने कुछ भी धर्म इतिहास पर मनन किया है वह जानता है कि इस काल में प्रवृत्ति मार्ग का बड़ा ज़ोर था, लोगों ने बल ज्ञान शून्य कर्म-कांड में ही धर्माचरण को बन्द कर दिया था, लोग ज्ञान, और उपासना का नाम भी नहीं जानते थे, इस कर्म-कांड में ही लिप्त हो जाने का कारण यह था कि जैमिनि के पूर्व मीमांसा का नाम वेदान्त अर्थात् वेदों का अन्त भी है, और इस पुस्तक में कर्म-कांड पर ही बहुत बल दिया है। इसलिये इन जैन महापुरुषों को विवश होकर खंडन करना पड़ा दूसरा कारण उत्तम होमों को ग्रहण न करने का यह था कि जब किसी हानिकर बात को दूर करना होता है। तो उसका सर्वथा खंडन करना पड़ता है नहीं तो मनुष्यों की कुप्रवृत्ति फिर उसी गढ़े में ले जाती है यदि जैन महापुरुष उत्तम होमों को स्वीकार कर लेते तो फिर वे पशु यज्ञ का भी खंडन नहीं कर सकते थे। क्योंकि सुगंध घी और मीठे को छोड़कर अन्न

और औषधियों में जो नाना प्रकार के गुण हैं वे नाना प्रकार के पशु-पक्षियों के मांस में भी कुछ मौजूद हैं, यदि किसी भाई को सन्देह हो, तो वे वैद्यक शास्त्र के ग्रंथों को देख लें। अब रहे अन्य यज्ञ अर्थात् दान, पुण्यादि उनका उन्होंने कभी खंडन नहीं किया।

## पाँचवां सिद्धान्त

जब हम जैनियों के पांचवें सिद्धान्त पर विचार करते हैं। तो हमारे हृदय में उन महापुरुषों के प्रति श्रद्धा और भक्ति की लहरें उठने लगती हैं। कर्म-कांड पर प्राण देने वाले मनुष्यों में ज्ञान और उपासना का प्रचार करने के लिये यह आवश्यक है कि उनको एक ऐसे गोरख-धन्धे में फांसा जावे जिस की उलझनों को सुलझाने में उनकी बुद्धि मंजकर ठीक हो जावे। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये प्रथम तो ६ पदार्थ रक्खे और उसकी न्यूनता को पूर्ण करने के लिये यह पांचवां सिद्धान्त रखदिया। वैदिक-सहित्य में जगत, माया, प्रकृति और संसार, अपने मूल अर्थ में पर्य्यायवाची शब्द हैं, जैसा कि इनकी व्युत्पत्ति से ही सिद्ध होता है, पर आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों में इन्हीं शब्दों के पारिभाषिक अर्थ बहुत हैं। अब जैनियों का यह सिद्धान्त कि यह जगत किसी ने भी नहीं बनाया और नित्य है बिल्कुल ठीक था। प्रकृति को तो सभी नित्य मानते हैं। पर सरलमार्गी लोग जिनमें दक्षिणी लोग ही अधिक थे वे उत्तर मीमांसा और उपनिषदों के मूल तत्त्व को न समझकर केवल ईश्वर के द्वारा ही इस जगत को प्रकट हुआ मानते थे, उनके विचार में ईश्वर को छोड़कर अन्य कोई पदार्थ था ही नहीं। इसीलिये जैन महापुरुषों ने जगत अर्थात् प्रकृति की नित्यता पर अधिक ज़ोर दिया था। साथ ही जो लोग प्रकृति को नित्य मानते हुये भी ईश्वर को मानकर अत्याचार करते थे उनके लिये इस जगत

का अर्थ पारिभाषिक लिया जाता था अर्थात् जब उन से शास्त्रार्थ होता था तो यही कहा जाता था, कि यह जगत अर्थात् कार्य्य प्रकृति नित्य है ; इसको किसी ने नहीं बनाया जो लोग तीनों पदार्थों को नित्य मानते हैं वे भी इस जगत को नित्य ( प्रवाह से नित्य ) मानते हैं । इसलिये इस सिद्धान्त को झूठ वा असत्य भी नहीं कह सकते । जो लोग जगत को किसी शक्ति ( ईश्वर ) के द्वारा किसी विशेष समय में बना हुआ मानते थे, वे कोई पूर्ण तत्त्व वेत्ता तो थे ही नहीं इसलिये जब उनसे कहा जाता कि जब तुम्हारा यह जगत बना हुआ है तो इसके बनने से पूर्व इसके बनाने वाले की कोई आवश्यकता नहीं रहती और जब आवश्यकता नहीं तो उस को नित्य अर्थात् अनादि और अनन्त सिद्ध करना असम्भव है । तो वे चुप हो जाते थे, इस प्रकार महापुरुषों की दुधारी तलवार ने महामूर्खों की मूर्खता झाड़कर फेंक दी । और तो कुछ बन न पड़ा महापुरुषों को गालियाँ देने लगे । इन महापुरुषों के निर्वाण के पश्चात् इस अनुपम दुधारी तलवार के हाथ निकालने वाला कोई भी नहीं रहा, लोग इसे इकधारी तलवार समझकर ही घुमाने लगे जिस का फल यह हुआ कि अपनी तलवार ने अपने ही अंगो को घायल करना आरम्भ कर दिया । जैन महापुरुष क्योंकि मुक्तात्मा थे इसलिये चाहे वेदों का भी काल वश खंडन कर दिया पर सत्य उनके हृदय पर लिखा हुआ था । इसीलिये उनकी पवित्र वाणी से जो मूल सिद्धान्त निकला वह ऐसा था कि जो सामयिक पापों को दूर करने में पूरा समर्थ था और आगे चलकर लोगों को वैदिक मार्गपर भी लेजाने वाला था । यदि उनका सिद्धान्त यही होता कि इस जगत का कारण कुछ भी नहीं है, यह स्वयं अपना कारण है तो भला इस बात को कौन मानता यदि इस जगत

को ही कारण मान लेवें तो फिर ६ पदार्थों के नित्य मानने की क्या ही आवश्यकता थी। यह धर्म का विषय बड़ा ही टेढा है, एक ही बात आज धर्म मानी जाती है, वही किसी समय पाप हो जाती है। जिस कर्म को करता हुआ ज्ञानी धर्म करता है उसी को करता हुआ अज्ञानी पाप करता है। गो०तुलसीदास जी ने ठीक कहा है कि धर्म का पन्थ कृपाण की धार है भगवान कृष्ण चन्द्र ने भी यही कहा है। यदि जैन महापुरुष वैदिक धर्म के विरोधी होते तो वे अन्य सब बातों का भी खंडन करके नवीन समाजिक धर्म के नियम बनाते। जो पश्चिमी विद्वान् जैन धर्म को वेदों का विरोधी सिद्ध करते हैं; वे भी इस बात को मानते हैं कि जैन मत ने पुराने मत को सर्वथा उलटने की इच्छा नहीं की केवल मनुष्यों के विचारों में सुधार किया। क्या कोई भी तत्वज्ञानी यह कह देगा कि उनके सिद्धान्त अनुचित थे सनातन वैदिक-धर्म्म में यदि कोई विलक्षण बात है तो वह यह है कि वह मनुष्य के कर्म और वचन से अन्तरात्मा और मन की शुद्धता को सब से उत्तम मानता है। हम लोग यद्यपि कट्टर वैदिक धर्मी हैं पर इस पर भी हम जैन महापुरुषों को अपने सर्वोत्तम पूज्य और श्रद्धेय जानते हैं। हम चाहे मूर्ति पूजा के बड़े विरोधी हों पर जैन महापुरुषों की मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा के लिये लिये अपनी गर्दन कटा देने में अपना कल्याण समझते हैं। हम लोग वेद और ईश्वर के शाब्दिक विरोध करने से जैनियों को अपना शत्रु नहीं जानते वरन् हम उनके वेद और ईश्वर सम्बन्धी क्रियात्मक जीवन को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। यदि जैनी लोग केवल श्रद्धा और भक्ति के कारण ही उनको ईश्वर मानते हैं तो हम लोग उनको श्रद्धा-भक्ति के साथ ही अकाट्य युक्तियों और अटल प्रमाणों से ईश्वर मानते हैं। यह बात आगे चलकर प्रकट हो जावेगी।

# जैन मत और उपासना

इस विषय पर तो हम भली प्रकार प्रकाश डाल चुके कि जैन महात्माओं ने ईश्वर के अस्तित्व से क्यों और किस दशा में मुहँ मोड़ा था। अब लोगों का एक आक्षेप यह हुआ करता है कि जैन लोग अपने महापुरुषों को ईश्वर मानकर उनकी उपासना करते हैं। यदि हमारे भाई इस बात को जान लेते कि वास्तव में उपासना क्या है? और उसको क्यों करना चाहिये तो वे केवल जैनियों पर ही आक्षेप न करते। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि जैनियों की उपासना का आदर्श उपासना से कुछ न्यून पद है। पर यह बात बिल्कुल सिद्ध हो चुकी है कि उपासना के विषय में यह लोग सम्पूर्ण मत वालों के नेता हैं; उपासना शब्द का मूल अर्थ है पास बैठना अथवा संगत प्राप्त करना। अर्थात् किसी आदर्श को सामने रखकर उसके गुणों को धारण करके अपनी आत्मा की उन्नति करना। संसार में सब से उत्तम आदर्श सर्वगुणसंपन्न परम पिता परमेश्वर है, जिस में कोई भी अवगुण नहीं है; परमेश्वर के पश्चात् दूसरा नम्बर महापुरुषों का है और तीसरा नम्बर साधारण सज्जन पुरुषों का है। उपासक भी संसार में तीन ही कोटि के होते हैं। कुछ मनुष्य तो इतने उच्च होते हैं कि उनका हृदय परमेश्वर को ही अपना आदर्श बनाकर जीवन सुधारने में अपना कल्याण निश्चय कर लेता है। दूसरे मनुष्य वे होते हैं, जो महापुरुषों को अपना आदर्श मानकर जीवन सुधारने लगते हैं, तीसरी कोटि के मनुष्य वे होते हैं, जो सज्जन मनुष्यों की संगत में बैठकर अपना जीवन सुधारने लगते हैं। मनुष्य के जीवनोद्देश की पूर्ति उसी समय होती है। जब कि वह परम पिता के गुणों को धारण करने के योग्य हो जाता है। पर

यह बात मनुष्य की योग्यता पर निर्भर है, मनुष्य का कल्याण इसी बात में है कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपना आदर्श बनावें। इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य के उच्चादर्श रखने ही में कल्याण है, पर जिस मनुष्य में साधारण मनुष्यों के गुणों को भी धारण करने की शक्ति नहीं है, वह महापुरुषों के गुणों को कैसे धारण कर सकता है और इसी प्रकार जो साधारण महापुरुषों के गुण धारण नहीं कर सकता वह परमेश्वर के गुण कैसे धारण कर सकता है। एक बालक स्कूल में पढ़ना चाहता है, उसका आदर्श इंटरेन्स पास करना है, अब उसका कल्याण इसी में है कि वह जिस क्लास में भली प्रकार चल सकता हो उसी में भरती हो जावे, यदि वह छोटे क्लास में भरती होगा तो उसकी हानि होगी और यदि बड़े क्लास में होगा तो भी उसकी हानि होगी। उस बच्चे को यह भी चाहिये कि ध्यान में इंटरेन्स का उद्देश्य रखते हुये भी छोटे क्लासों के कार्य्य को उत्तरोत्तर श्रद्धा सहित करता रहे। चाहे वह नीचे क्लासों के कार्य्य को अनावश्यक समझकर न करे पर उनको बुरा बतलाना ठीक नहीं है।

यह हम भली प्रकार दिखला चुके हैं कि वाम-काल में वेद ईश्वर और सज्जनों के आदर्श का कैसा अभाव था इसलिये इन महापुरुषों ने जनता के सामने अपना आदर्श रक्खा और कहा तुम हमारे जीवन पर चलो हमारे गुणों को धारण करो। इन महात्माओं के निर्वाण के पश्चात् लोगोंने इनकी मूर्त्तियां भी बनाई और उनके गुण गान करने लगे। और उनके गुणों में सर्वशक्तिमान परमेश्वर के गुणों को भी सम्मिलित कर लिया।

इसमें सन्देह नहीं कि जैनियों के ईश्वरों पर मनुष्याकार होने का आक्षेप अवश्य हो सकता है पर किसी भी मतवाले का ईश्वर उनके ईश्वरों से श्रेष्ठ नहीं है। मुसलमान लोग प्रथम तो

ह० मुहम्मद और खुदा को एक मानकर उपास्यदेव बतलाते हैं, और यदि भिन्न २ मानते भी हैं तो उसे एक चौकी पर बिठाकर अपनी ही बात को आप काटने वाला बताते हैं। ईसाई तो ईसा को ही ईश्वर मानते हैं। ईसा ने अपनी जीवनी में कितनी ही भूल की है। अब और मतों की तो पूछने की आवश्यकता ही नहीं। वाम काल में लोग ईश्वर के नाम पर ही मरते थे उनका विश्वास ईश्वर के विषय में सद्गीत देने का बिल्कुल आज कल के ईसाई, मुसलमानों से बहुत मिलता था जो यह कहते हैं, कि चाहे कितने ही पाप कर लो पर ईश्वर सब क्षमा कर देगा। लोगों की इस कायरता को दूर करके उनको आमावलम्बी बनाने के लिये इन महात्माओं ने कहा कि अरे मूर्खों! यदि सिद्धि प्राप्त कर लो तो तुम ही स्वयं ईश्वर बन जाओगे। इस बात को हम वैदिक काल ही में दर्शा चुके हैं कि मनुष्य किस प्रकार ईश्वर बन जाता है। किसी मत के बुरे या भले होने की कसौटी केवल उसका आचरण है, यदि आज भी जैनी लोग सदाचारी हैं तो वे सब से अच्छे हैं

हमारी समझ में जैन महात्माओं ने जो २८ महापुरुषों के पश्चात् जिन की पदवी बन्द करदी, उसमें यही रहस्य था कि लोग हमारे वचनों से अब आगे न बढ़ें और किसी दूसरे मनुष्य को हमारे सिद्धान्तों में गड़-बड़ करने का अवसर न मिले। इसमें यह भी रहस्य था कि अब लोग हमारी बातों को ठंडे दिल से विचारें। और न जाने इसी से म० बुद्ध ने वैदिक-धर्म का खंडन रोक दिया था। क्योंकि उस समय जैन मत का तत्त्व वेत्ता उनसे अधिक कोई नहीं था। जैन धर्म की नीति के विषय में जो कुछ हमने प्रकट किया है। वही सब भाँति ठीक जान पड़ता है। जैन दत्तसूरि लिखते हैं कि जो महापुरुष अष्टादश दूषण रहित-तत्त्व ज्ञानी भविष्य दर्शी हुये हैं उन्ह

का नाम जिन है। आत्माराम जैनी कहते हैं कि प्राचीन वेद जैन धर्म के लिये मान्य थे, पर जब ब्राह्मणों ने उनमें मिलावट करदी तो वे त्याज्य हो गये। जैन ग्रंथों से सिद्ध है कि महावीर स्वामी के समय ओ३म का मन्त्र था और उसी से मिलता हुआ नवकार का मन्त्र भी प्रसिद्ध किया।

## एक बड़ा प्रमाण

जैन महापुरुषों की धर्म सम्बन्धी भविष्य नीति के विषय में जो कुछ हमने लिखा है, यह कोई साधारण अटकल-पच्चू बात नहीं है वरन् सत्य बात है। जैन मत में जो स्याद्वाद का सिद्धान्त है इसकी तह में यही बात है, और यही सिद्धान्त हमारी बात का प्रबल प्रमाण है। इस सिद्धान्त का आशय यही है, कि एक बात को हम वर्त्तमान परिस्थिति में जिस प्रकार कह रहे हैं, उसी बात को दूसरी परिस्थितियों में उसी प्रकार नहीं कह सकते। पर शोक इस बात का है न इस गूढ़ बात को न तो जैनियों के सब विद्वान् समझे और न दूसरे लोग समझे। जिस प्रकार स्काउटिंग कोई नवीन बात नहीं है वरन् प्राचीन ब्रह्मचर्य्याश्रम का रूपान्तर मात्र है इसी प्रकार स्याद्वाद भी कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। जिस प्रकार अफ्रीका की एक विशेष घटना ने सर बेडन पावल को स्काउटिंग को विशेष रूप देने के लिये विवश कर दिया इसी प्रकार जैन महापुरुषों को उस समय की परिस्थिति ने स्याद्वाद को विशेष रूप देने पर विवश कर दिया था। वास्तव में स्याद्वाद क्या है वह जैन महापुरुषों के पूर्ण ज्ञानी होने का एक ही अकाट्य प्रमाण है। जिन लोगों ने धार्मिक इतिहास का कुछ भी मनन किया है वे जानते हैं कि मनुष्य जाति ने एक ही बात को अपवाद रहित और सब कालों के लिये लागू ठहराकर कितना अनर्थ किया है

इस गढ़े से बचाने के लिये यह स्याद्वाद रक्खा था। जिसप्रकार ह० ईसा मुहम्मद और पौराणिक आचार्य्यों ने अपने भविष्य वाणी में अपने वर्त्तमान सिद्धांतों के न समझने की भविष्य दशा के लिये दूसरे आचार्य्यों को अनेक सूचना दी हैं इसी प्रकार जैन धर्म के साथ स्याद्वाद हैं। स्यावाद तत्त्व वेत्ताओं के लिये है, साधारण मनुष्यों के लिये नहीं है। न उनसे उन लोगों को कुछ लाभ नहीं पहुँच सकता है, अब हम यह दिखलाते हैं कि स्याद्वादानुसार एक ही बात के विरुद्ध कैसे कहा जा सकता है।

(१) यह सभी जानते हैं कि आकाश को साधारणतः सर्वव्यापक कहा जाता है, पर जिस समय ब्रह्म से तुलना की जावेगी तो आकाश परिछिन्न अथवा उससे छोटा ही ठहराया जावेगा।

(२) इसी प्रकार काल की उत्पत्ति साधारणतः नहीं कही जा सकती पर जिस समय ब्रह्म की नित्यता अथवा सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया जावेगा उस समय काल की भी उत्पत्ति मानी जावेगी, इत्यादि। महात्मा गांधी से एक बार पूछा गया कि सत्य बात की क्या पहचान है तो उन्होंने इस का यही उत्तर दिया कि सत्य वही है जिसको एक सच्चा मनुष्य (धर्मात्मा-त्यागी-स्वार्थहीन) अपने मुख से कहे। यद्यपि परमेश्वर ने वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान देदिया है। पर इस बात को महापुरुष ही जानते हैं कि वेद भगवान की कौन सी बात किस समय के लिये ग्राह्य है और किस समय के लिये त्याज्य है।

# जैन मत का वैदिक धर्म पर प्रभाव

विद्वानों का निश्चय है कि जैन मत का प्रभाव बौद्ध मत से अधिक पड़ा क्योंकि बौद्ध मत को वास्तव में नवीन मत कहना ही कठिन था म० बुद्ध ने तो केवल सदाचार और यम-नियम की शिक्षा दी थी। उन्होंने मत चलाने के सिद्धान्त ही स्थिर नहीं किये। वैदिक धर्म पर जैन मत का प्रभाव बहुत ही पड़ा था।

(१) पशुयज्ञ और कर्मकांड का कार्य्य ढीला पड़ गया, पर साथ ही कर्मकाँड के साथ ज्ञान और उपासना ने भी स्थान ले लिया।

(२) दार्शनिक सिद्धान्तों पर बड़ा विचार हुआ।

(३) लोगों में त्याग का जीवन उत्पन्न कर दिया।

(४) पोलीटिकल अवनति हुई।

(५) संसार में मतमतांतरों की नीव पड़ गई।

# जैन मत की अवनति क्यों हुई

चाहे जैन मत के विरोधी उनके विषय में कितनी ही बे सिर पैर की बातें उड़ाते हों पर यह बात अब इतिहास से सब प्रकार सिद्ध होगई है कि जैनियों में व्यभिचारादि अवगुण कभी नहीं फैले जैनियों में यह एक ऐसी विलक्षण बात पाई जाती है, जिसको देखकर आश्चर्य्य होता है, आज तक संसार में जितनी जातियां हुईं उनके अवनति काल में यह अवगुण अवश्य उत्पन्न हो गया था। दूसरा कारण कुछ विचार शून्य यह भी बतलाते हैं कि ब्राह्मणों ने बलात्कार इन लोगों को अपने मत में मिलाया, इस मूर्खता का खंडन हम आगे चलकर करेंगे। पर इतना तो सभी जानते हैं कि कोई जाति अथवा मत किसी के अवनति करने से अवनति नहीं होता वरन् और

दवाने से ऊपर को उठा ही करता है। अवनति सदैव अपनी ही किसी बुराई से हुआ करती है। चाहे और मत इसको न मानते हों पर जैन मत तो ऐसा ही मानता है, उनका मत तो इस विषय में इतना उठा हुआ है कि वह अपने सिवा किसी में भी बुराई नहीं देखता। फिर वह कैसे कह सकता है कि हमारी अवनति अमुक मत ने की।

महापुरुषों के मूल सिद्धान्तों को न समझने से जैनियों में कई बुराई आगई थीं। सब से बड़ी बुराई यह आगई थी कि लोगों ने त्याग को ही अपना जीवन बना लिया, वे संसार के कार्य्यों में उदासीन हो गये थे। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह त्याग का पात्र था अथवा न था पर संसार के कर्मों को वह भी पाप समझता था। त्याग कोई बुरा कर्म नहीं है पर उसका अनुचित प्रयोग सब से अधिक दुखदाई है त्याग केवल इतना ही होना चाहिये कि जिससे मनुष्य भोग का दास न बनजावे, कोई मनुष्य जो पहिले भोग का दास था अब त्याग का दास होगया, लाभ कुछ भी नहीं हुआ दासता अब भी न छूटी।

दूसरा कारण यह था कि लोगों ने मूल बात को न समझकर अहिंसा धर्म का स्वरूप विगाड़ दिया था। इस विगड़े हुये सिद्धान्त ने क्षात्र-धर्म पर बुरा प्रभाव डाला कई राज्य इसी की कृपा से धूल में मिलगये थे, इसलिये क्षत्रियों ने ब्राह्मणों का मत स्वीकार कर लिया था जिसमें क्षात्र-धर्म का बड़ा ही मान था। राज्य का जो प्रभाव जनता पर पड़ता है उसे विद्वान् जानते ही हैं। तीसरा कारण यह था कि जैनियों में उदारता का अभाव होगया था। द्विजों को छोड़कर उनके मत में कोई नहीं आसकता था। अन्य मतवालों को न तो उनके धर्म ग्रन्थ देखने की आज्ञा थी न उनके धार्मिक कृत्यों में

सम्मिलित होने की। जैनियों को छोड़कर वे किसी से भी सहानुभूति नहीं रखते थे।

चौथा सब से अधिक हानिकर कारण यह था कि वे किसी शक्ति को जगद्कर्ता नहीं मानते थे, यह एक ऐसी बात थी जो कि मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क दोनों पर मुहर लगाती थी। इस विचित्र नियमित और विलक्षण रहस्य पूर्ण जगत को देखकर साधारण बुद्धि का मनुष्य भी नहीं मान सकता कि इसको किसी सर्वशक्तिमान शक्ति ने नहीं बनाया मनुष्य स्वभाव से ही सहायता का इच्छुक है यदि उनको और भी कुछ नहीं सूझता तो सूर्य, चन्द्रमा, ईंट, पत्थर, कब्र मूर्तियों को ही अपना सहायक मानकर इस प्रवृत्ति को पूरा करने लगता है। इनके विरुद्ध जो लोग केवल स्वलम्बन के ही दास बन जाते हैं। वे भी अकृतकार्य्य रहते हैं। योरुप में किसी समय ईसाई मत के शक्तिहीन ईश्वर और इवोल्यूशन थ्यौरी के अनर्थ की प्रेरणा से अनीश्वरवाद चला पड़ा था, पर अब उपनिषदों की शिक्षा ने और वैदिक दर्शनों के अनुवाद ने दृष्टि कोण बदल दिया है।

## जैन मत का नवीन कार्य्य

(१) संसार में सब से प्रथम ईश्वर, वेद, और कर्म कांड का खंडन किया।

(२) वेद और ईश्वर का खंडन करते हुये भी वैदिक-धर्म के तत्त्व-ज्ञान का प्रचार किया।

(३) संसार में मत-मतांतरों की नींव डाली।

(४) भारतवर्ष में मूर्ति पूजन की नींव डाली और संसार में सब से प्रथम उसे धर्म में स्थान दिया।

(५) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना के स्थान पर ईश्वर (मुक्तात्माओं) की उपासना को प्रधानता दी।

भगवान बुद्ध

पृष्ठ ९२

Shukla Press, Lucknow.
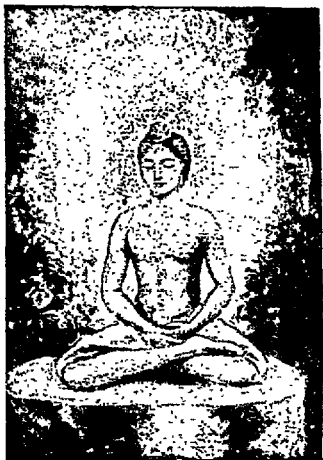
# बौद्ध मत का वृत्तान्त

इस संसार का कुछ ऐसा नियम है, कि पाप कुछ काल तक वो खूब फलता-फूलता है पर जिस समय उसका भोग आ जाता है तब वह नित्य नई आपत्तियों में फंसता जाता है। ठीक उसी समय जब कि महावीर स्वामी पापों के घड़े को डुबाने के लिये बड़ा परिश्रम कर रहे थे, परम पिता परमेश्वर ने उनकी मृत्यु से प्रथम ही एक महान पुरुष को भारतवर्ष में जन्म देने की कृपा की। अर्थात् ईसा से ५५७ वर्ष पूर्व नैपाल देश की तराई में गोरखपुर के उत्तर कपिल वस्तु नगर के शाक्य वंशीय क्षत्री राजा के धर्म घर में एक बालक उत्पन्न हुआ। जिसका नाम गौतम और उपनाम सिद्धार्थ था यही छोटा सा बालक म० बुद्ध कहलाया। क्षत्रियों के वंश में उत्पन्न होने पर भी वे बचपन ही से दया और प्रेम की मूर्त्ति थे। घुड़ दौड़ हो रही थी और सम्भव है कि वे ही आगे निकलेंगे, पर हाँपते हुये घोड़े का पसीना देखकर वहीं रुक जाते हैं। वन में किसी जीव को देख कर बाण चढ़ा लिया है पर इसी बीच जो हृदय में प्रेम और दया का समुद्र उमड़ा तो सोचने लगे कि भला इस दुखिया प्राणी ने मेरा क्या बिगाड़ा है, इस विचार तरंग के उठते ही बाण को तरकस में रख लेते हैं। वर्ण व्यवस्था के नाम पर ब्राह्मण लोग बड़ी मन मानी करना चाहते थे मद्य, मांस, भंग, सुल्फा और व्यभिचार ने तो इनकी जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं में स्थान पा लिया था, वे चाहते थे कि न तो हम कुछ करें और न दूसरों को कुछ करने दें। इसीलिये वे जन्म को प्रधानता देना चाहते थ। इन लोगों ने धर्म के सच्चे स्वरूप को कर्म कांड की मैली चादर से ढक दिया था। पशु-यज्ञ ने ईश्वर और वेद से श्रद्धा-भक्ति दूर करदी थी। जन्त्र, मन्त्र, जादू

टोना और दंभ का बड़ा ज़ोर था। पवित्र जीवन का कुछ भी मूल्य न था। हठ योग के व्यायाम ने न जाने कितने धर्मात्माओं के जीवन को नष्ट कर रक्खा था। देश में ऐसे ही बुरे २ कृत्यों को देखकर ये बड़े दुखी हुआ करते थे। एक दिन गौतम बहुत से राजपुत्रों के साथ में आखेट में चले गये, एक निर्दयी बालक ने किलोल करते हुये श्वेत और मनोहर हंस की छाती में ताक कर ऐसा बाण मारा कि वह मन मोहन पक्षी भूमि पर गिर पड़ा। गौतम इसे सहन न कर सका और झट भूमि से उठाकर अपने हृदय से लगा लिया, उस समय तो इस हिंसक बालक ने कुछ न कहा, पर जिस समय चिकित्सा करने से वह स्वस्थ होकर गौतम के पीछे २ फिरने लगा तो उस बालक के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई, उसने गौतम से कहा हमारा हंस लाओ, गौतम ने कहा यह हंस तुमको कभी नहीं दिया जा सकता। यह झगड़ा इतना बढ़ा कि अन्त में महासभा में पहुंचा। राज सभा में जो वादानुवाद हुआ, उस का सारांश नीचे लिखा जाता है।

प्रधान मंत्री—( हिंसक बालक की ओर मुख करके ) राज कुमार! तुम क्या चाहते हो।

हिंसक बा०-श्रीमान् जी! गौतम मेरा हंस नहीं देते।

प्र० मंत्री—गौतम जी! तुम हंस को क्यों नहीं देते।

गौतम—श्रीमान् जी! यह हंस मेरा है।

प्र० मंत्री—क्यों राज कुमार, यह तुम्हारा हंस है वा गौतम का।

हिंसक बा०-यह मेरा है क्योंकि मैंने मारा था।

प्र० मंत्री—यह हंस तो जीता हुआ है। यह तुम्हारा कैसे हो गया।

हिंसक बा०—गौतम अधमरे को उठा लाये थे, अब यह अच्छा हो गया है।

प्र० मंत्री—गौतम तुम तो बड़े सच्चे हो फिर यदि यह हंस अच्छा हो गया था तो भी इस बालक को दे देना चाहिये था।

गौतम—इसका सम्बन्ध तो मरे हंस से था इस जीवित हंस से कुछ नहीं है।

प्र० मंत्री—क्या जीवित और मृतक दो हंस थे।

गौतम—जब मनुष्य मर जाता है तो क्या उस दशा में उस से वही सम्बन्ध रहता है जो जीवित दशा में था।

प्र० मंत्री—यदि कोई मनुष्य फिर जी जावे तो क्या उस से पूर्ववत सम्बन्ध नहीं रहता।

गौतम—निस्संदेह वैसा ही रहता है।

प्र० मंत्री—तो फिर देते क्यों नहीं?

गौतम—राजकुमार से इस हंस का क्या सम्बंध था।

प्र० मंत्री—वह तो पक्षी है उस से क्या सम्बंध होता।

गौतम—जब कुछ भी सम्बंध न था तो अब भी कुछ नहीं हुआ।

प्र० मंत्री—न्याय की दृष्टि से तुम्हारी बात में यह दोष है कि तुम मनुष्यों के सम्बंध को पक्षी के सम्बंध पर घटाते हो।

गौतम—तो क्या इस में वही आत्मा नहीं है।

प्र० मंत्री—आत्मा वही है पर इस समय तो अधिकारी और अनाधिकारी का झगड़ा है।

गौतम—प्राणी पर अधिकार जमाना यह तो पशुत्व का चिन्ह है।

प्र० मंत्री—तो फिर तुम अपना अधिकार क्यों जमाते हो।

गौतम—मैं तो इसको अपना मित्र जानता और पालन करता हूँ।

प्र० मंत्री—इसी प्रकार यह भी इससे प्रेम करते हैं तभी तो मांगते हैं।

गौतम—यदि यह प्रेम करते तो मारते ही क्यों ?

प्र० मंत्री—देखो धर्म यह भी तो आज्ञा देता है कि अपनी प्रसन्नता के स्थान पर दूसरे की प्रसन्नता पर अधिक ध्यान रखना चाहिये।

गौतम—तो आप दोनों को मुझ अशक्त की प्रसन्नता और इस जीव की प्रसन्नता का भी तो ध्यान रखना पड़ेगा।

प्र० मंत्री—देखो राजकुमार! तुम तो समझदार हो यह मूर्ख बालक है, यदि तुम इसे दे दोगे तो यह बड़ा प्रसन्न होगा।

गौतम—इसकी प्रसन्नता तो इस जीव के मारने ही में समाप्त हो गई थी। क्योंकि इसको तो तड़पने में बड़ा सुख होता था।

प्र० मंत्री—अब यह अधिक प्रसन्न होना चाहता है।

गौतम—तो इनको मेरी तलवार लेकर अपने हृदय में मार लेनी चाहिये क्योंकि जिस बात को देखकर दूर ही से आनन्द मिलता है उसके अनुभव से तो और भी आनन्द मिलता है।

राज सभा के सम्पूर्ण सभासद छोटे से बालक की ऐसी बुद्धि देखकर बड़े ही चकित हुये। अन्त में यह निश्चय हुआ कि दोनों बालकों को दूर २ खड़ा कर दो और हँस को बीच में रख दो, जिस बालक की ओर को हँस चल पड़े उसी को दे दो। ऐसा करने पर भी हंस मधुर शब्द करता हुआ गौतम की ओर दौड़ने लगा। फिर तो वह बालक बड़ा खिसियाना होकर रोने लगा। उसकी यह दशा देखकर गौतम से न रहा गया और

कहा लो भाई मैं तुमको अपनी प्रसन्नता से इसे देता हूँ पर याद रक्खो जब तक तुम्हारे मन में इसको अथवा अन्य जीव को मारने का विचार रहेगा यह तुम्हारे पीछे २ नहीं फिर सकता, इस घटना का दूर २ तक ऐसा प्रभाव हुआ कि लोगों ने अपने क्रूर भावों को हृदय से निकालकर फेंक दिया। सच बात है महानपुरुषों की पांव की धूल में भी प्रभाव होता है, जब गौतम बड़े हुये तो यशोदा नाम की एक कन्या से उनका विवाह कर दिया गया, जिससे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। एक समय रात्रि में उन्होंने बड़ा ही भयंकर स्वप्न देखा, जिससे मन बड़ा ही खिन्न हो गया और वे संसार को असत्य और दुख पूर्ण समझकर रात्रि ही में घर से चल पड़े। अभी कुछ ही दूर चले थे कि उनका हृदय अपने पुत्र के प्रेम से भर आया। तुरन्त उल्टे फिरे महल में आकर पुत्र का मुख चुम्बन करके चल दिये। संसार के मोह ने उन्हें बहुत रोका पर वे कलेजे पर पत्थर रखकर चल ही दिये।

## बुद्धजी की कठोर तपस्या

घर से आकर गौतम ने ब्राह्मणों से ६ दर्शन पढ़े, जब इस से शान्ति न हुई तो वे गया के घने वनों में हठयोग की तपस्या करने लगे इस तपस्या का फल यह हुआ कि उनका शरीर सूख गया और हड्डियां ही शेष रह गई। अब गौतम ने सोचा कि इससे भी कुछ लाभ नहीं है, यदि थोड़े दिन भी यह तपस्या की तो मर जाने में कुछ सन्देह नहीं है, यह निश्चय करके वे अपने पांचों चेलों को साथ लेकर चल दिये जब उनका चित्त सामयिक धर्म से फिरा हुआ देखा तो उनके चेलों ने भी उनका साथ छोड़ दिया। कुछ दिनों तक गौतम भिक्षा करके जीवन व्यतीत करते रहे, जब कुछ शरीर में बल आगया तो फिर शान्ति का

उपाय सोचने लगे, अन्त में जब कोई बात समझ में न आई तो एक पीपल के नीचे समाधि लगाकर बैठ गये, इसी बीच उनको एक प्रकाश के दर्शन हुये, और शान्ति प्राप्त हुई, अब उनको निश्चय हो गया कि वास्तव में अहिंसा, और यम, नियम का पालन ही सच्ची शान्ति का उपाय है। अब उन्होंने अपना नाम बुद्ध ( सिद्ध ) रक्खा। बहुत से मनुष्यों की धारणा है कि गौतम ने अपना बुद्ध नाम अपना नवीन मत चलाने के विचार से ही रक्खा था, जिससे भोले-भाले मनुष्य मेरे मत में आजायें यह उनकी भूल है, बुद्ध नाम रखने के कई कारण थे प्रथम यह कि लोग बुद्ध का नाम सुनते ही मेरी बात सुनने को चले आवेंगे, संसार के सभी महापुरुषों ने लोगों को अपनी ओर खींचने के लिये किसी न किसी उपाय का सहारा लिया है। दूसरे जिन की पदवी आने के लिये बन्द होगई थी। तीसरे गौतम का जैन-मत से कुछ थोड़ा सा मत भेद भी था।

## महात्मा गौतम बुद्ध का प्रचार

उस पीपल के नीचे से उठकर बुद्धजी अपने सिद्धान्तों का उपदेश करते हुये काशी में आ गये, और अपने मत का उपदेश करने लगे, उस उपदेश का ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि उनके वही पहिले शिष्य जो उनसे अप्रसन्न हो गये थे, फिर उनके चेले बन गये। इसी प्रकार उन्होंने ३ मास में ६० चेले बनाये और उनको आज्ञा दी कि जाओ मेरे मत का प्रचार करो। उनके इस प्रचार कार्य्य को देखकर वामी लोगों ने बड़ा विरोध किया, पर इस विरोध से उनका उत्साह और बढ़ने लगा, उनकी मूर्ति ऐसी मनमोहनी थी, उनका जीवन ऐसा पवित्र था और उनकी वाणी में ऐसा रस था कि लोग आप से आप खिचते चले आते थे। महात्माजी एक दिन

उपदेश कर रहे थे कि एक वामी ब्राह्मण ने आकर बुद्धजी से वादानुवाद आरम्भ कर दिया ।

## वामी और बुद्धजी का शास्त्रार्थ

वामी—क्या यज्ञ में भी पशुवध पाप है ।
बुद्ध—बिल्कुल ही पाप है ।
वामी—तुम्हारी बात कैसे मानें ।
बुद्ध—जिससे किसी प्राणी को कष्ट हो वही पाप है ।
वामी—वैद्य और गुरू भी तो कष्ट देते हैं ।
बुद्ध—वे तो उनके कल्याण की इच्छा से देते हैं ।
वामी—हम भी पशु को स्वर्ग भेजते हैं ।
बुद्ध—आपने माता, पिता और पुत्र को क्यों नहीं भेजते ।
वामी—वेदों में इनके लिये नहीं लिखा ।
बुद्ध—वेद क्यों बनाये गये हैं ।
वामी—जीव मात्र के कल्याण के लिये ।
बुद्ध—नाना प्रकार की योनियां क्यों बनाई हैं ।
वामी—कर्मों के फल भोग के लिये ।
बुद्ध—जब फल ही भोगना है तो वेद व्यर्थ हुये ।
वामी—मनुष्य की तो कर्म योनि है ।
बुद्ध—ऐसा क्यों ?
वामी—जिससे मनुष्य अच्छे कर्म करके सद्गति प्राप्त करे ।
बुद्ध—और पशु क्यों बनाये ।
वामी—केवल फल भोग के लिये ।
बुद्ध—तो फिर उनको यज्ञ से फल कैसे मिल सकता है ।
वामी—वेद मे तो ऐसा ही लिखा है । क्या वेद भी असत्य है ।

बुद्ध—यदि यह बात है तो उनके असत्य होने में क्या संदेह है।

स्वामी—अरे पापी नास्तिक तेरी जिह्वा नहीं गिर पड़ती वेद को भी असत्य कहता है।

बुद्ध—हम ऐसे वेदों को नहीं मानते।

भगवान बुद्ध के सामने जब कोई वेद वचन का प्रमाण देता तो वे यही उत्तर दिया करते थे कि हम तुम्हारे वेद को नहीं मानते। बुद्धजी के पश्चात् उनके शिष्यों ने इतना विरोध बढ़ा दिया कि वे अन्य अच्छी वेदोक्त बातों का भी खंडन करने लगे।

बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि बुद्धजी ने चारों वेद, ६ शास्त्र और ६४ विद्यायें पढ़ी थीं। इस पर वेदों के विद्वान् बड़ा आश्चर्य करते हैं कि फिर वेदों के विरुद्ध शब्द क्यों कहे, उनको चाहिये था कि शंकरस्वामी और स्वा० दयानन्द की भाँति वामियों के भाष्यों का खंडन करते। बौद्धों की विद्या सम्बन्धी बात में अतिशयोक्ति भी जान पड़ती है, क्योंकि उस काल में हमारे विचार में ब्राह्मणों को वेदों का पढ़ाना बिल्कुल ही बन्द होगया था। और यदि उन्होंने पढ़े भी होंगे तो केवल वामियों के भाष्य पढ़े होंगे। पर जब हम उनकी जीवनी में वैदिक धर्म के प्रति कुछ लगाव भी देखते हैं तो बड़े ही आश्चर्य में पड़ जाते हैं यदि उनको शुद्ध वैदिक धर्म का ज्ञान न होता तो वे उस काल में भी इस धर्म की ओर कभी न खिचते जिस में सारे पाप वेदों के ही नाम पर किये जाते थे।

## बुद्ध भगवान और वेदों का मोह

(१) इस बात को सभी ऐतिहासिक विद्वान् मानते हैं कि बुद्धजी ने पुराने वैदिक-धर्म में केवल पशु-वध का ही खंडन किया था, वे लोगों की रीति, प्रथा और देवताओं को बुरा नहीं बतलाते थे। वेद, ईश्वर और आत्मा के विषय में वे मौन

ही रहे थे, एक दिन उनके प्यारे शिष्य मलुकप्पुत्त ने कहा भगवन यह समझ में नहीं आता कि यह नियमित जगत कैसे बन गया. इस पर बुद्धजी ने उत्तर दिया कि पुत्र! मैं कोई तत्ववेत्ता नहीं, गुरु नहीं, महात्मा नहीं, मैं तो केवल यह कहता हूँ, कि अपने जीवन को पवित्र बनाओ। इससे सिद्ध होता है कि बुद्धजी इन बातों के झगड़े में पड़कर अपने प्रचार में रोज़ अटकाना नहीं चाहते थे।

(२) जब उनके चेले ग्रन्थ बनाने के लिये कहते तो वे सदा यही उत्तर देते थे कि ग्रन्थ तो संसार में और ही बहुत हैं, जब उन से ही कुछ न हुआ तो मेरा लिखा ग्रन्थ क्या करेगा। यदि तुम अपना और दूसरों का कल्याण चाहते हो तो अपने हृदय पत्र को शुद्ध करके उस पर अहिंसा और पवित्र जीवन यही दो शब्द विश्वास की सुनहरी रोशनाई से लिख लो। यह बात तो सिद्ध है कि उन्होंने अपने जीवन में कोई ग्रन्थ नहीं लिखने दिया।

(३) एक दिन भगवान बुद्ध बोधि द्रुम के नीचे बैठे थे, एक सरल मार्गी ब्राह्मण ने आकर पूछा। भगवन् ब्राह्मण में क्या गुण होना चाहिये, इस पर बुद्धजी ने कहा। (१) जो वेदों का पूर्ण विद्वान् हो। (२) वासना रहित (३) परोपकारी (४) यम, नियम का पालन करता हो।

(४) जब लोग उनसे कहते कि आप तो कोई नवीन मत चलाना चाहते हैं तो इस पर वे सदा यही उत्तर दिया करते थे कि मैं कोई भी नवीन मत नहीं चलाता, मैं तो पुराने आर्य्यों के धर्म को फिर जीवन देना चाहता हूँ, देखो मुझसे पहले कई बुद्ध (ऋषि, मुनि) हुये हैं, जो मेरी ही बातों का प्रचार किया करते थे। बौद्ध ग्रंथों में उनके नाम कनक, काश्यपादि लिखे हैं और कपिलवस्तु में उनके स्मृति चिन्ह भी बतलाते हैं।

## कुछ दाल में काला है

हमारे सामने कई प्रश्न ऐसे आ जाते हैं कि जो हमको चक्कर में डाल देते हैं, यदि यह प्रश्न किसी ऐसे-वैसे मनुष्य की जीवनी से सम्बन्ध रखते तो हम चुप हो जाते पर वे प्रश्न संसार के महान पुरुषों से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिये उन पर विचार करना अनिवार्य्य हो गया वे प्रश्न यह हैं।

(१) २४ के पश्चात जिन अथवा बुद्ध की पदवी क्यों बंद हो गई।

(२) जैन और बौद्ध ग्रंथों में महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध को एक भी माना है और दो भी।

(३) बुद्धजी ने सामयिक वैदिक-धर्म का वैसा ही तीव्र खंडन क्यों नहीं किया जैसा कि जैन महापुरुषों ने किया था।

## अनुमान

ऐसा जान पड़ता है कि अपने प्रचार काल के अन्तिम काल में सरल मार्गी लोगों की शक्ति कुछ २ उठने लगी थी, जिसका प्रभाव जैन मत पर तो यह पड़ा होगा कि वे वामियों के अनर्थों को देखकर जो वेदों का खंडन करते थे, उनका यह भ्रम दूर होगया, हमारे विचार में इसी से महावीर स्वामीजी ने आगे के लिये किसी नेता की आवश्यकता नहीं समझी, यदि यह कहा जावे कि उन्होंने यह बंधन केवल अपनी कीर्ति के लिये ही लगाया था, तो एक महापुरुष के विषय में ऐसा विचार करना भी महा पाप होगा। यदि इस विचार से यह बंधन लगाया था कि उनके समान महान पुरुष आगे हो ही नहीं सकते, तो इस से स्वयं उनका यह सिद्धांत कटता है कि निर्वाण पद को प्राप्त करने से मनुष्य स्वयं ईश्वर बन जाता है।

महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध का पारस्परिक सम्मेलन ग्रंथों से सर्व प्रकार सिद्ध है, इस दशा में जैन मत से भिन्न नाम (बौद्ध) मत रखने और चलाने की क्या आवश्यकता हुई, इसके कई कारण हो सकते हैं (१) यह कि बुद्धजी अपना नाम चाहते होंगे, इसका खंडन हम पीछे कर चुके हैं (२) यह कि महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध का कोई बड़ा भारी मत भेद होगा। सो यह बात भी ठीक नहीं है, यदि ऐसा होता तो दोनों पक्षों के अनुयायी कभी एक दूसरे की बातों को न अपनाते, वरन् दोनों मतों में जो समान बातें पाई जाती हैं वह इस बात को प्रकट करती हैं कि दोनों का मत एक ही था, और इसी से कहीं २ महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध को भेद दिखलाते हुये भी एक ही मांना है (३) बौद्ध और जैन दो नाम के मतों का कारण यह हो सकता है कि महावीर स्वामीजी ने जब सरलमार्गी लोगों की प्रार्थना को सुना होगा तो इस से वेदों के विषय में अपनी नीति बदल दी होगी (गुप्त रीति से) पर इस नीति को क्रियात्मक रूप देने में अवनति हुये वाम मत के फिर उभरने का भय था, अब इसका उपाय यही था कि उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रचार इस दूसरी नीति के अनुसार भगवान बुद्ध के द्वारा करना ही उत्तम जाना होगा। भविष्यकाल में जब बौद्ध मत में नीची जातियों के मनुष्यों ने आकर, मद्य मांसादि का झगड़ा फैला दिया और उन पुरानी वैदिक बातों का भी विरोध किया जिनका २५ महापुरुषों ने भी विरोध नहीं किया था, तो जैनी उन बौद्धों से जुदे होकर वैदिक समाज से अपने सम्बन्ध रखने लगे।

———

# क्या बौद्ध मत नास्तिक है

जिस प्रकार बहुत से भाई कभी २ धर्मात्मा जैनी लोगों को नास्तिक कहने लगते हैं, इसी प्रकार बौद्धों को भी कहने लगते हैं। कपिल वस्तु नगर ही से कपिल मुनि का सम्बन्ध था, इस दशा में यह अनिवार्य्य है कि उस डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाने वाले काल में इस नगर में सांख्य दर्शन की शिक्षा की प्रधानता होगी, भगवान बुद्ध के जीवन के देखने से पता चलता है, कि सिद्धान्तों के विचार से उनका मत और उनका जीवन सांख्य दर्शन से ही टक्कर खाता है, प्रकृतिवाद तो बौद्ध मत का दार्शनिक सिद्धान्त ही है। जितनी वेदों की चरचा सांख्य दर्शन में है उतनी ही बुद्धजी के भी जीवन में देखी जाती है।

वास्तव में लोग आस्तिक का अर्थ ही नहीं जानते आस्तिक वही है जो वेदोक्त आचरण करता है। वामी नास्तिक थे और बौद्ध तथा जैन लोग सच्चे आस्तिक थे। यदि कोई मनुष्य वेदोक्त आचरण करता हुआ यह कहे कि मैं वेदों को नहीं मानता तो क्या वह पापी है। हम तो उसे दुराचारी वेद २ कहने वाले से उत्तम ही समझेंगे। यदि लोग शंकर स्वामी और दयानन्द स्वामी की होड़ करते हों तो यह उनकी भूल है। यह दोनों महापुरुष नास्तिक कहने के उतने ही अधिकारी थे, जितने कि जैन महापुरुष वेदों के खंडन के। इसमें लोगों को बुरा कहने का कुछ अधिकार नहीं है। वेदों से तो सभी मत शून्य हैं और मनुष्याकार ईश्वर भी सब का एकसाही है।

जिन विद्वानों ने कुछ थोड़ी सी भी रेखा गणित पढ़ी है।

वे जानते हैं कि इस विद्या में किसी साध्य को सिद्ध करने के लिये मूल आकृति का बिल्कुल शुद्ध बनाना अनिवार्य्य है पर ऐसे भी बहुत अवसर आ पड़ते हैं कि जब मूल आकृति को बिना अशुद्ध बनाये साध्य सिद्ध ही नहीं हो सकती। इसी नियम के अनुसार भगवान बुद्ध ने अपने समय में ईश्वर और वेद को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर वैदिक-धर्म का प्रचार किया। इस बात को सभी वैदिक सम्प्रदाय मानते हैं कि सम्पूर्ण वेद गायत्री मंत्र (गुरु-मंत्र) की व्याख्या हैं और गायत्री मंत्र केवल प्रणव (ओ३म्) की व्याख्या मात्र है ओ३म् को जैन और बौद्ध दोनों ही मानते हैं, फिर उनके लिये नास्तिक शब्द कैसे लागू हो सकता है।

## बौद्ध मत के मूल सिद्धान्त

(१) अहिंसा ही परम धर्म है।

(२) आवागमन में कर्मों का फल भोगना पड़ता है, पर जब निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया जाता है, तो फिर आवागमन के चक्र में नहीं पड़ना पड़ता।

(३) केवल प्रकृति ही नित्य पदार्थ है और सब मिथ्या पदार्थ हैं।

(४) यज्ञ करना पाप है।

(५) वेदों के बनाने वाला कोई ईश्वर नहीं है सिद्ध पुरुष स्वयं ईश्वर है।

## सिद्धान्तों पर गहरी दृष्टि

शेष सिद्धान्तों के विषय में हम जैन मत के साथ सब बातें दिखा चुके हैं। भगवान बुद्ध ने दार्शनिक बातों के विषय में कुछ नहीं कहा था, यह तीसरा सिद्धान्त उनसे बहुत पीछे बौद्ध मत के

एक सम्प्रदाय ने गढ़ा था, किसी २ का यह भी मत है कि यहाँ प्रकृति शब्द का अर्थ भी वैसा ही रहस्य पूर्ण है जैसा कि जगत शब्द का अर्थात् प्रकृति का अर्थ त्रिगुणात्मक कारण प्रकृति भी है और स्वभाव भी है, यदि यह बात है तो बड़ी अच्छी बात है क्योंकि स्वभाव शब्द ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों पर घट सकता है। यदि ऐसा नहीं है तो इस सिद्धान्त में कुछ भी जान नहीं रहती, जब सब मिथ्या पदार्थ हैं तो यह सिद्धान्त भी मिथ्या हो गया।

## बौद्ध मत का प्रचार

भगवान बुद्ध और उनके चेलों का जीवन ऐसा पवित्र और तपस्वी था कि उसके प्रभाव से उनके जीवन में ही यह मत सारे मगध और मध्य देश में फैल गया था. कई राजा भी इस मत में आगये थे। ४७० वर्ष पू०ई० में बुद्धजी की मृत्यु हो गई इसके पीछे यवन राजा मलिन्द शकराजा कनिष्क और महान अशोक ने इस मत को स्वीकार करके सम्पूर्ण एशिया अमेरिका और मिश्र देश में इसका प्रचार किया था। राजा अशोक अपनी युवावस्था में बहुत ही कठोर हृदय था. कलिङ्ग के युद्ध में लाखों योद्धाओं को कटता देखकर इसका चित्त बौद्ध मत की ओर फिर गया। एक दिन राजभवन में ब्राह्मणों का भोज था, भोजन के समय वह लोग बहुत हल्ला, गुल्ला कर रहे थे दैवयोग से राजभवन के नीचे से एक बौद्ध भिक्षु भी नीचा मुख किये जा रहा था, उसकी इस दीनता और भोलेपन ने अशोक ब्राह्मण के मत से घृणा और बौद्ध मत से प्रेम बढ़ा दिया, इसी बीच एक दिन वह वन में आखेट के लिये गया, वहाँ वह क्या देखता है कि जो जीव बौद्ध भिक्षुओं के आस

पास फिर रहे थे, वे अशोक को दूर से देखते ही भाग निकले, राजा ने बौद्धों से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि तुम उनके शत्रु और हम मित्र हैं। इस घटना का अशोक पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि तुरन्त ही बौद्ध मत में आ गया। इस राजा को बौद्ध मत के फैलाने की बड़ी धुन थी, जब उसने देखा कि लोग विदेशों में जाने से बहुत जी चुराते हैं तो इसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमती को सन्यास दीक्षा दिलाई अपने हाथ से भगवें वस्त्र पहिनाकार विदेशों में भेजा।

## बौद्ध मत क्यों शीघ्र फैलगया

(१) उस काल में मतमतांतरों का हट धर्म नहीं था लोग सीधेसाधे थे।

(२) बौद्ध-मत में जाति पाँति का भेद न था, इसलिये सम्पूर्ण अब्राह्मण, और विदेशी जातियाँ उस में चली गईं और सच्चे ब्राह्मणों को छोड़कर शेष ब्राह्मण भी उन्हीं में चले गये।

(३) राज्याधिकार उस समय यवन, शक और शूद्रों के हाथ में आगया था।

(४) इस मत में बन्धन बहुत न थे इसलिये अनावश्यक बन्धनों में जकड़े हुए लोग इस मत में आने लगे।

(५) बौद्धप्रचारकों का जीवन बड़ा ही चित्त आकर्षक था।

## बौद्ध मत की महासभा

(१) ४७७ वर्ष पू०ईसा में पटने में ५०० चेलों ने बुद्धजी की शिक्षा और उनके उपदेशों को तीन पुस्तकों का रूप दिया।

(२) ३७७ वर्ष पू०ई०में ७०० भिक्षु मत भेद दूर करने के अभिप्राय से एकत्र हुये।

( ३ ) २४२ वर्ष पू० ई० में अशोक ने सब साधु एकत्र किये और हीनयान नामक सम्प्रदाय के सिद्धान्त स्थिर किये।

( ४ ) १४० ई० में कनिष्क ने एक सभा करके महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्त स्थिर किये, उत्तरी एशिया के लोग इसी मत को मानते हैं।

## सम्पूर्ण मतों का पारस्परिक प्रभाव

बहुत मत यद्यपि सारे संसार में फैल गये थे, पर इसका यह आशय नहीं था कि अन्य मतों का अभाव ही हो गया था। बौद्ध मत के अन्तिम काल में तो उसके विरुद्ध ३६० मत खड़े हो गये थे, बुद्धजी के जीवन में ही जैन लोग गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी में कुछ भेद नहीं मानते थे, और उनकी मृत्यु के पश्चात् तो उनकी जीवन सम्बन्धी घटना ही अपने २४ वें महापुरुष महावीर स्वामी से जोड़ दी इसी प्रकार बौद्धों ने भी जैन मत की बहुत सी बातें अपने मत में मिला लीं। यही अदल बदल दोनों सम्प्रदाय के ब्राह्मणों ने भी कर लिया। इस काल में वाम मार्ग का ढांचा तो बिल्कुल ही बिखर गया क्योंकि इन के शत्रु अब तीन हो गये थे। भगवान बुद्ध से १०० वर्ष के पीछे भांति २ के आचार और विचारों के मनुष्य बौद्धों में आने से मत भेद बढ़ने लगा। जब किसी जाति के अच्छे दिन होते हैं तो लोग बड़े २ मत भेद रखते हुये भी एक दूसरे के मित्र बन जाते हैं। और जब बुरे दिन आते हैं, तो तुच्छ बातें भी भयंकर रूप धारण कर लेती हैं बौद्ध मत के जब बुरे दिन आये तो न कुछ बातों में सिर फूटने लगे, उनमें से कुछ नीचे लखे जाते हैं।

(१) सींग के पात्रों में नमक रक्खा जा सकता है।

(२) दोपहर का भोजन सूरज ढले खा सकते हैं।

(३) दोपहर को दही खा सकते हैं।

(४) चटाई की माप की आवश्यकता नहीं।

(५) मरे हुये जीव का मांस खा सकते हैं। इन्हीं बातों के कारण जैन और बौद्ध मत के अनेक संप्रदाय बन गये।

## बौद्ध और जैन मत की समानता

(१) बुद्ध और जिन शब्द पर्य्यायवाची हैं।

(२) दोनों गौतम और महावीर स्वामी को एक ही मानते हैं।

(३) दोनों उक्त महापुरुषों को दो भी मानते हैं।

(४) दोनों २४ महापुरुषों को मानते हैं।

(५) दोनों में मूर्ति पूजा होती है।

(६) दोनों का उत्कर्ष काल और अवनति काल भारतवर्ष में एक ही है।

(७) दोनों के सिद्धांत लगभग समान हैं।

(८) बौद्ध लोग तो दोनों को मूल में एक मानते ही हैं पर जैन विद्वान् भी ऐसा ही मानते हैं।

इसी से दोनों को एक भी कहा जाता है

## बौद्ध और जैन मत का भेद

(१) बौद्धों में बहुधा शूद्र, विदेशी और अन्य मद्य, मांस का सेवन करनेवाली जातियाँ होती थीं। पर जैन लोगों में द्विज और उच्च वंश के शुद्धाचारी विदेशीय मनुष्य थे।

( २ ) बौद्ध मत में आचार, विचार, छूत छात और जाति भेद नहीं था, पर जैन लोगों में था और अब भी है।

( ३ ) भारतवर्ष के विद्वान् दोनों को दो नाम से पुकारते हैं पर विदेशी दोनों को एक ही कहते हैं।

( ४ ) बौद्धों की शक्ति आदि में बहुत थी पर जैनों की अंत में बहुत थी।

( ५ ) बौद्ध मत अपने प्रचार में उदारता से कार्य्य लेता रहा है पर जैन मत अपने प्रचार में बहुत ही संकीर्ण हृदय रहा है।

( ६ ) बौद्ध मत का एक सम्प्रदाय मूर्ति पूजा को नहीं मानता और दूसरे में बहुत न्यून है पर जैन मत से अधिक मूर्ति पूजा कहीं नहीं है।

( ७ ) बौद्धों का साहित्य नवीन है पर जैन मत का पुराना है।

( ८ ) जैन नाम का मत पुराना है पर बौद्ध नाम का मत नवीन है।

इसलिये दोनों मत भिन्न २ भी कहे जाते हैं

## बौद्ध काल में देश की दशा

इस काल में तीन विदेशी यात्री भारत में आये थे, इनमें पहिला यात्री मेगस्थनीज़ था, जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य्य की राजसभा में सल्यूकस (मलयकेतु) सम्राट की ओर से राज्य-प्रतिनिधि था। इस से ७०० वर्ष पीछे सन् ४०० ई० में चीनी यात्री हीवानसाँग बौद्ध मत की तीर्थ यात्रा करने आया था इसी उद्देश्य से ६३० ई० में फाहियान नामक चीनी यात्री आया था। इन लोगों ने अपने यात्रा-पत्रों में इस देश को बड़ी

ही प्रशंसा की है। वे लिखते हैं कि राज्य प्रवन्ध सब देशों का ऐसा अच्छा था कि लोग अपने घरों और वहु मूल्य रत्नों की दुकानों पर ताला ही नहीं लगाते थे। दुराचार का नाम भी न था। नीच जातियों को छोड़कर कोई भी मांस लहसन, प्याज़ और अन्य बुरे पदार्थों का सेवन नहीं करता था। पुरुष और स्त्रियाँ सभी बलवान और वीर होती थीं। अतिथियों का बड़ा सत्कार होता था। लोग जल माँगने पर दूध ले आते थे। धर्म की बड़ी ही स्वतंत्रता थी। भिन्न २ मत रखते हुये भी लोगों में बड़ा अच्छा प्रेम था। कुछ प्रान्तों में बौद्ध मत का ज़ोर था कुछ में ब्राह्मणों के मतों का ज़ोर था। जो जिस कार्य्य को करने लगता वही उसकी जाति बन जाती थी। मनुष्यों और पशुओं के लिये स्थान २ पर औषधालय थे। प्रत्येक बस्ती एक छोटे से राज्य के समान बनी हुई थी। विद्वानों का बड़ा सत्कार था चाहे वे किसी मत के मानने वाले थे। नालन्दा टकसला और काशी आदि में विद्या की बड़ी उन्नति थी लाखों विद्यार्थी विदेशों से पढ़ने आते थे कभी २ तो उनको स्थान भी न मिलता था विद्वानों को बड़ी २ पदवियाँ थी।

## बौद्ध काल के रचे हुये ग्रन्थ

(१) बौद्ध मत के ग्रन्थ।
(२) जैन मत के कुछ ग्रंथ।
(३) चर्क, सुश्रुत, गणित, ज्योतिष और कुछ जादू टोने के ग्रंथ।
(४) व्याकरण के ग्रंथ।
(५) पुराणों में प्रक्षेप और कुछ नवीन पुराण।

(६) मनुस्मृति श्लोक बद्ध।
(७) कौटिल्य का अर्थ शास्त्र।
(८) मुद्राराक्षस नाटक।
(९) मृच्छकटिक नाटक।
(१०) महाभारत दूसरी बार आदि सन ईसवी में बना।
(११) महाभारत ५ वी शताब्दी में तीसरी बार रचा गया।
(१२) पातंजल योग।

## विद्या की उन्नति के कारण

(१) यावनों और भारतियों के मिलने से।
(२) राज्य प्रबन्ध बहुत ही अच्छा था।
(३) पारस्परिक मत भेद की स्पर्धा से।
(४) अपने २ मत की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये।
(५) राजाओं की सहायता से।
(६) दया धर्म के प्रचार के कारण वैद्यक-शास्त्र की बड़ी उन्नति हुई।

## बौद्ध मत भारत से मिट गया

(१) संसार का नियम है, कि जब कोई जाति उन्नति की चोटी पर पहुँच जाती है। तो उसमें किसी का भय न होने और बहुत से धन के कारण अनेक अवगुण आ जाते हैं। यही दशा बौद्धों के आचार्य्यों की हुई। वे साधु जिनके दर्शन मात्र से पाप दूर होते थे, आनन्द की पूरी सामग्री राज्यों से जब मिलने लगी तो मद्य, मांस, विषय-भोग और आलस्य तथा प्रमाद में फंस गये। बस वेदों और ब्राह्मणों को गाली देने ही में धर्म प्रचार समझने लगे थे।

(२) राज्य क्षत्रियों के हाथ में आगया था, जो न तो नीच साधुओं को सिर झुकाना ही अच्छा समझते थे, न उनके दया धर्म को मानकर बौद्ध राजाओं की भांति युद्ध न करने को ही अच्छा समझते थे। वे अपनी आँखों से ही देख चुके थे कि बौद्ध मत को मान लेने से अशोक और हर्षादि की अन्त में क्या दशा होगई थी।

(३) आचार भ्रष्ट हो जाने से जैन और ब्राह्मण मत के लोग बौद्धों को नीच समझते थे। इसलिये शक, यवन आदि जातियाँ भी जो शासक होने के कारण अपने को उच्च ही जानती थीं, वे जैन मत और हिन्दू मत में आने लगीं और हर प्रकार की सहायता देने लगीं, जिससे इन मतों ने भी उनको मिला लिया। इन राजाओं के प्रभाव से अन्य जातियाँ भी खिंचने लगीं। जैन मत में तो उनके लिये स्थान शुद्ध न था इसलिये ब्राह्मणों के मत में आने लगीं।

(४) बौद्ध मत में केवल ज्ञान ही ज्ञान था और वह भी विकृत रूप में था, उससे जन साधारण पर कुछ गहरा प्रभाव नहीं पड़ा था, इसके विरुद्ध जैन मत और ब्राह्मणों के मत में जहाँ ज्ञानियों के लिये पूरी सामग्री थी उसके साथ ही जन साधारण को मोहने के लिये कर्मकांड, व्यौहार और रीति रिवाजों की कमी न थी।

(५) बौद्ध काल में ब्राह्मणों ने अपने मत की सब बुराई निकाल कर फेंक दी थी।

(६) इस काल के अन्त में ब्राह्मणों मे बड़े २ विद्वान् हुए जिनके दार्शनिक सिद्धान्त ने बौद्धों और जैनों के ज्ञान कांड को फीका कर दिया।

(७) बौद्ध मत के बहुत से सम्प्रदाय बन गये थे।

बौद्ध मत में लौकिक बातों को कुछ भी स्थान न था। वह मत कभी उन्नति नहीं कर सकता जो लोक का ध्यान नहीं रखता।

॥ ॐ ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## चौथा-अध्याय

### पौराणिक काल

५०० सन् ई० से १२०० सन् ई० तक

#### प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हम इस बात को भली प्रकार दिखा चुके हैं कि बौद्ध मत का ढाँचा क्यों बिखर गया, और जैन मत को किस कीड़े ने खाना आरम्भ कर दिया था। बौद्ध मत की अवनति तो ३०० सन् ई० में गुप्त वंशीय क्षत्रियों के समय से आरंभ हो गई थी, बहुत से विचार शून्य पक्षपाती इतिहास लेखक लिखते हैं कि क्षत्रियों ने और ब्राह्मणों ने बौद्धों को हर प्रकार से दबाया था, इसे उनकी मूर्खता न कहें तो क्या कहें जब कि विक्रम की सभा में एक मंत्री ही बौद्ध था। मूर्खों ने इसी प्रकार की बातें बौद्धों और जैनियों के विषय में भी गढ़ मारी हैं। जिस से ब्राह्मण लोग इनको अपना शत्रु ही समझते रहें। यदि व्यापक दृष्टि से देखा जावे तो मिटनेवाली जाति अपने मिटने का कारण स्वयं ही हुआ करती है। एक बड़ा वृक्ष जब बहुत ही पुराना हो जाता है तो उसमें आप ही शक्ति नहीं रहती

ऐसी दशा में जब कि वह सूख गया है, चाहे तो उसे स्वयं गिरा दो, चाहे खड़ा रहने दो, उससे फल और छाया की तो कुछ भी आशा नहीं रक्खी जा सकती इसलिये सब से अच्छा यही उपाय है कि उसे गिरा दिया जावे नहीं तो उस से बड़ा भय लगा रहेगा इसी प्रकार जिस मत में कुछ भी ज्ञान नहीं रहती। उसको दूर करना ही महापुरुष अच्छा समझते हैं, नहीं तो उस से लोगों के जीवन नष्ट होने का भय लगा रहता है। भारतवर्ष में विकृत बौद्ध और जैन मत के विरुद्ध असंख्य मत खड़े हुये पर वास्तव में यह मत बिल्कुल थोते थे, इसलिये बौद्धों और जैनों ने इनको सदैव परास्त किया। अब इन मतों ने एक दूसरी विधि से काम लेना आरम्भ कर दिया अर्थात् जब कभी शास्त्रार्थ होता तो यह लोग उत्तर न देने की दशा में अपने इष्ट देवों की प्रशंसा कविता में सुनाने लगते जिसका विद्वानों पर तो कुछ प्रभाव न पड़ता पर मूर्ख मनुष्य जाल में फंस ही जाते थे। ७०० ई० तक ब्राह्मणों में कोई ऐसा बड़ा दार्शनिक विद्वान् नहीं हुआ जो जैन और बौद्ध मत का सामना कर सके। पुराणों में जो बहुत सी अवैदिक बातें पाई जाती हैं। वे बौद्ध काल में भी ठूंसी गई थीं। यह सब बातें सेर और सवा सेर के झगड़े में बनाई गई थीं। पर ७०० के पीछे बौद्धों और जैनियों को ऐसे महापुरुषों का सामना करना पड़ा जो अपने काल में अनुपम दार्शनिक और अपूर्व वेदज्ञ थे जिसका परिणाम यह हुआ कि यह मत बिल्कुल हो जाते रहे। जिन मतों ने बौद्ध मत के विरुद्ध सिर निकाला था वे बहुत थे पर उनको तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम शैव, दूसरे वेदान्ती वा योग मार्गी तीसरे वैष्णव, उनमें से कुछ का संक्षिप्त इतिहास यहाँ पर लिखा जावेगा।

---

## दत्तात्रेय मत

वैदिक काल में दत्तात्रेय नाम के एक महा तत्त्वज्ञानी और योगी हो गये हैं, जिन्होंने २४ पदार्थों को गुरु मानकर उनसे एक २ शिक्षा ग्रहण की थी। उन्हीं के नाम पर एक योगी ने तीसरी शताब्दी में यह मत चलाया था, वे आत्मा को सर्वज्ञ और ईश्वर रूप मानते थे। वे यह भी कहते थे कि यह सृष्टि आत्मा की भ्रान्ति से ही कल्पित हुई है। प्रकृति के सब गुणों का त्याग निवृत्ति में निमग्न रहना चाहिये अकृत्य और अचिन्त्य ज्ञानियों का स्वभाव है, पर पीछे से उन लोगों में भी मूर्त्ति पूजा और मद्य मांस का सेवन बढ़ गया।

## पाशुपत शैवमत

इस मत के संस्थापक नकुलीश का जन्म ५ वीं शताब्दी में दक्षिण देश में हुआ है। यह लोग अन्य शैवों की भाँति भस्म रुद्राक्ष का माला आदि धारण करते हैं। पर बहुत सी बातें इनमें कापालिकों और अघोरियों की भी पाई जाती हैं। इसमें दो ही बातें हो सकती हैं। प्रथम यह कि यह लोग कापालिक वा अघोरी थे और फिर शैवमत की ऋतु. देख इसकी वायु खाने लगे अथवा शैव थे और इन लोगों के संसर्ग से यह अनाचार भी गले पड़ गया।

## प्रत्यभिज्ञा शैव

इस मत के चलाने वाले अभिनव गुप्ताचार्य्य छटी शताब्दी में हुये हैं। इस मत का सिद्ध यह है कि शिव से भिन्न जीवात्मा नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार शिव का ही आभास है, अर्थात् शिव ही स्वेच्छा और स्वक्रिया से जगत रूप में अवभासित हो गया है। मनुष्य को अज्ञान ही की निवृत्ति का उपाय करना

चाहिये जिससे शिव-जीव जगत की भिन्नता का विचार दूर हो जावे।

## रसेश्वर-शैव

इस मत को अभिनव गुप्ताचार्य्य के किसी शिष्य ने छटी शताब्दी में चलाया था। इस मत में पारे के बने शिव और पारे के दान आदि का बड़ा माहात्म्य लिखा है। इस मत वाले पारे को रस बताकर रसो वे ब्रह्म इस श्रुति का प्रयोग करते हैं। माने इस मत में पारा शिव और ब्रह्म पर्याय वाची शब्द हैं।

## शाक्तमत

इस मत में स्त्री शक्ति की पूजा की जाती है इस मत वाले तंत्रग्रंथों को पांचवां वेद मानते हैं। तंत्रग्रंथों में से कुछ वाम काल में बने थे और कुछ पौराणिक काल में भारतवर्ष के आर्य्य स्त्री का आदर बहुत करते थे। इसी संस्कार को लेकर शाक्त लोग शिव की स्त्री को पूजते हैं। यह मत वाम मत का ही दूसरा रूप है। इसके ७ भेद हैं जिनमें से कुछ तो मद्य मांस का सेवन करते हैं और कुछ नहीं करते। पर देवी-चामुन्डा वा काली को वलि में पशु और कभी २ मनुष्य तक सब देते हैं।

## विष्णु-स्वामी

तीसरी शताब्दी में विष्णु स्वामी नाम के एक आचार्य्य हो गये हैं, उन्होंने व्यास सूत्रों पर भाष्य लिखा और गीता की व्याख्या करके विष्णु भगवान की उपासना का प्रचार किया। उनके शिष्य ज्ञान देव, नाम देव, केशव, त्रिलोचन और श्रीराम आदि थे। इसी श्रीराम ने प्रेमामृत नाम का ग्रंथ लिखा है जिसमें ईश्वर को साकार सिद्ध किया गया है। विष्णु स्वामी विष्णु भगवान से इस सृष्टि को मानते थे उनके मत में एक

विष्णु भगवान ही एक मूल नित्य हैं अन्य सब जगत के पदार्थ भ्रम मात्र हैं। शंकर स्वामी के समय उनकी गद्दी पर बिल्व-मंगल नाम का एक मनुष्य था, जिसे शंकराचार्य्य के एक शिष्य ने परास्त करके ८०६ ई० में इस गद्दी को मिटा दिया।

## धर्म युद्ध के भीष्म पितामह पूज्यपाद महा मान्यवर श्रीकुमारिल भट्टाचार्य्य

उड़ीसा देश के जयमंगल ग्राम में ७४१ ई० में यज्ञेश्वरभट्ट के घर में कुमारिल का जन्म हुआ, माता का नाम चन्द्रगुणा था। इनके पिता अच्छे विद्वान और धर्मात्मा थे, धर्म प्रचार की लग्न कुमारिल में पिता ने ही भरदी थी। जब इन्होंने दर्शनादि शास्त्रों की पूर्ण योग्यता प्राप्त करली तो धर्म प्रचार का बीड़ा उठाया और प्रतिज्ञा की कि जन्म भर ब्रह्मचारी रहकर धर्म सेवा करूंगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये वे घर से निकल पड़े, और सोच विचार में फिरते हुये चम्पा नगरी में जा निकले-जहाँ का राजा तो नास्तिक था पर उसकी कन्या बड़ी ही ईश्वर भक्त और विदुषी थी। यह लड़की अपने राज भवन की छत पर खड़ी थी और कुमारिल उसके नीचे सड़क पर से आ रहे थे!

इनके रंग, ढंग और लक्षणों से ब्राह्मणत्व टपक रहा था, यह जानकर लड़की के मुख से दैवात यह अर्द्ध श्लोक निकल पड़ा कि—

"किमकरोमि कगच्छामि कोवेदानुद्धरस्यति"

भावार्थ—क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? वेदों का उद्धार कौन करेगा ?

इसको बड़े ही मधुर शब्दों में कहते हुये सुन कर

कुमारिल एक साथ चौंक पड़े और उत्तर के रूप में दूसरा अर्द्ध भाग तुरंत उसी स्वर में इस प्रकार कहा।

मा विभेषि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले।

अर्थ—हे लड़की तुम डरो मत अभी पृथ्वी पर कुमारिल भट्ट मैं हूँ। कुमारिल ने उसे कुछ युक्तियाँ भी बताई थीं जिन से राजा भी उसके धर्म में आजावे। दैव की इस चेतावनी का कुमारिल पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा, उत्तरी भारत को छोड़ कर वे सीधे दक्षिण में चले गये, वहाँ उन्होंने कई शास्त्रार्थ किये जिनमें वैदिक धर्म पर होने वाले आक्षेपों के बड़े ही दांत तोड़ उत्तर दिये। पर जैनियों और बौद्धों के शास्त्रों से अनभिज्ञ होने के कारण, उन पर प्रबल आक्षेप नहीं कर सकते थे। इससे प्रचार कार्य्य बहुत ही ढीला रहता था अपनी इस त्रुटि को पूरा करने के लिये वे बौद्धों से बौद्ध बनकर पढ़ने लगे। और उनके सम्पूर्ण सिद्धान्त जान लिये। किसी दिन एक साधु ने वैदिक धर्म पर कुछ आक्षेप किये जिनको भट्ट सहन न कर सके और इस युक्ति से उत्तर दिये कि एक भी बौद्ध से कुछ न बन पड़ा। अब तो बड़ी खल बली पड़ गई और सारा भेद खुल गया। एक दिन कुमारिल पहाड़ी पर बैठे हुये कुछ मनन कर रहे थे कि अहिंसा राग अलापने वाले एक पापी बौद्ध ने चुपके से आकर धक्का देदिया। कुमारिल मरने से तो बच गये पर उनकी एक आँख फूट गई। जब एक धर्मात्मा साधु ने कुमारिल से बड़ी सहानुभूति प्रकट की और उस पापी को बहुत ही बुरा भला कहा तो वेदों के भक्त कुमारिल ने इसे अपने ही कर्मों का फल बताकर क्षमा कर देने को कहा। उस शत्रु के लिये कुमारिल ने एक भी बुरा शब्द नहीं कहा, गिरते समय केवल इतना ही मुख से कहा था कि श्रुति ! क्या तू अपने शरणागत की रक्षा नहीं करती है।

विद्या समाप्त करके वे चम्पा नगरी के राजा सुधन्वा की सभा में आगये। एक दिन सभा हो रही थी अच्छे २ बौद्ध और जैन पंडित विराजमान थे। चारो ओर हरे २ सुन्दर वृक्ष खड़े थे, इसी बीच बादल भी चारों ओर आकर छागये ठीक इसी समय राजसभा के सामने आम के वृक्ष पर आकर कोकिल बोलने लगी। कुमारिल ने तुरन्त यह श्लोक बनाकर सब को सुनाया!

श्लोक

मलिनैश्चैनसङ्गस्ते नीचैः काककुलैः पिक।
श्रुति दूषकनिर्ह्रादैः श्लाघनीयस्तदा भवे॥

इसको सुनकर सारे पंडित जल गये, क्योंकि इसका सीधा सा अर्थ तो यह था कि हे कोकिल? यदि तू कानों को पीड़ा देनेवाली बोली बोलने वाले नीच कौवों की संगत में न रहे तो तू बड़ी प्रशंसनीय है। पर साथ ही यह भी अर्थ है कि हे कुमारिल कवि यदि तू श्रुति (वेदों) को पीड़ा देनेवाली बोली बोलने वाले जैन और बौद्ध पंडित रूपी नीच काकों की संगत से दूर रहे तो तू प्रशंसा के योग्य है।

कुमारिल ने राजा से आज्ञा लेकर प्रथम तो आक्षेपों के उत्तर दिये और पश्चात् ऐसे आक्षेप उनके मत पर किये कि दांत पीसते रह गये। अब तो बड़े २ विद्वानों को बुलाकर शास्त्रार्थ की ठहरा दो शास्त्रार्थ हुये जिन में कुमारिल की विजय हुई इसके पश्चात् कुमारिल ने सारे भारतवर्ष में वेदों की धाक बिठा दी। पर एक यह बात उनके हृदय में कांटे की भांति खटकती रहती थी कि मैंने शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध गुरु के साथ छल करके विद्या पढ़ी है इसलिये जब तक तुष की अग्नि में जलकर न मर जाऊंगा मेरा पाप कभी न छूटेगा। निदान

शंकराचार्य

पृष्ठ १२१
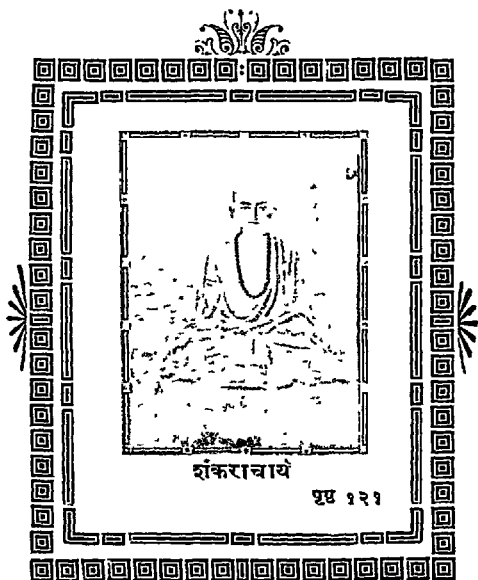
Shukla Press, Lucknow

कुमारिल ने ऐसा ही किया। आप अग्नि में बैठे वेद मंत्र पढ़ रहे थे और चारों ओर खड़े हुये उनके शिष्य तथा अन्य मित्र लोग रो रहे थे। ठीक इसी समय उनकी एक ऐसे महान पुरुष से भेंट हुई जिसकी वाणी ने अग्नि को ठंडा करके शीतल जल से भी अधिक सुख पहुँचाया, उनका नाम भगवान शंकराचार्य्य है।

## कुमारिल के रचे ग्रन्थ।

(१) मीमांसा शास्त्र पर कार्तिक (२) आश्वलायन गृह-सूत्रों पर कार्तिक (३) अनेक गूढ़ अलंकारों का अर्थ यथा इन्द्र और अहिल्या की कथा का अर्थ यह किया कि इन्द्र नाम सूर्य्य और बादल का, अहिल्या नाम रात्रि का, गौतम नाम चन्द्रमा का और जार का अर्थ जीर्ण करना छुटाभंग करना।

## वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक भगवान श्री शंकराचार्य्य

दक्षिणा देश के मालाबार प्रान्त में पूर्ण नदी के किनारे वृप नाम की पहाड़ी पर काल्टी नामक ग्राम था। उस बसती में ब्राह्मण लोग ही रहते थे, इन्हीं ब्राह्मणों में अत्रिगोत्रोत्पन्न एक धार्मिक और विद्वान् ब्राह्मण रहते थे इनकी विद्वत्ता के कारण लोग इन्हें विद्या वारिध ही कहा करते थे। विद्या वारिध के घर में ७८८ ई० में एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम शिव गुरू रक्खा गया। यह नन्हासा बालक अभी ५ वर्ष का भी न हुआ था कि पिता की मृत्यु हो गई। विधवा माता ने बड़ी २ कठनाइयों के साथ अपने बच्चे का कुछ दिन तक पालन किया, फिर उपनयन संस्कार कराके गौड़पादजी के शिष्य, गोविन्दाचार्य्यजी के गुरुकुल में भेज दिया। अपनी

विचित्र बुद्धि और सेवा भाव से गुरु को प्रसन्न करके थोड़े ही दिनों में सारे शास्त्रों का तत्त्व जान लिया। इसके साथ ही कई भाषा और अन्य मतों के सिद्धान्त भी जान लिये। १६ वर्ष की अवस्था में वे गुरुकुल से लौटकर घर पर आगये। इनकी कीर्ति सुनकर बड़े २ बुड्ढे विद्वान् भी उनसे आकर पढ़ने लगे। आये दिन बड़े २ ऐश्वर्य्यवान मनुष्यों की प्रार्थना विवाह के विषय में आने लगीं। पर शिव गुरु ने किसी को भी हाँ में उत्तर नहीं दिया। क्योंकि उसने तो अपने मन में कुछ और ही ठान रक्खी थी। एक दिन अवसर पाकर यह छोटा सा बालक अपनी माता को वैराग्य भाव पूर्ण उपदेश देने लगा, जब उसने देखा कि वूढ़ी माता पर उपदेश का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ गया है कि उसकी आंखों से अश्रु-धारा भी बहने लगी है तो यह बड़ा ही हृदय में मग्न हुआ और समझने लगा कि जादू चल गया, यह जान उसने माता से सन्यास लेने की आज्ञा मांगी, सन्यास का नाम सुनते ही माता बालक से लिपट २ कर, फूट २ कर रोने लगी और कहा—"पुत्र! तूही इस असार संसार में मेरा जीवन मूल है, न जाने कितने सुकर्मों के फल में तू मुझे मिला है इसलिये फिर यदि सन्यास का नाम भी लिया तो प्राण तज दूंगी और तुझे शाप दे दूंगी।" निदान बालक चुप होगया और हंसकर क्षमा प्रार्थना करने लगा, पर मन में जो बात बैठ गई वह तो पत्थर की लकीर थी और यह मोह-घटना जल रेखा के समान थी। अब वह सोचने लगा कि मेरे वैराग्य-उपदेश का उलटा प्रभाव क्यों पड़ा, इसी बीच उसके हृदय में विचार उठा कि अहो मैंने पात्र के विचार से उपदेश नहीं दिया इसी से मैं विफल हुआ।

यह संसार के जन साधारण तो प्रत्यक्ष हानि लाभ की प्रेरणा से ही किसी बात को ग्रहण अथवा उसका त्याग करते हैं,

वह तो एक बच्चे हैं जो चमकदार अग्नि को अच्छा और भद्‌मैली मिठाई को बुरा जानते हैं। अब मैं कोई ऐसा उपाय करूं जिससे मेरी माता की दृष्टि में सन्यास ही में लाभ देख पड़े। यह बालक इन्हीं विचारों में डूबा रहता था कि इसी बीच पास की एक बस्ती से माता पुत्र दोनों का निमन्त्रण आया, मार्ग में नदी पड़ती थी जब लौटे तो नदी चढ़ाव पर थी, यह सोचकर कि पाट बहुत नहीं है जल में प्रवेश किया, बालक ने इस अवसर को अच्छा जानकर, समझ बूझकर कई डुबकी लगाईं, यह भयानक दृश्य देखकर माता रोने लगी और अपने इकलौते पुत्र से लौटने को कहा, लड़के ने उत्तर दिया, माताजी जब आप मुझे संसार सागर में ही डुबाना अच्छा जानती हो तो फिर इस क्षुद्र नदी में डूब कर मरने से क्यों बचाती हो। यदि आप मुझे सन्यासी होने की आज्ञा दें तो मैं निकल सकता हूँ नहीं तो लो मैं चला। निदान कलेजे पर पत्थर धरकर माता को आज्ञा देनी पड़ी। और यह बालक नदी से निकलकर माता के साथ घर पर आगया।

एक दिन सुअवसर देखकर माता से जाने की आज्ञा मांगी, एक आर्य्य स्त्री का वचन पत्थर की लकीर के समान होता है, उसने बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा दे दी। और कहा— "पुत्र! तुम सन्यासी तो होते हो पर मातृ-ऋण का क्या प्रतिकार करोगे, क्या तुम नहीं जानते कि जिस मनुष्य ने अपने ऋण को नहीं चुकाया, वह कभी परमार्थ प्राप्त कर सकता है।" भोले बालक ने उत्तर दिया—" माता जी! यह तो आप जानती हैं कि पिताजी का तो स्वर्गवास होगया, दूसरा ऋण आप का है, इस के लिए प्रथम तो आपने सन्यासी होने की अनुमती दे दी है अर्थात् मुझे क्षमा कर दिया है। दूसरे यदि तुम्हारे ऋण से मैं तभी उऋण हो सकता हूँ कि जब अपना विवाह करलूं तो

यह ठीक नहीं है। क्योंकि मुझे गृहस्थ वालों से कुछ भी प्रेम नहीं है। अब जो तीसरा ऋण मुझ पर रहा उससे उऋण होने के लिए ही मैं सन्यासी हो रहा हूँ" माता ने! कहा पुत्र मैं तुम को आज्ञा तो उसी दिन देचुकी, पर यह सोच होता है कि जब मेरा चित्त दुखी होगा तो किस को देख कर शान्त होगा, दूसरे मेरी अन्त्येष्टि क्रिया कौन करेगा" बालक ने कहा कि—"जब तुम चाहोगी मैं उसी समय आकर मिल जाऊंगा और तुम्हारी अन्तिम संस्कार क्रिया भी मैं स्वयं अपने ही हाथ से करूंगा। कहते हैं कि सन्यासी होकर भी इन बातों का पालन बराबर किया। अन्त्येष्टि क्रिया करते समय लकीर के फ़कीर मनुष्य सन्यासी के पास न आये इसलिये सन्यासी ने घर के सामने ही अपनी माता को जला दिया और वहां के ब्राह्मणों को शाप देदिया कि जाओ तुम्हारे घर के आगे ही मरघट रहेगा और तुम में कोई वेद पाठी न बनेगा। सुनते हैं कि कालटा ग्राम में अभी तक यह दोनों बातें पाई जाती हैं। घर से निकल कर बालक ने गोविन्दनाथ नामक एक मुनि से सन्यास लिया और अब उसका नाम शंकर स्वामी रक्खा गया वहां से चलकर शंकर स्वामी काशीजी में रहने लगे।

## शंकर स्वामी का प्रचार कार्य्य

काशी में लोग छोटे से सन्यासी की मोहनी मूर्ति, विचित्र बुद्धि, अनुपम विद्वत्ता और चुम्बक की भाँति खींचने वाली मनोहर वाणी को देखकर चकित रहगये। सनन्दन नाम के शंकराचार्य्य के प्रधान शिष्य काशीजी ही में दीक्षित हुये थे।

स्वामी जी एक दिन अपने शिष्यों को लिये हुये गंगाजी के किनारे-किनारे जारहे थे। मार्ग में एक चाँडाल अपने कुत्तों को साथ लिये सामने से आरहा था। शंकर स्वामी सुनकर स्वामीजी और भी लज्जित हुये और उस चांडाल से

ने उससे बचने को कहा, तो वह बोला महाराज कपड़े तो सन्यास के पहिने फिरते हैं, ज्ञान भी बहुत झाड़ते हैं पर तत्त्वज्ञान का दिवाला ही निकाले बैठे हैं। क्यों स्वामी जी क्या मैं आप से पूछ सकता हूँ कि जब मेरे आत्मा में और आपके आत्मा में कुछ भेद नहीं जब मेरे पञ्च भूतादि मेरे पंच कोश आप ही के समान परमेश्वर ने बनाये हैं तो फिर आप मुझे नीच क्यों समझते हैं। इस बात को सुनकर स्वामी जी बड़े ही लज्जित हुये, और कहा भाई हमने लौकिक व्यवहार के अनुसार ऐसा कह दिया था, हम को इस का ज्ञान था कि आप ऐसे आत्मज्ञानी हैं, आप हम को क्षमा करके इस दोष से निर्दोष कीजियेगा। इस पर चाँडाल ने कहा- "उसमें क्षमा करने की कौनसी बात है, मैंने तो आपकी परीक्षा ली थी कि भला आपने कुछ तत्त्वज्ञान भी प्राप्त किया है अथवा नहीं, यदि आपने मेरे लिये यह शब्द केवल लोक व्यवहार के अनुसार कहे थे तो इस में मेरा बुरा मानना ही बड़ा भारी पाप है; क्योंकि मैं भी तो इन कुत्तों को साथ लेकर आखेटादि कार्य्य करता हूँ। स्वामी जी आप धन्य हैं, आप अवश्य अपने मनोरथ में सफल होंगे। भगवन! इस समय धर्म की बड़ी हानि होरही है। ब्राह्मण लोग तो अपने को मानो परमेश्वर समझ रहे हैं, जैन और बुद्ध परमपिता को तो स्वीकार ही नहीं करते वरन् उनमेंसे प्रत्येक मनुष्य अपने को ही सब कुछ मानकर दूसरों को हेय समझता है। शूद्र लोग बौद्ध बनतेही अपने कर्मों को त्याग देते हैं अथवा भार समझकर करते हैं। इसलिये हे महराज! आप शीघ्र ही झूटे अभिमान और असंतोष को दूर करके लोगों को अपना २ धर्म बतलाइये। महाराज यदि आप इस कार्य्य को न करसके तो कोई भी न कर सकेगा, इस युक्ति को बड़ी कृतज्ञता प्रकट की।

काशी से चलकर स्वामीजी बदरीनारायण में जाकर लिखने का कार्य्य करने लगे, जब यह कार्य्य समाप्त हो गया तो प्रचार के लिये चल पड़े। अभी प्रयाग में आकर स्नान ही किया था कि कुमारिल के उस कठोर और अपूर्व प्रायश्चित की सूचना मिली। बिना अन्न जल किये ही चल पड़े; वहां पहुँचकर क्या देखते हैं कि मनुष्यों की भीड़ लगी हुई है। और सब की आंखों से अश्रुधारा बह रही है। ज्यों त्यों करके स्वामीजी भीड़ को चीरकर कुमारिल के सामने जा खड़े हुये लोगों ने शंकर स्वामी का परिचय दिया तो कुमारिल भट्ट बड़े ही मग्न हुये। शंकर स्वामी के उत्साह को देखकर उनको चारों ओर आशा ही आशा दिखाई देती थी। शंकर स्वामी ने उनको अपने भाष्यों के सिद्धान्त भी सुनाये, इस पर कुमारिल ने कहा, वास्तव में अधर्म का नाश करने के लिये तुम्हारे सिद्धान्त बड़े अच्छे हैं, पर मेरे सिद्धान्तों में और तुम्हारे सिद्धान्तों में कुछ भेद है। अच्छा अब एक काम करो, पहिले मेरे शिष्य मण्डन मिश्र को किसी प्रकार शास्त्रार्थ में हराकर अपने साथ मिलालो तो बड़ा ही अच्छा हो पर वह तुम्हारे निवृत्त मार्ग को नहीं मानता। शास्त्रार्थ में उसकी स्त्री को ही मध्यस्थ बनाओगे तो तुमको अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

ऐसी ही बातें करते हुये कुमारिल का शरीर भस्म होगया और हाय तक न की इस अनुपम घटना ने सारे देश की रंग-भूमि को वैदिक धर्म रूपी पौधे के बीज बोने के योग्य बना दिया उस घटना ने लोगों में वैदिक धर्म के प्रति बड़ी सहानु-भूति उत्पन्न करदी। और शंकर स्वामी के जीवन को कुछ से कुछ बना दिया।

प्रयाग से उठकर शंकर स्वामी सीधे महिष्मती (जबलपुर)

को चल दिए। जब स्वामीजी नगर के निकट पहुँचे तो मार्ग में नर्मदा नदी पर मण्डन मिश्र की दासियां पानी भर रही थीं शंकर स्वामी ने मण्डन मिश्र का पता पूछा तो दासियों ने संस्कृत में यह उत्तर दिया कि जहाँ पर मैना यह कह रही है कि वेद स्वतः प्रमाण हैं वा परतः प्रमाण, वह मण्डन मिश्र का घर है और जहाँ पर तोता यह कह रहा है कि कर्म का फल देने वाला कर्म ही है अथवा ईश्वर है। वह उनकी बैठक है। इसी पते पर स्वामी जी वहाँ पर पहुँच गए, मण्डन मिश्र ने बड़ा ही आदर सत्कार किया और विनय पूर्वक आने का कारण पूछा तो स्वामीजी ने कहा हम लोग शास्त्रार्थ की भिक्षा लेने के लिए आये हैं, इसको सुनकर मिश्रजी बड़े ही प्रसन्न हुये और कहा आपका सिद्धान्त क्या है, स्वामीजी ने भली प्रकार बतला दिया, उसको सुनकर मण्डन मिश्र ने कहा यह तो वेद विरुद्ध कल्पित मत है। अच्छा अब मध्यस्थ कौन बनेगा, शंकर स्वामी ने कहा हम तुम्हारी स्त्री को ही मध्यस्थ बनाते हैं। मिश्र ने भी यह बात मान ली कई दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा अन्त में सरस्वती ने फैसला करा दिया और कहा आप दोनों महानुभाव चल कर भिक्षा (भोजन) कर लीजिये क्योंकि अब भोजन का समय भी हो गया है। इसका आशय यह था कि मण्डन मिश्र भी शंकर स्वामी के समान हारकर सन्यासी होगये हैं। यह बात सुनकर शंकर स्वामी बड़े ही प्रसन्न हुये और मडन मिश्र कुछ उदास होगये अपने पति की इस उदासीनता को सरस्वती सहन न कर सकी और हंसते हुये युवा सन्यासी से इस प्रकार कहा भगवन यह तो आप भली प्रकार जानते हैं कि शास्त्र में स्त्री को आधा अङ्ग कहा है, अतः आपने मिश्रजी को हराकर आधी विजय ही पाई है। अभी मेरे साथ शास्त्रार्थ और करना है।

शंकर स्वामी ने बहुतेरे टाल मटोल बताये और कहा मैं युवा सन्यासी हूँ आप से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता पर सरस्वती की युक्तियों के आगे सन्यासी की एक भी न चली और अन्त में शास्त्रार्थ होना निश्चित होगया, अन्त में जब स्वामीजी से कुछ भी उत्तर न बन पड़ा तो कहा माता जी मुझे कुछ थोड़ा सा अवकाश दो बड़ी कृपा हो। सरस्वती ने कहा आप जितना समय चाहे ले सकते हैं। इसके पीछे शंकर स्वामी ने आकर बहुत अच्छा उत्तर दिया जिसकी स्वयं सरस्वती ने प्रशंसा की, यदि चाहती तो वह स्वामीजी को और उसी प्रकार के झगड़ों में फंसा सकती थी, पर वह वेद प्रचार में बाधा डालना उचित नहीं समझती थी, क्योंकि वैदिक-धर्म के प्रति उसके हृदय में बड़ा ही अगाध प्रेम भरा हुआ था। उसी प्रेम का कारण था कि अपनी युवावस्था में भी अपने पति को अपनी आँखों के सामने भगवे वस्त्र पहनते समय कुछ भी मन मैला न किया, अब मिश्र का नाम सुरेश्वराचार्य्य-स्वामी हुआ। और सब से पहिले अपनी स्त्री के यहां पर भिक्षा लेकर प्रस्थान किया।

भारत माता क्या हम अपनी इन अभागी आँखों से फिर भी वह समय देख सकते हैं जब हमारी मातायें और बहिनें धर्म प्रचार के लिये सरस्वती से के समान त्याग करेंगी। अहा! वह कैसा आनंन्द का समय होगा जब देश की ब्राह्मणियों में अपने सनातन-धर्म के प्रचार के लिये अपने स्वार्थ और भोग विलास की कुछ भी परवा न होगी। परम पिता! अपनी पवित्र वाणी से तो तुम ऐसा ही कहते हो।

शंकर स्वामी ने अपने शिष्यों की सहायता और राजा सुधन्वा के सुप्रबन्ध से ३६० मतों के आचार्य्यों को शास्त्रार्थ में हराकर वैदिक धर्मी बना लिया, इन मतों में मुख्य २ मत

जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव, ये सब मत कापालिक थे।

शंकर स्वामी ने अपने समय में भारतवर्ष में कोई भी विद्वान् ऐसा न छोड़ा जिसको शास्त्रार्थ में परास्त न किया हो पर भट्टभास्कर नाम के एक महाविद्वान् ने अपनी हार नहीं मानी। शंकर स्वामी के ग्रन्थों से यह तो सिद्ध हो गया है कि भास्कर वेदों का बड़ा भारी विद्वान् था, पर उसके सिद्धान्त का कुछ भी पता नहीं चलता। शंकर स्वामी ने व उस समय के विद्वानों ने जो उसके सिद्धान्त के विषय में कुछ भी नहीं लिखा, यह बात और सन्देह उत्पन्न करती है, ऐसा ज्ञान पड़ता है कि भास्कर स्वामीजी के अद्वैत-वाद को नहीं मानता होगा। क्योंकि उस समय के प्रत्यक्ष वैदिक धर्मी सभी विद्वान् इस सिद्धान्त को वेद विरुद्ध कल्पित मत बतलाते थे। अब विचार उत्पन्न होता है कि जब भास्कर ने स्वामीजी से हार न मानी तो फिर उसने स्वामीजी को क्यों नहीं हराया। विद्वानों का अब यह विचार है कि उसने जान-बूझकर ऐसा कार्य्य नहीं किया क्योंकि इस बात को सभी ब्राह्मण जानते थे कि जैनियों और बौद्धों को परास्त करने के लिये अद्वैत-वाद ही सब से सुगम उपाय है। वे यह भी जानते थे कि यदि शंकर स्वामी की हार हो गई तो सारा बना बनाया खेल बिगड़ जावेगा। वास्तव में यदि बात यही है तो भट्टभास्कर से अधिक त्यागी संसार में कौन होगा जिसने धर्म रक्षा के लिये अपनी अपकीर्ति की ओर कुछ भी ध्यान नहीं किया। जो विद्वान् शास्त्रार्थ में हार जाता वही अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वैदिक-धर्म में आ जाता पर कापालिकों के एक आचार्य्य ने प्रतिज्ञा भंग करके उलटा स्वामीजी पर आक्रमण किया। इस समय तो शंकर स्वामी और उनके शिष्यों ने यह भी सिद्ध कर दिया कि हम लोग कोरे बाबाजी ही नहीं हैं। अन्त में दोनों प्रकार परास्त होकर वह विद्वान्

और अन्य कापालिक भी वैदिक-धर्म में आगये। स्वामीजी ने १० वर्ष में सारे देश में वैदिक-धर्म का डंका बजा दिया और देश के चारों कोनों पर चार मठ बनादिये। उन मठाधीशों की पदवी भी शंकराचार्य्य नियत हुई।

## स्वामीजी की मृत्यु

अभी स्वामी जी १० वर्ष ही प्रचार करने पाये थे कि एक दुष्ट ने छल करके एक ऐसी औषधि खिलादी जिससे उनके शरीर में बड़े २ फोड़े निकल पड़े। लोगों ने बहुतेरी चिकित्सा कराई पर रोग बढ़ता ही गया और सन् ८२० ई० में ३२ वर्ष की अवस्था में परम पद को प्राप्त हुये, उनके मरते ही कुछ दिनों के पीछे देश की दशा और भी बिगड़ गई।

## शंकर स्वामी के सिद्धान्त

(१) वेद स्वतः प्रमाण हैं। स्वामीजी अवैदिक-काल के अन्य विद्वानों की भाँति ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों को भी वेद मानते थे।

(२) प्रवृत्ति मार्ग से आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता केवल निवृत्ति मार्ग ही ठीक है।

(३) एक ब्रह्म ही सत्य है और सब पदार्थ मिथ्या हैं, जीव और ब्रह्म एक ही हैं।

(४) ब्रह्म, ईश्वर, जीव, इन तीनों का सम्बन्ध माया (प्रकृति) और अविद्या यह ६ पदार्थ हैं इन में ब्रह्म तो अनादि और अनन्त है और शेष ५ पदार्थ अनादि सान्त हैं।

(५) जितने मतों के आचार्य्य हुये और होंगे वे सब माननीय हैं क्योंकि देश, काल और पात्र के अनुसार मनुष्य जाति का कल्याण किया है और करेंगे।

# सिद्धान्त और समालोचना

## प्रथम सिद्धांत

वेद स्वतः प्रमाण क्यों हैं इस बात को हम वैदिक काल में भली प्रकार सिद्ध कर चुके हैं और भी जिन भाइयों को कुछ शंका हो वे निर्भय होकर हमारे सामने प्रकट करें, संसार में उन मतों को धिक्कार है जो आक्षेप करने से चिढ़ जाते हैं, हम तो उस ग्रंथ को अपना धर्म ग्रंथ मानते हैं जो विना सत्यासत्य का निर्णय किये अपने मानने वाले को भी घटिया समझता है। यह सम्भव है कि कोई विषय वेदों में ऐसा हो जिस को जड़वादी विद्वान् अनावश्यक समझते हैं पर एक समय आता है कि जब लोगों को उसी के सामने सिर झुकाना पड़ता है। आज संसार को २ अरब वर्ष के लगभग हुए पर किसी से भी वेदों को परतः प्रमाण तक सिद्ध नहीं किया गया।

## अन्य ग्रन्थ वेद क्यों माने

१—मूल संहिताओं के मंत्र बड़े ही गहरे थे, इनके जो भाष्य लोगों ने किये वे वेदों के गौरव को हानि पहुंचाते थे, अब विद्वानों के हृदय में यह प्रश्न उठा कि जैन, बौद्ध और दूसरे मनुष्यों के हृदय में वेदों का महत्व किस प्रकार बिठाया जावे जो ग्रंथ वेदों तक पहुँचाने वाले थे। प्रथम तो उनका ज्ञान प्राप्त करने में ही बड़ा समय लगता था, दूसरे उनमें से बहुत से भ्रष्ट हो गये थे। अन्त में ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों पर ही दृष्टि पड़ी, वेद विरोधियों के सामने जब उनको रक्खा गया तो उन्होंने इसी प्रकार इन ग्रन्थों का आदर किया जिस प्रकार योरुप के विद्वानों ने किया है। जब विद्वानों ने देखा कि इन ग्रंथों में वेद विरोधी लोगों को कुछ भी शंका नहीं है तो इन ग्रन्थों का ही नाम वेद रख दिया।

२—ब्राह्मण लोगों ने विधर्मियों के आक्षेपों से बचाने और उनको नष्ट होने से बचाने के लिये यह प्रसिद्ध कर दिया कि मूल वेदों को तो कोई लेकर समुद्र में घुस गया। अब वे कहीं भी नहीं हैं। अब उनके अप्रकट होने की दशा में इन्हीं ग्रन्थों से काम लिया जा सकता था, जिन ग्रंथों में कुछ मांस का विषय भी भरा पड़ा था। उनके विषय में यह प्रसिद्ध कर दिया कि यह विधान सत्युग के लिये था, जब मनुष्य पशु को जीवित भी कर देते थे।

(३) ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को वैसे ही वेद नहीं बता दिया बल्कि इसके कई कारण भी थे उनमें से एक यह था कि वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है और इन ग्रंथों में भी ज्ञान है इस लिये इनको भी वेद कहा जा सकता है।

(४) जिस प्रकार वेद किसी विशेष मनुष्य की रचना न कहलाकर श्रुति (सुना हुआ) कहे जाते थे इसी प्रकार उपनिषदादि भी किसी विशेष व्यक्ति की रचना न कहलाने से श्रुति कहे गये।

(५) इन ग्रंथों का अधिक भाग तो ज्यों का त्यों वेद ही है। और जो बातें विस्तृत रूप में बढ़ादी गई हैं वे समाधिस्थ पुरुषों की हैं जिनका आदर वेदों के समान ही किया जाता है।

(६) जिस प्रकार मूल चारों वेद ईश्वर (परमेश्वर) ने बनाये थे, इसी प्रकार उपनिषदादि ग्रंथ भी ईश्वर, (समाधिस्थ पुरुष, जीवन मुक्त, महापुरुष) के रचे हुए हैं।

(७) इन ग्रंथों में वेदों के लगभग सभी विषय आगये हैं। जब स्वामी जी ने प्रचार किया तो उन्होंने भी इस युक्ति से लाभ उठाया।

## दूसरा-सिद्धान्त

प्रायः हमारे भोले भाई स्वामीजी पर यह दोष लगाते हैं कि उन्होंने निवृत्ति मार्ग का उपदेश करके देश में भिखमंगों और निकम्मों की संख्या बढ़ा डाली। यदि स्वामीजी प्रवृत्ति मार्ग का ही उपदेश करते तो उन पर यह आक्षेप हो सकता था कि उन्होंने देश में जन संख्या धींगा-धाँगी, और विषय भोग बढ़ाकर देश का सत्यनाश कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि इस निवृत्ति मार्ग ने मूर्खों को प्रमादी बना दिया, पर वह हमारा प्रमाद धर्म की दृष्टि से उस प्रवृत्ति मार्ग से उस कर्म वीरता से कई गुना अच्छा है जिसने वाम-काल में अपना यौवन दिखाया था और जिसने वर्त्तमान असंतोष की अग्नि प्रज्व-लित कर रक्खी है। पर इसका अभिप्राय भोले भाई यह कभी न समझ लें कि हम लोग और हमारे पूज्य स्वामीजी प्रवृत्ति मार्ग को महापाप समझते थे, यदि यह बात होती तो वे भी प्रचार कार्य्य बन्द करके कहीं बैठ जाते। पर बात यह न थी, जिस समय शंकर स्वामी हुये वह बड़ा विकट काल था वैदिक धर्मी लोग।

(१) विषय-भोग में फंसने के कारण (२) आलस्य से (३) जैनियों और बौद्धों को हठपर सन्यासी होने को अत्यन्त अनावश्यक समझते थे, और जैमिनि के मीमांसा शास्त्र ने इस पर बिल्कुल ही मुहर लगा दी थी। जिसका फल यह हुआ कि १ सहस्र वर्ष तक देश वेद शून्य रहा, यदि शंकर स्वामी के समान दो चार सन्यासी भी खड़े होजाते तो यह दुर्दशा क्यों होती। इसीलिये उनको प्रवृत्ति मार्ग का खंडन और निवृत्ति मार्ग का मंडन करना पड़ा, इसका यह आशय नहीं था कि वे प्रवृत्ति मार्ग के शत्रु थे, नहीं जब वैद्य किसी रोगीकी चिकित्सा

करता है तो वह अपथ्य पदार्थ के अवगुण और औषधि के गुण ही प्रकट किया करता है। यद्यपि वह यह जानता है कि मेरी औषधि में कुछ रोगों के विचार से अवगुण और इस अपथ्य पदार्थ में कुछ गुण भी हैं।

मूर्ख मनुष्य यदि अकर्मण्य, प्रमादी और निकम्मे हो गये तो यह उनकी विचार शून्यता है। वे सामयिक गड़े से इन अन्धों को निकाल गये, यदि यह लोग आगे चलकर गिर गये तो उनका कुछ दोष नहीं। यह असंख्य साधु शंकर स्वामी ने नहीं बनाये; यह तो दूसरे मतों से आये थे, विचारे स्वामीजी को तो टूटी भुजा गले से बांधनी पड़ी थी, यह भी स्वामीजी की बड़ी भारी युक्ति थी नहीं, तो यह लोग कभी वैदिक धर्म में अपने चेलों को न आने देते, जिन लोगों को स्वतन्त्रता की हवा लग गई थी, वे सामयिक गृहस्थ के धन्धों को बड़ा भार समझते थे। स्वामीजी के पीछे उन्होंने चेले मूंडने आरम्भ कर दिये।

## तीसरा सिद्धान्त

यह कोई वैदिक मूल सिद्धान्त नहीं है केवल एक नवीन सामयिक युक्ति थी जो बौद्धों को परास्त करने में विशेष कर और जैनियों को भी हराने में प्रयुक्त की गई थी।

## यह नवीन सिद्धान्त है

( १ ) सब से पुराने भाष्य वेदान्त शास्त्र और उपनिषदों पर बौद्धायन मुनि के हैं वे इस सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। इसी से शंकर स्वामी ने उनका खंडन किया था।

( २ ) शंकर स्वामी के समकालीन विद्वानों ने इसे नवीन ही बताया था।

(३) विज्ञान भिक्षु और रामानुज ने भी इसे नवीन ही लिखा है।

(४) आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानंदजी ने भी इसे नवीन ही कहा है।

(५) पद्म पुराण भी इस मत को छिपा हुआ बौद्ध मत ही कहता है। जैसे

मायावाद्मसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं वौद्ध मेवच।
मयैव कथितम देवि ! कलौ ब्राह्म रूपिण॥

(६) इस सिद्धान्त को मान कर सारे शास्त्रों को असत्य मानना पड़ता है। और मनुष्य एक जंजाल में फंस जाता है।

## क्या यह सिद्धान्त निर्मूल है

निर्मूल नहीं है; समाधिस्थ पुरुष के तात्कालिक ज्ञान की अपेक्षा बिल्कुल सत्य है पर इसको वैदिक-सिद्धांत नहीं कह सकते, हां तात्कालिक सिद्धांत ही हर प्रकार से कह सकते हैं।

## इस नवीन मत का मूल क्या है

(१) वेदान्त दर्शन और उपनिषदों में योगी की एक विशेष अवस्था बतलाई है, जिस में उसको ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई देता है।

(२) स्वामीजी से पूर्व बौद्धों का एक सम्प्रदाय भी इसी मत को मानता था; पर इतना अंतर अवश्य था कि जिस को स्वामी जी ब्रह्म नाम देते हैं उसी को बौद्ध प्रकृति माया कहते थे।

(३) स्वामीजी के परमगुरु गौड़पादजी ने माण्डूक्य उपनिषद् पर कारिकायें लिखी हैं इन कारिकाओं में इसी अद्वैतवाद का विवेचन है। इन पर शंकर स्वामी का भाष्य और

आनन्दगिरिजी की टीका अभी तक मिलती है। इस से सिद्ध हुआ कि स्वामीजी ने यह सिद्धान्त गौड़पादजी से लिया था।

(४) लोकोक्ति में प्रधान का अस्तित्व ही माना जाता है जैसे सर्दी की प्रधानता से शरद ऋतु, गर्मी की प्रधानता से ग्रीष्म-ऋतु और जाट क्षत्रियों के अधिक होने से कहा जाता है कि इस बस्ती में जाट रहते हैं।

(५) उपासना करते समय उपासक के लिए यह परमावश्यक है कि वह परमात्मा को आत्म स्वरूप ध्यान में रक्खे। और इसी का अभ्यास करे। जैन मत के योगियों की उपासना इसी विधि से होती है। यह विधि जहाँ सुगम थी उसके साथ ही यह पूर्ण फल प्राप्ति में पूर्ण सहायक भी न थी। क्योंकि आत्मा उतनी उच्च आदर्श सामने नहीं रखती जितनी कि आत्मा को परमात्मवत समझना। पर जिन देवों ने जिस समय के लिये इसे नियत किया था, उस में उस से अच्छी विधि दूसरी न थी।

(६) यह सम्पूर्ण जगत-सृष्टि के आदि में ब्रह्म से ही प्रकट होता है और अन्त में उसी में लय हुआ करता है और क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का प्रादुर्भाव अपने मूल कारण से ही होता है और अन्त में उसी में वह लीन हुआ करता है इसी से ब्रह्म ही को केवल सत्य और कारण का भी कारण कहते हैं।

(७) यह बात भी हम दिखला चुके हैं कि दत्तात्रेय, विष्णु स्वामी के मत, प्रत्यभिज्ञा रसेश्वर आदि मतों ने किस प्रकार समय की आवश्यकता के अनुसार एक ही जल को नाना रङ्ग की बोतलों में भरना आरम्भ करके अपने २ मतों की ओर लोगों को खींचना आरम्भ कर दिया था। यदि गहरी दृष्टि से देखा जावे तो यह ज्ञात होगा कि इस काल के सम्पूर्ण मत एक

दूसरे से ऐसी समानता रखते थे कि उनमें शब्द मात्र ही भेद था, एक तत्वज्ञानी विद्वान् एक मत की जड़ में कुल्हाड़ी मार कर सब को धराशायी कर सकता था।

## गौड़पादजी ने इसको क्यों माना

( १ ) यह होसकता है कि गौड़पादजी को मूल वैदिक सिद्धान्त का ज्ञान न होगा। पर उनकी लिखी हुई कारिकायें ही इस बात को सिद्ध कर रही हैं कि गौड़पादजी अपने समय के अपूर्व विद्वान् थे। फिर यह कैसे हो सकता है कि उनको इस सीधी सी बात का ज्ञान न हो।

( २ ) वा गौड़पाद एक समाधिस्थ योगी थे, उन्होंने समाधि में जो अवस्था देखी उसको ज्यों का त्यों लोगों के सामने प्रकट कर दिया, अद्वैत-वादी ग्रंथों में लिखा भी ऐसा ही है कि ज्ञानी की अपेक्षा अद्वैत और अज्ञान ( साधारण अवस्था ) की अपेक्षा द्वैतवाद ठीक है। अब निश्चय हो गया कि बात वास्तव में यही है, क्योंकि जिन लोक वेदादि को इस मत में मिथ्या बताया गया है, यदि उनको समाधि की अपेक्षा मिथ्या और स्वप्नवत् न बताकर साधारण अवस्था में ही मिथ्या और स्वप्नवत् कह दिया जावे, तो लोक वेद के अन्दर होने से स्वयं यह सिद्धान्त भी मिथ्या हो जावेगा। भला ऐसा कौन भोला भाई है जो वेदों के परम भक्त गौड़पाद और शंकर स्वामी को वेदों का विरोधी समझना ठीक जानेगा।

( ३ ) वा यह भी होसकता है कि जब गौड़पाद ने बौद्धों के मायावाद को युक्ति प्रमाण सहित देखा और उधर वेदान्तादि शास्त्रों में बताई हुई अद्वैत अवस्था को देखा तो उन्होंने माया शब्द के स्थान पर ब्रह्म शब्द रहने दिया और शेष सिद्धान्त ज्यों का त्यों रहने दिया।

(४) सम्भव है गौड़पाद का जन्म दत्तात्रेय के मत में हुआ हो और उसी मत की शिक्षा पाई हो जो इसी मत का तद्रूप था।

## इस सिद्धान्त के समायिक लाभ

(१) मायावाद से यह सिद्धान्त कुछ अधिक शान्तिप्रद था। क्योंकि माया जड़ पदार्थ है

(२) ईश्वर और वेद विरोधी बौद्ध सहज ही में ईश्वर बन सकते थे।

(३) इस से बिना वाद विवाद किये ईश्वर-वाद की रक्षा सहज ही मे हो सकती थी, वास्तव में इसने एक गढ़ का काम दिया होगा।

(४) यदि मायावादी लोगों के सामने ब्रह्म के साथ माया को भी नित्य स्पष्ट शब्दों में कह देते तो लोग उसी गढ़े में जा पड़ते। उस दशा में अद्वैतवाद ही सब प्रकार ठीक था।

(५) मनुष्य स्वभाव से सुगमता और नवीनता का प्रेमी है इसी प्रवृत्ति का ध्यान रखते हुये यह सिद्धान्त रक्खा हो क्योंकि यह तो कर्म को ही बुरा कहता था। लोक वेद के असत्य कहने से बौद्ध जैन सहज में मान सकते थे।

## स्वामीजी ने क्यों माना

(१) स्वामीजी ने इसी सिद्धान्त की शिक्षा पाई थी। इसलिये यह सिद्धान्त उनकी नस २ में भरा हुआ था। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये वे सब प्रकार से तैयार थे।

(२) यदि इस सिद्धान्त का विरोध करते तो उस समय के विचार के अनुसार गुरू के विरोधी कहलाते, भला जिन शंकर स्वामी ने अपनी आँखों से कुमारिल को जीवित जलते देखा था। वे अपने गुरु का विरोध कैसे कर सकते थे।

(३) और ऐसी दशा में वे गुरु का विरोध क्यों करते जब कि इस सिद्धान्त को मानकर बौद्धों को सहज ही में परास्त कर सकते थे।

(४) स्वामीजी का उद्देश्य केवल यह था कि किसी प्रकार वेद विरोधियों को वेदानुयायी बनाया जावे इसलिये उनके शास्त्रार्थ बहुधा उन्हीं से होते थे। वे जानते थे कि वेदानुयायी तो एक दिन सुमार्ग पर आप ही आजावेंगे। स्वामीजी को यदि किसी द्वैतवादी से शास्त्रार्थ भी करना पड़ा है तो उसे ऐसे चक्कर में डाल दिया है कि जिससे उसका निकलना और स्वामीजी पर आक्षेप करना असम्भव हो गया है। भट्ट भास्कर ने अपने सिद्धान्त की पुष्टि में अवश्य अकाट्य युक्ति और प्रमाण दिये होंगे इसी से न तो स्वामीजी ने ही उसको हारा हुआ माना है न स्वयं भट्ट भास्कर ने पर अद्वैतवाद की हवा उखड़ने के भय से भट्टभास्कर का खंडन अवश्य किया है, भास्कर का क्या, पांचो दर्शनों का भी खंडन कर दिया। स्वामीजी ने यह बड़ा पुण्य कार्य्य किया था। वेद प्रचार के आगे दर्शन कुछ नहीं है।

अब विचार करने की बात है कि स्वामीजी इस सिद्धान्त को न मानते तो कैसा अनर्थ होता। भोले लोगो स्वामीजी के यदि कृतज्ञ नहीं बनते हो तो उनको बुरा भी मत कहो।

## क्या स्वामीजी का यह मूल सिद्धान्त था

हमारा यह निश्चय है कि स्वामीजी ने उपरोक्त चार कठिनाइयों के हल करने के लिये ही अद्वैतवाद का सिद्धान्त रक्खा था पर यह उनका मूल सिद्धान्त न था। इसका सबसे उत्तम, स्पष्ट और अकाट्य प्रमाण यह है कि वेदान्त दर्शन अ-२ पाद २ सूत्र २६ का भाष्य करते हुये उन्होंने बौद्धों के इस

सिद्धान्त का खंडन कर दिया है कि लोक और वेद सब मिथ्या कल्पित और स्वप्नवत् हैं। हमारा पूर्ण विश्वास है कि यदि स्वामीजी का देवलोकवास शीघ्र न होता तो सम्भव है वे उस समय लोगों के सामने वही मूल सिद्धान्त रखते जब कि लोगों का हठ और अन्ध विश्वास कुछ दूर हो जाता।

## चौथा सिद्धान्त

जिस प्रकार जैन महापुरुषों ने यामियों का पाप रोकने के लिये उन्हीं तीन पदार्थों की परिभाषा बदल कर ९ भागों में बांट दिया था इसी प्रकार गौड़पाद वा शङ्कर स्वामी ने भी जैनों की नास्तिकता रोकने के लिये ९ भागों में बांट दिया था, इस सिद्धान्त से जैनियों के (मूढ़ जैनियों के) के सिद्धान्त को दो चार ही प्रश्नों में उड़ाया जा सकता था और साथ ही विशेषता यह कि जहाँ जैनियों के पदार्थों में परमात्मा का नाम भी न था वहाँ इसमें दो जगह नाम पड़ता है।

जिस प्रकार मूल में जैन सिद्धान्तों को असत्य नहीं कह सकते पर उस से निकलने वाले दुष्परिणाम की अपेक्षा वे असत्य कहलाये इसी प्रकार उस सिद्धान्त को भी समझना चाहिये। इस सिद्धान्त के समझने में लोग कुछ भूल भी कर जाते हैं; ब्रह्म के विषय में तो कुछ झगड़ा नहीं; हां ईश्वर के विषय में भ्रम में पड़ जाते हैं। ईश्वर का अर्थ यहाँ परमेश्वर नहीं है वरन् वही वैदिक परिभाषा मुक्तात्माओं के लिये समझनी चाहिये। जिसको जैनों और बौद्धों ने भी प्रयुक्त किया है।

ईश्वर (मुक्त जीव) अनादि तो है ही और, क्योंकि उसका ईश्वरत्व सदा नहीं रहेगा इसलिए वह अनादि सान्त होगया।

अब जीव अनादि तो है ही और क्योंकि वह एक दिन ईश्वर भी बनेगा इसलिए उसका जीवत्व सान्त भी होगया।

ब्रह्म और ईश्वर का व्याप्य, व्यापकता का सम्बन्ध पिता, पुत्र का सम्बन्ध आदि सब अनादि हैं पर एक दिन वह सम्बन्ध जो ईश्वरत्व में है, न रहेगा इसलिए सम्बन्ध सान्त भी है इसी प्रकार जीव का सम्बन्ध भी अनादि है पर एक दिन मुक्त होजाने पर यह सम्बंध कुछ ढीला पड़ जावेगा इसलिए सान्त भी हुआ। यही बात जीव और ईश्वर के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

माया (प्रकृति) काल की अपेक्षा तो वैसी ही अनादि है जैसे जीव और देश के विचार से भी वह उसी के समान सान्त है।

अज्ञान (अल्पज्ञता) जीव के साथ अनादि है पर मुक्त होने पर इसका अन्त भी हो जाता है इसलिये सान्त भी है।

## जैन सिद्धान्त से तुलना

(१) दोनों मतों के सिद्धान्तों को यदि जोड़ा जावे तो मूल्य एक होगा, तोल एक होगी।

(२) दोनों ने अज्ञानियों को नास्तिक बनने में सहायता दी।

(३) दोनों की उत्पत्ति और अन्त भी एक ही भांति हुआ।

(४) जैन सिद्धांतों ने ईश्वर का नाम न लेकर लोगों को नास्तिक बनाया था पर अद्वैतवाद ने दो स्थान पर भी परमेश्वर का नाम लेकर नास्तिक बनाया।

## वेदों का महिमा

एक दिन मुझे सन्देह हुआ कि सुपर्णा सयुजा सखाया- इस मन्त्र में तीनों पदार्थों के स्पष्ट कह देने की क्या आवश्यकता थी पर अब यह ज्ञात हुआ कि लोगों को इसी प्रकार के भ्रम से बचाने के लिये यह वेद मंत्र परमेश्वर ने ऋषियों को दिया था।

## पाँचवाँ सिद्धांत ।

स्वामीजी का यह सिद्धांत कोई नवीन सिद्धांत नहीं है, स्वा० पार्श्वनाथ, भगवान बुद्ध, म० जरतुस्थ, ह० मूसा, ह० ईसा और ह० मुहम्मद ने भी इसको स्वीकार किया है, जहाँ यह सिद्धान्त सत्य है वहाँ उसके साथ ही इससे प्रचार में भी बड़ी सहायता मिलती है। इस में सन्देह नहीं कि कुमारिल भट्ट के प्रायश्चित और शंकरस्वामी के परिश्रम से ही बौद्ध मत का नाम मिटा था, पर स्वामी के इस सिद्धान्त ने भी लोगों को अपनी ओर खींचा था। साधारण योग्यता के मनुष्यों का धर्म केवल अपने महापुरुष की श्रद्धा पर ही निर्भर होता है वे उस मत के तत्व को कुछ भी नहीं समझते। इन लोगों को अपने मत में लाने के लिये इनके महापुरुषों के समान को स्थिर रखना अनिवार्य हो बहुत ही नीच अथवा बहुत ही उच्च हृदय के मनुष्यों को छोड़कर जन साधारण धर्म परिवर्त्तन और अपने श्रद्धेय के अपमान को एक साथ स्वीकार नहीं कर सकते। हमारा निश्चय है कि संसार का कोई भी अच्छे से अच्छा मत इस सिद्धांत को बिना माने कभी नहीं फैल सकता, इस विषय का पूरा २ विवेचन हम आगे करेंगे, यहाँ पर केवल इतना कह देना आवश्यक है कि, इस सिद्धान्त में स्वामीजी की मृत्यु हो जाने के कारण आर्य्य जाति की राष्ट्रीयता, उसके साहित्य, और उसके धार्मिक भावों को बड़ा ही धक्का पहुँचाया है। इस में अपराध किसी का भी नहीं है, यदि कुछ अपराध है तो देश के अभाग्य का है। जाति का सारा खेल स्वामीजी की अकाल मृत्यु ने बिगाड़ दिया, नहीं तो आज आर्य्य जाति की यह दुर्दशा न होती, गोमाता की और देवियों की इस प्रकार अप्रतिष्ठा न होती। दुष्टों का मुख भी न देखना पड़ता।

## क्या स्वामी जी ने बुरा किया था

वे मनुष्य जिनसे कुछ करना धरना तो आता नहीं, बस कटाक्ष करना और दोष निकालना ही आता है, सामयिक युक्तियों को छल और दंभ भी कह डालते हैं। यदि इन्हीं बातों का नाम छल रक्खा जावे तो, कोई भी महापुरुष इस छल से अछूता न बचेगा। जो भोले भाई यह नहीं जानते कि छल का अर्थ क्या है, वह क्यों पाप है? वे बिना सोचे समझे क्यों आक्षेप कर देते हैं। संसार का कोई भी कर्म जो मनुष्यों के कल्याण के लिये किया जाता है वही धर्म है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे टस से मस न होने वाले महापुरुष ने भी स्वामीजी के इस कार्य्य को अच्छा कहा है।

हम नहीं जानते कि जब हम लोग, वामियों के अत्याचार रोकने के कारण जैन महापुरुषों और बौद्धों के वेद-विरोध को भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं तो फिर शंकर स्वामी पर किसी प्रकार का आक्षेप करना कितना अन्याय है।

स्वामीजी पर आक्षेप तो जब हो सकता था, जब कि वे स्पष्ट यह न लिखते कि अज्ञान की दशा में ( साधारण-अवस्था में ) द्वैत वाद ठीक है और ज्ञान ( समाधि-अवस्था ) की अपेक्षा अद्वैत वाद सत्य है। स्वामीजी पर आक्षेप तो उस समय होता जब वे साधारण ज्ञान रखने वाले बौद्धों की इस बात का खंडन न करते कि जगत, वेद को मिथ्या समझना चाहिये।

## जाति भेद कैसे उत्पन्न हुआ

बौद्ध मत ने यद्यपि देश की प्राचीन सामाजिक और राष्ट्रीय अवस्था के पलटने का प्रत्यक्ष कोई यत्न नहीं किया पर उसका अप्रत्यक्ष रूप से बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा।

बौद्धों का मूल मंत्र 'अहिंसा परमो धर्मः' था, इस सिद्धान्त को विवश होकर उन लोगों ने यहां तक बढ़ा दिया था कि वे हिंसक जीवों शत्रुओं को भी मारने में महापाप समझते थे, वही अशोक जो वैदिक मत में होने के समय में इतना वज्र हृदय और वीर था कि विदेशियों को उसका नाम सुनकर भी ज्वर आ जाता था, वही बौद्ध होने पर इतना कोमल हृदय बन गया कि किसी को धमकाना बुरा समझता था वही वैश्य पुत्र हर्ष जो वैदिक मतावलम्बी होने की दशा में अपने समय का एक ही वीर था, जिसने कभी पराजय का नाम भी न सुना था, वही दक्षिण देश के चालूक्य क्षत्रियों की साधारण सी सेना को देखकर कांप गया और चुप कान दबाकर भाग आया।

यदि राजा लोग युद्ध करने के लिये तैयार भी हो जाते तो बौद्ध साधु बड़े अप्रसन्न होते, यहाँ तक कि कभी २ तो श्राप देने की धमकी भी देने लगते थे, इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशीय जातियाँ आक्रमण करने लगीं और राज्य का कुछ न कुछ भाग दबालेतीं एक सहस्र वर्ष में विदेशीय जातियाँ भर गईं, यदि वैदिक राजा चन्द्रगुप्त मौर्य्य और विक्रम आदि इन जातियों को न रोकते तो प्राचीन वंशों का नाम भी मिट जाता, यह जातियाँ कुछ समय तो अपनी असभ्यता में रहती थी और पीछे से बौद्ध होजातीं थीं हिंदू मत में इनके लिये कोई स्थान न था। हां यह नियम अवश्य था कि बौद्ध मतावलम्बी यदि अपने को किसी वर्ण का बतावें तो वे हिन्दू अवश्य हो सकते थे। इस विषय में वह काल बिल्कुल आज कल के समान था आज एक मुसलमान आर्य्यसामज में आकर अपना सम्बन्ध कर सकता है पर पौराणिक मत में उसके लिये कोई स्थान नहीं है हां पौराणिक लोग आर्य्य समाजियों को अपने समाज में ले सकते हैं। बौद्ध मत में वर्त्तमान आर्य्य

समाज की भाँति जन्म-सम्बन्धी जातीय और सामाजिक नियम न थे, इसलिये वे लोग बिना जाति और वंश का विचार किये ही सम्बन्ध करते थे।

जब यह जातियाँ हिंदू मत में आगई तो धर्म शास्त्र की आज्ञानुसार उनकी इस स्वच्छता को रोकना आवश्यक था। यदि ब्राह्मण और जैनी लोग आचार विचार को न मानते तो वर्ण-व्यवस्था स्थिर करने में कुछ बाधा न पड़ती।

चाहे स्वामीजी के विषय में यह बातें न कही जावें, पर इस में कुछ भी संदेह नहीं कि बहुमत उनके विरुद्ध ही था, स्वामीजी जनता की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते थे, प्रेम तो इस बात की कभी आशा देही नहीं सकता, अब रहा राज्य भय सो वह बिचारा ही उस समय क्या कर सकता था जब सब प्रकार से शक्तिशाली मुसलमान बादशाहों ने भी दूर से हाथों को फैलाकर भोजन लेना स्वीकार कर लिया था। अब जो बौद्धादि मतों के मनुष्यों को मिलाना भी आवश्यक था, क्योंकि टूटी भुजा गले से ही बाँधनी पड़ती है, तीर्थ जाने पर तो मुंडाना ही पड़ता है। बनारस में चांडाल से बचने की घटना यह साफ़ प्रकट करती है कि स्वामीजी अपवित्र जातियों से बचने के लौकिक व्यवहार को बुरा ही नहीं जानते थे, क्योंकि इन लोगों से छूत करना वैदिक काल से ही चला आता था, हां अब उसने जन्मवाद का गहरा रूप धारण कर लिया था।

स्वामीजी को इस लौकिक व्यवहार के विरुद्ध आन्दोलन करने की कोई आवश्यकता भी न थी क्योंकि उस काल में छूत-छात से हानि तो कुछ भी न थी हां कुछ लाभ अवश्य थे, जिनकी कि कुछ व्याख्या हम आगे करेंगे। हमारे विचार में यदि देश में मुसलमान और ईसाई आकर अछूतों को हड़प

कर ऋषि मुनियों के नाम को मिटाने का प्रयत्न न करते तो आर्य्य समाज, और राष्ट्रीय महासभा कभी इस प्रश्न को इतना गहरा रूप न देती।

जब स्वामीजी ने देखा कि भिन्न २ आचार, विचार और वंशों की जातियाँ हिन्दू मत में आगई तो वे एक चक्कर में पड़ गये कि वर्ण व्यवस्था किस प्रकार स्थिर की जावे। पर कार्य्य तो चलाना ही था इसलिये टूटे फूटे वर्ण बना दिये। इस बात को हम निश्चय नहीं करसके कि यह वर्ण-व्यवस्था स्वामीजी की मृत्यु से पहिले ही बन गई थी, वा उनकी रुग्णावस्था के समय में बनी अथवा उनके पश्चात। क्योंकि स्वामी जी के जो ग्रंथ रचे हुये बतलाये जाते हैं उनमें बड़ा संदेह है। नहीं कह सकते कि वे किस शंकराचार्य्य ने रचे हैं। पर एक बात तो सब प्रकार सिद्ध होगई है कि पौराणिक, सामाजिक नियमों का प्रस्ताव स्वामी के जीवनकाल में स्वीकृत अवश्य हुआ था। चाहे लोगों ने उसका रूप कुछ से कुछ कर दिया हो। क्योंकि वैदिक बातों में जो कुछ समयोचित परिवर्त्तन किये गये वे साधारण बुद्धि से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते।

## वर्ण-व्यवस्था

प्रथम वर्ण ब्राह्मण बनाना था इन में से कुछ लोग तो पहिले से ही ब्राह्मण कहे जाते थे चाहे वे किसी सम्प्रदाय के थे, इन पुराने ब्राह्मणों में प्रायः शैव, वैष्णव, वामी, कापालिक, जैन और बौद्ध मत से आये थे। अब जितने अब्राह्मण आचार्य थे उन में से बहुतों ने तो जब ५ वीं शताब्दी में ही बौद्ध मत का सूर्य ढलता देखा और ब्राह्मणों के मत को चढ़ते हुये देखा तो अपने को ब्राह्मण चिल्लाना आरम्भ कर दिया था, अब जो आचार्य अपने को ब्राह्मण नहीं कहते थे उनको भी ब्राह्मण

माना, क्योंकि प्रथम तो यह लोग विद्वान् दूसरे उनकी सत्य परायणता, तीसरे उनके बिगड़ने का भय था चौथे यदि उनको ब्राह्मण न माना जाना तो क्या माना जाता पांचवें यदि ब्राह्मणों की ओर से इन आचार्य्यों को ब्राह्मण न माना जाता तो अन्य वर्ण भी विधर्मियों को अपने २ वर्ण में स्वीकार न करते। पुराणों के देखने से पता चलता है कि इस विषय पर झगड़ा भी चला है, हम देखते हैं कि पुराणों में विषय कुछ चल रहा है और बीच में धींगा धांगी से वर्ण व्यवस्था का झगड़ा ठूंस दिया है। जहां देखिये वहां ब्राह्मणत्व की तबाही। अब वर्ण तो बन गया पर परस्पर खान, पान और विवाहादि के सम्बन्ध कैसे स्थिर किए जावें, भला दक्षिण देश के नम्बुद्रि और शुद्धाचरण रखने वाले ब्राह्मण एक कापालिक वा वामी को अपनी पुत्री कैसे दे सकता था, उधर इन रँगरूटों का विश्वास भी अभी कुछ नहीं था। इसलिये इस के सिवा कुछ उपाय न था कि ब्राह्मणों की भिन्न २ जातियाँ बनादी जावें और कह दिया जावे कि परस्पर सम्बन्ध करो। उस समय के लिए यह उपाय सर्वथा उचित था जो ब्राह्मण आचार, विचार को मानते चले आते थे वे भी इस से प्रसन्न थे ही। पर जो लोग दूसरे मतों से आये थे वह भी इस से प्रसन्न हो गये क्योंकि उन में से बहुत से तो देवीजी के प्रसाद के उपासक थे, बहुत से इस नवीन मत में आने और पुराने मत के छूटने के मोह में बड़े खिन्न थे, वे लोग नहीं चाहते थे कि इस बन्धन-पूर्ण मत में जाकर अपनी पिछली बातों को तिलाञ्जली दे डालें।

मालाबारी नम्बुद्रि ब्राह्मण इसी से अन्य ब्राह्मणों को शुद्ध ब्राह्मण नहीं मानते, पर उनकी भी शारीरिक बनावट इस बात को प्रकट कर रही है कि वे भी कुछ गड़बड़ी से बचे हुए नहीं हैं।

ये लोग जो कोई बड़े आचार्य्य तो नहीं थे पर उन में ब्राह्मणों का भी कुछ रक्त था, उन्हें उन के कर्मों के सम्बंध से ज्योतिषी, पंडिया, भरारा और भाटादि के नाम दे दिये। चौथी शताब्दी शासक से जातियों को क्षत्री नाम से पुकारा जाना बन्द होगया था, जो मनुष्य राज्य करते थे, वे अपने २ वंशों के नाम से प्रसिद्ध थे, इसका कारण यह था कि बौद्ध मत ने अपने प्रबल प्रभाव से वैदिक वर्ण व्यवस्था और वंश गौरव को बिल्कुल उलट, पुलट कर दिया था। क्या आश्चर्य्य है कि वर्त्तमान खत्री जाति प्राचीनों की वंशज हो, हमें जहां तक पता चला है खत्रियों की बहुत सी बातें क्षत्रियों से कुछ लगाव भी खाती हैं, इसी प्रकार जाट नामक जाति में कुछ बातें अभी तक प्राचीन चन्द्र वंशीय क्षत्रियों अर्थात् कौरव पाँडवों से टक्कर खाती हैं, पर इन जातियों की गिरावट ऐसी विवश कर देती है कि, जिससे हम इनके विषय में कुछ भी निश्चय नहीं कर सकते।

यद्यपि सामाजिक शासक जातियों को क्षत्री कहने में कुछ भी हानि नहीं थी, क्यों कि उनमें क्षात्र धर्म के सब पूरे २ गुण थे, और बाम-काल में ऐसा हो भी चुका था, म० बुद्ध स्वयं शक जाति के होने से शाक्य वंशीय क्षत्री कहलाते थे, पर उस काल में जन्मवाद ने ऐसा गहरा रूप धारण नहीं किया था। विदेशीय जातियों के लोगों को क्षत्री नाम देने में एक झगड़ा होने का भय था कि कहीं वे जातियां जो अपने को राम, कृष्णादि के वंश से बतलाती हैं विगड़ न बैठें। ६०० ई० से जब हिन्दू मत ने कुछ उभरना आरम्भ कर दिया था, यह जातियाँ अपने को राजपुत्र कहने लगी थीं, इस का कारण यह था कि यह लोग ब्राह्मणों का तो इसलिये मान करते थे कि वे हम को नीच वंश से न कहने लगें, उधर बौद्धों को इसलिये प्रसन्न रखते

थे, कि उनके मत में जन्म का कुछ मूल्य न था। राजपुत्र नाम ऐसा था कि जिस को किसी मत का मनुष्य भी बुरा नहीं कह सकता था।

इसलिये इनका नाम राजपुत्र ही रहने दिया। यह एक नियम है कि जिन जातियों को अपने शत्रुओं का सामना रहता है वे परस्पर मिल ही जाती हैं। दूसरे क्षत्रियों को दूसरे राजाओं की कन्या लेने का अधिकार सदा से रहा है उदयपुर चित्तौड़ के विशुद्ध क्षत्रियों के पूर्वज ने नौशेरवाँ बादशाह की पोती से अपना विवाह किया था।

अग्नि कुल के राजपूतों के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि वे वंश के क्षत्री नहीं हैं, केवल यज्ञ ( शुभ कर्म ) के क्षत्री हैं पर एक बात तो उनको ही प्राचीन क्षत्रियों का वंशज सिद्ध करती है कि जब विदेशीय जातियों के आक्रमण आरम्भ हुये थे और उधर बौद्ध मत ने वर्ण व्यवस्था तोड़ दी थी तो यही अग्नि कुल के क्षत्री तैयार किये गये थे। दूसरे जिस काल में सब लोग बौद्ध मत की लहरों में बहे जा रहे थे, उस समय यही लोग वेदों के रक्षक थे। हमारी इस नवीन धारणा पर यह आक्षेप हो सकता है कि जब अग्निकुल के राजपूत पुराने क्षत्रियों के वंशज थे तो उनको नवीन दीक्षा देने और उनका नाम बदलने की क्या आवश्यकता थी, इस का उत्तर यह है कि इन लोगों को अपने वंश और गोत्र का कुछ भी ज्ञान न रहा होगा, और अज्ञान के साथ इन लोगों में से बल-वीर्य्य का ह्रास भी हो गया था। स्वामी दयानन्दजी सरस्वती भी यही मानते हैं। इतिहास ने तो बिल्कुल ही उल्टी गंगा बहा डाली। इसलिये अब भविष्य में जो अपने को यज्ञ से क्षत्री मानते थे वे वंश से भी क्षत्री मानें और जो लोग अपने को वंश से क्षत्री मानते थे अब उनमें से कुछ लोग यज्ञ से भी मानने लगे।

हमारे पास अनेक प्रमाण ऐसे हैं कि जो राजपुत्र दूसरों को नीच और अपने को कायर होते हुये भी उच्च समझे बैठे हैं, उन लोगों को हम म्लेच्छ सिद्ध कर सकते हैं।

तीसरा वर्ण वैश्य होना चाहिये था, पर आर्ष ग्रंथों में जो गुण, कर्म, स्वभाव, बतलाये थे वे पूर्ण रूप से किसी में भी न थे। बौद्ध काल में जो जातियां जो कर्म करती चली आती थीं वही उनका नाम भी था, इसलिये उन लोगों के वही पुराने नाम वणिक, व्यापारी, बनजारे किसान, माली आदि रहने दिये। और उनकी भी भिन्न २ जातियां बना डालीं। धीरे २ धनवानों ने भूमि देवों की कृपा से वैश्य की पदवी प्राप्त करली, इन वैश्यों में कुछ जातियां तो ऐसी हैं कि वे थोड़े ही काल से राज्यच्युत होकर वैश्य बन गई हैं।

चौथे वर्ण शूद्र की भी यही दशा हुई।

## अभिमान असत्य है

यह बात बड़ी भारी खोज से ज्ञात होगी कि किस जाति में प्राचीन आर्य्यों का शुद्ध अथवा अधिक रक्त है। पर यह बात तो निश्चय होगई है कि राजपूतों और वैश्यों में विदेशीय जातियों का रक्त अधिक है। और ब्राह्मणों तथा शूद्रों में उनसे बहुत ही कम है। क्योंकि जितनी जातियां बाहर से आई वे शासक होकर आई थीं और जब राज्यच्युत हो जाती थीं तो कृषी, व्यापार करने लगती थीं। बौद्ध काल में विदेशी लोग भी आचार्य्य बने थे, पर भारतीय ब्राह्मणों के सामने वे असभ्य लोग इस अधिकार को अधिक नहीं पा सके। इस बात को सभी जानते हैं कि जन्माभिमान के काल में शूद्र तो कोई बनता ही नहीं है।

इन बातों के लिखने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम लोगों की वंशावलियों पर चोट करना चाहते हैं। लोगों में झूटा अभिमान इतना भर गया है कि वे बिल्कुल कायर, दब्बू, ज्ञान शून्य और मृतक-स्वरूप होते भी पेंठे मरे जाते हैं, वे दूसरों को नीच समझते हैं इसी लिये हम को यह सारा भंडाफोर करना पड़ा है। हम नहीं जानते कि लोग क्यों घमंड में मरे जाते हैं जब सम्पूर्ण मनुष्य जाति उन्हीं ऋषियों की सन्तान है जिनकी ये असत्याभिमानी हैं। जो लोग कुछ करके दिखा रहे हैं उनका अभिमान सर्वथा ठीक है। कायर से कर्म-वीर सदैव उच्च रहता है। पर कठिनाई तो यह आपड़ी कि कर्म-वीर तो अपने को छोटा बतलाते हैं और यह कायर और निर्लज्ज लोग अपने को कुछ विचित्र ही प्राणी बतलाते हैं।

## सन्यासियों में भी भेद पड़ा

आर्ष ग्रंथों से यह सब प्रकार सिद्ध है कि सन्यासियों के सम्प्रदाय न थे, पर बौद्ध काल में ३६० मतों के साधु थे, उनमें से बहुत से ऐसे थे कि उनको मनुष्य भी नहीं कहा जा सक्ता, इस लिये इन के भी भिन्न २ सम्प्रदाय बना दिये।

सब को अतिथि सत्कार का पात्र बतलाकर गले बाँधना पड़ा। इन मतों में कुछ ऐसे भी साधु थे जो गृहस्थी भी थे। माने वे दोनों ही लोकों का आनन्द लूटते थे, इन्हीं लोगों में से जोगी, गुसाई और यत्ते हैं। जहाँ तक हमारा निश्चय पहुँचा है वहाँ तक हम यही कह सकते हैं कि शंकर स्वामी वाले सम्प्राद के सन्यासी दंडी बने और अन्य वैदिक सन्यासी सरस्वती कहे जाने लगे।

---

## इस विषय में इतिहास के प्रमाण

( १ ) वैदिक काल में बिल्कुल भेद नहीं था, फिर जो इतनी जातियाँ बनीं, इसका कोई विशेष कारण अवश्य था. जाति भेद का कारण जन्मवाद में केवल रक्त का भेद हो सकता है। जहाँ जन्मवाद का पूजन होता है वहाँ गुण कर्म गौण हो जाया करते हैं।

( २ ) अलबेरूनी लिखता है कि किसी समय कुछ जातियाँ परस्पर सम्बन्ध कर लेती थीं पर अब वे ऐसा नहीं करतीं।

( ३ ) कुछ समय हुआ कि गजर, जाट, अहीर लोग एक दूसरे का हुक्का पीते थे पर यह प्रथा अब बन्द होती जाती है।

( ४ ) बुद्धिष्ट इंडिया में मि० ड्यूडज़ ने सिद्ध किया है कि बुद्ध से पहिले कर्म से भी जाति बदल जाती थी।

( ५ ) महाभारत में तो अनेक प्रमाण ऐसे मिलते हैं कि वर्ण परिवर्त्तित हो जाता है।

( ६ ) पुराणों में लिखा है कि मिश्र से इतने मनुष्य आये जिन में से इतने २ ब्राह्मण आदि वर्णों में सम्मिलित किये गये। यदि मिश्र का अर्थ मिश्रित अवस्था है तो भी यह बात सिद्ध हो गई और यदि मिश्र का अर्थ यही अफ्रीका का मिश्र देश है तो भी यह बात सच्ची होगयी।

( ७ ) मिश्र और शाकद्वीपीय शब्द को चाहे कितना ही तोड़ा, मरोड़ा जावे पर इनका अर्थ वही विदेशीय लोग करना पड़ेगा।

( ८ ) ब्राह्मणों में गौड़ों की पदवी उच्च मानी जाती है। पर गौड़ नाम न जाने कौन सी भाषा का शब्द है. जहाँ तक निश्चय हुआ है यह द्रविड़ भाषा का शब्द है। पर जिस गौड़ नाम के नगर से यह लोग अपना सम्बन्ध प्रकट करते हैं वह

नगर १२ वीं शताब्दी से पूर्व लखनौती कहा जाता था उसका गौर नाम मुसलमानों ने अपने प्यारे नगर गौर के नाम पर रक्खा था। इसी प्रकार कान्यकुब्ज नाम भी ८ वीं शताब्दी से पूर्व का सिद्ध नहीं होसकता। क्योंकि ८ वीं शताब्दी में कन्नौज का नाम कामपल्य था।

( ९ ) कहने के लिये १० प्रकार के ब्राह्मण हैं पर गिना जावे तो असंख्य प्रकार के।

( १० ) भारतवर्ष का सब से प्रमाणित वंश भी नवीन खोज ने संदिग्ध सिद्ध कर दिया इस का आशय यह नहीं है कि हमारे पूर्वजों के वंश से अब कोई भी नहीं है, नहीं वरन् बहुत सी जातियाँ उन्हीं की वंशज हैं यदि कोई इस बात का पूरा चित्र देखना चाहते हैं कि बौद्ध मत रूपी बोतल के जल को किस प्रकार पौराणिक मत रूपी बोतल में भर कर रंग बदल दिया है तो वे कृपया नैपाल देश की यात्रा करें।

## क्या वर्त्तमान छूत-छात मूर्खों ने गढ़ी थी

जिस समय यह वर्णव्यवस्था स्थिर की गई उसी समय यह भी प्रश्न था कि जिन लोगों को हमने अपना बनाया है उनके साथ अपने-पन की कुछ क्रियात्मक सहानुभूति अथवा सम्बन्ध भी तो होना चाहिये। यदि इन लोगों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खा गया तो यह लोग अपने को अलग ही समझते रहेंगे, और किसी दिन फिर हमारे पक्के शत्रु बन जावेंगे। उस समय बौद्ध संसार बड़ा ही असंतोष फैला हुआ था। इन मनुष्यों के भ्रष्टाचार, संदिग्ध तथा उदासीनता ने और ब्राह्मणों की पुरानी छूत-छात ने इस प्रश्न को और भी गम्भीर बना दिया था इन नवीन हिन्दुओं को न तो वे अछूत ही बना सकते थे क्योंकि इस अपमान से सारे बन

में आग लगने का भय था और न इनसे सब प्रकार का सम्बन्ध करना ही ठीक था, इसमें यह भी भय था कि कहीं यह लोग हमको भी न डुबोदें।

यदि कोई सज्जन यह कहें कि उन आचार शून्य आचार्यों को शूद्र बना देना चाहिये था, और यदि वे कुछ झगड़ा करते तो राज-दंड से काम लेते प्रथम तो जिन लोगों को अपने साथ मिलाना है उनके साथ ऐसा बर्ताव भी नीति और धर्म दोनों के विरुद्ध है। दूसरे राज दंड देने वाले राजा जो स्वयं बौद्ध मत के भी आदे थे वे ऐसा कर के अपने लिये क्या आशा रखते ?।

यदि सम्पूर्ण भारत वर्ष में उस समय कट्टर हिंदू राजा भी होते तो भी ऐसा नहीं कर सकते थे। जब महाराज हर्ष की मृत्यु के पश्चात उनका सेनापति अर्जुन राजा बना तो हिन्दू होने के कारण चीन से आये दल का हर्ष के समान सत्कार न किया. इस पर इन लोगों ने कुछ धृष्टता की तो अर्जुन ने इन लोगों को दंड दिया इस बात पर चीन, तिब्बत और नैपाल के बौद्ध इतने क्रुद्ध हुये कि उन्हों ने चीन के एक जनरल वानस्यून टिसे को सेना लेकर भेजा. उसने अचानक आकर ४ सहस्र मनुष्यों को मार डाला, १० सहस्र मनुष्यों को नदी में डुबा दिया, ५८० नगरों को जलाकर नष्ट कर दिया, और अर्जुन को उसके परिवार सहित पकड़कर साथ ले गया। इस घटना से बौद्धों और हिन्दुओं के व्यवहार में कुछ असंतोष फैल गया था। उस समय के विद्वान् इस घटना को जानते हुये कभी ऐसा काम नहीं कर सकते थे। निदान विद्वानों के सामने अब यह प्रश्न आकर खड़ा हुआ कि कोई ऐसी विधि होनी चाहिये जिस से सम्बन्ध हो भी और थोड़ा हो। संसार में सम्बन्ध की जड़ भोजन है। सारे सम्बन्ध प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष

इसी भोजन के आश्रित हैं। वैदिक ग्रंथों में इस प्रश्न के लिये और तो कुछ सामग्री न मिली केवल मनुस्मृत्ति में इतना ही लिखा मिला कि पतित और आचार शून्य मनुष्यों से बचाव करना चाहिये, दूसरे घी में बना भोजन कुछ अन्तर से भी खा सकते हो. पर जो भोजन घी में न बना हो उसको तुरन्त ही चौके में बैठ कर खालो ( क्योंकि थोड़ी देर के पश्चात वह बिगड़ जाता है ) इन वाक्यों की तात्कालिक आवश्यकता के लिये यह टीका की गई कि अंत्यज लोगों से तो छूत रक्खी जावे। पक्के भोजन को कुछ देश, काल और पात्र के अंतर खा सकते हैं और कच्चे भोजन को देश, काल और पात्र के भेद से भी नहीं खा सकते अर्थात केवल काल के अन्तर ने दो वच्चे देश और पात्र के और दे डाले। यदि इन दोनों सूत्रों की व्याख्या की जावे तो निम्न लिखित नियम निकलते हैं।

( १ ) अछूतों को छोड़कर पकवान को अपने से नीच लोगों के हाथ का भी खा सकते हैं।

( २ ) उसे अधिक समय के पीछे भी खा सकते हैं।

( ३ ) उसे चौके से दूर भी खा सकते है।

( ४ ) कच्चे भोजन को अपने से नीच लोगों के हाथ का मत खाओ।

( ५ ) उसे अधिक समय रख कर मत खाओ।

( ६ ) उसे चौके से दूर मत ले जाओ।

इस बात को सब लोग जानते हैं कि पकवान कभी२ ढिक, टेहलों और त्योहारों पर ही बनता है। उस समय मनुष्य शुद्ध ही रहते हैं यदि किसी मनुष्य का भोजन भवन अशुद्ध भी हो तो कुछ चिंता नहीं क्योंकि इस पकवान को दूसरी जगह बैठकर खा सकते हैं। जिन पर्वती देशों में चावल खाया जाता था वहां पर रोटी को ही पकवान बनाना पड़ा, वस्त्र उतार कर

कच्चे भोजन को खाने का भी यही अभिप्राय था कि साधारण अवस्था में वस्त्र जो प्रायः मैले रहते हैं, उनको पहन कर भोजन मत किया करो और पकवान को वस्त्र पहिन कर खाने का यह आशय था कि कभी २ खा सकते हो।

इस बात को सभी जानते हैं कि सभी लोग अपने आचार्य्य को बड़ा मानते हैं, इसलिये सब लोग अपने २ सम्प्रदाय के हाथ का बनाया भोजन खा सकते थे। ब्राह्मणों की पदवी उस समय न्याय से वा विवश होकर समान थी, पर अन्दर अनमिल आंक थे इसलिये सब लोग एक दूसरे के हाथ का पक्का ही भोजन खाने लगे। विचारे अछूतों को किसी के हाथ का खाने में कुछ बाधा न थी।

यह रेत की दीवार खड़ी तो करदी पर आगे चल कर फैलने लगी अर्थात शुद्ध सम्प्रदाय के अब्राह्मणों ने मद्य, मांस का सेवन करने वाले नवीन ब्राह्मणों के हाथ का भोजन करने से बचाव किया फिर तो उन ब्राह्मणों ने और उनके मुंडे मुंडाये पिछले चेलों ने छूत को बढ़ाकर सबको ही नीच सिद्ध करने का यत्न किया। नवीन सन्तान जिसने वैदिक धर्म के संस्कारों में कुछ शिक्षा पाई थी वह अपने माता पिता से भी बचाव करने लगी। अब इन लोगों में जिन लोगों ने मांस त्याग दिया था वे अपनी जाति के मनुष्यों से भी छूत करने लगे। जो मनुष्य अभक्ष्य पदार्थों को सेवन करता है, उसका शुद्ध लोगों से छूत करना व्यर्थ है।

## धन्यवाद

उन महा पुरुषों के पद पंकजों में अत्यन्त ही श्रद्धा भक्ति और विनय-भाव से झुकने के लिये आर्य्य सन्तान के सिर व्याकुल हो रहे हैं जिन्होंने ऐसे कठिन प्रश्न को कितनी

सुगमता से हल कर दिया। पर समय का चक्र बड़ा बुरा है आज वही अपूर्व चतुराई की बात इतनी अनावश्यक और जाति के नाश का मूल बन गई है कि लोग उन विद्वानों को मूर्खों के नाम से पुकारते हैं।

सच बात है मनुष्य की बातें अटल और नित्य सिद्धान्त नहीं होतीं।

## गोत्र और वंशावलि का रहस्य

आज हमारे देश में शूद्र से लेकर ब्राह्मण तक सब अपनी २ उपजाति को उच्च तथा पुराने ऋषियों की वंशज और दूसरी उपजातियों को नीच सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं। यह असंतोष जाति की अकर्मण्यता ने उत्पन्न कर दिया है, यह एक साधारण सी बात है कि जब किसी मनुष्य में गुण-कर्म का अभाव हो जाता है तो वह स्वभाव से आत्म-श्लाघी होने के कारण अपने को उच्च सिद्ध करने के लिये जन्मवाद की कच्ची भित्ती का सहारा लेने लगता है। और जिस मनुष्य में कुछ कर्म वीरता होती है वह केवल अपने कर्म और गुण का ही आश्रय लिया करते हैं। जन्म-वाद और गुण, कर्म-वाद यद्यपि परस्पर एक दूसरे के सहायक हैं पर आज हमारी जाति के अज्ञान ने, इनको एक दूसरे का शत्रु बना दिया है। इस बात से मुकरना बड़ा भारी पाप है कि जन्म का प्रभाव गुण, कर्म, स्वभाव पर पड़ता ही नहीं है पर वे लोग इनसे भी अधिक पापी हैं जो जन्म को प्रधानता देकर, मनुष्यों के विशेष गुण और शिक्षा को उपदेश की दृष्टि से देखते हैं इस में सन्देह नहीं कि जन्म के साथ ही मनुष्य को जो परिस्थिति मिलती है, उसी पर उसकी योग्यता का सहारा है, पर यह तो अनिवार्य्य नहीं है कि परिस्थिति सदा अच्छी ही मिले, कोई समझदार मनुष्य

इस से भी नहीं मुकर सकता कि जिस प्राणी को जहाँ जन्म दिया है उसमें कुछ विशेष महत्व अवश्य होता है। नहीं तो भविष्य-दर्शी ऋषि लोग पैत्रिक सम्पत्ति और दाय भाग के विषय में हो नियम बनाते। पर इसका यह आशय नहीं है कि इस में अपवाद भी नहीं हो सकता यदि किसी मनुष्य का पुत्र विधर्मी अथवा पागल होगया है तो वह धर्म शास्त्र की आज्ञानुसार कुछ भी अधिकार नहीं रखता उसके स्थान पर पिता का दत्तक पुत्र अधिकार रखता है। धृतराष्ट्र यदि अयोग्य था तो विद्वानों ने उसे राज गद्दी पर नहीं बैठने दिया और जब लोगों ने कुछ नियम से गिरकर फिर उसे बिठा दिया तो यही व्रत स्वयं धृतराष्ट्र और संसार के नाश का कारण हुई। शास्त्र ने जो जन्म को प्रधानता दी है वह केवल इस लिये दी है कि उसका, गुण, कर्म, स्वभाव अथवा शिक्षा और संस्कार से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यदि जन्म में इन बातों के उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है तो वह वास्तव में वैसा ही व्यर्थ है जैसा कि धर्म शास्त्र में काष्ट का हाथी बतलाया गया है जब तक कोई मनुष्य अपनी योग्यता से सिद्ध करके न दिखादे, हम कैसे विश्वास कर लें कि वह उसी उच्च वंश से है जिस से वह बतलाता है। अच्छे २ उच्च कुलों की स्त्रियां नीच जातियों और मुसलमानों तक से संयोग करके सन्तान उत्पन्न कर रही हैं। जिस मनुष्य में कायरता आदि गुण तो गीदड़ से मिलते हैं और कहता है अपने को सिंह का बच्चा, वह पागल नहीं तो और क्या है। देखो प्रताप, शिवाजी, और भाई दयासिंह, राम, कृष्ण की संतान थे तो उन्होंने देश से अत्याचार को नष्ट करके सिद्ध करदिया। शंकर, रामानुज, रामानन्द, दयानन्द यदि कपिल कणाद की सन्तान थे तो संसार को हिला कर दिखा दिया। जो मनुष्य कुछ करना धरना नहीं जानता वह कर्म से वर्ण माने तो नीच और जन्म से माने तो महा नीच।

यद्यपि हम पीछे ही सिद्ध कर चुके हैं कि लोगों का जन्म पर अभिमान करना सर्वथा व्यर्थ है पर यहां पर हम इतना और कहे देते हैं कि जो मनुष्य अयोग्य होते हुए योग्य महापुरुषों का अपने को वंशज बतलाते हैं वे लोग उनको भी अयोग्य, कायर और निर्लज्ज सिद्ध करते हैं। क्योंकि यह स्वाभाविक बात है कि नागोरी गौ को देखकर उसके उच्च वंश का और गधे को देखकर उसके नीचवंश का ध्यान आप ही आ जाता है। एक शूद्र जो स्वभाव से ही स्वयं सेवक है, वह प्रकट करता है कि मैं अपने ही बाप से हूँ और एक क्षत्री जो पक्का कायर है वह सिद्ध करता है कि मैं किसी नीच व्यभिचारी से उत्पन्न हुआ हूँ।

आज जन्माभिमानियों के असत्याभिमान का आधार गोत्र और वंशावलियां हैं हम अब इस कुफ्र को भी तोड़े देते हैं।

## घमंड थोता है

(१) यदि सब मनुष्य शुद्ध आर्य्यों की सन्तान होते तो यह उपजातियां क्यों बनतीं।

यह ऊंच नीच का प्रश्न क्यों खड़ा होता?

(२) यदि गोत्र और वंशावलि आदि ही तुम्हारे वंश को उच्च बतलाती हैं तो हम इन के द्वारा शूद्रों को भी तुम से उच्च सिद्ध कर सकते हैं।

(३) राजपूत लोग गोत्र और वंशावलियों का विश्वास उस समय तक क्यों नहीं करते जब तक उनके नातों का तांता न बँध जावे।

किसी अभिमानी से प्रश्न किया जावे कि तुम्हारी जाति का क्या नाम है वह कहेगा कि अमुक नाम है। अब उससे उस जाति की व्युत्पत्ति पूछोगे तो वह कहेगा हम उस महापुरुष

की सन्तान से हैं। अब उससे पूछो कि अजी बुद्ध मियां क्या इस नाम का तुम्हारी जाति में एक ही गोत्र है, तो इसपर वह कहेगा बहुत से गोत्र हैं तो उससे फिर प्रश्न करो कि क्या वे ऋषि जिनके नाम पर यह गोत्र रक्खे गये थे, तुम्हारे उस महापुरुष की सन्तान से हैं अथवा वह महापुरुष इन सब की सन्तान था। प्रथम तो वह चुप ही हो जायगा और यदि बहुत कहेगा तो इतना और कहेगा कि जब सन्तान बढ़ गई तो गोत्र बदले गये तो इस दशा में भी गोत्र पर अकड़ना व्यर्थ हो जायगा।

(५) अनेक गोत्र ऐसे ऋषियों के नाम पर हैं जिन बिचारों की सन्तान ही आगे न चली।

(६) यह बात क्यों कही गई कि जिस को गोत्र का पता न हो वह अपना गोत्र काश्यप रखलें। क्योंकि पौराणिक गाथा के अनुसार सब कश्यप (परमात्मा) की ही सन्तान है।

(७) सारी वंशावलियां भगवान् शंकराचार्य के पीछे बनी हैं

(८) कुछ जातियों के नाम देशों पर हैं उनसे पूछिये कि आप का नाम देश पर क्यों रक्खा गया। वे कहेंगी हम उसी देश से सम्बन्ध रखती हैं। अब उनसे पूछो कि तुम्हारी जाति के जो मनुष्य दूसरे प्रान्तों में रहते हैं, उनको फिर इसी नाम से क्यों पुकारते हो। इस पर वे यह कहेंगे कि आचार विचार के कारण ऐसा करते हैं तो फिर यह बताओ कि तुम्हरा आचार भिन्न क्यों है वे कहेंगे देश, काल के भेद से तो फिर यह कहिये कि क्या दूसरे प्रान्त में रहने वाले तुम्हारे लोगों पर वहाँ के आचार का प्रभाव न पड़ेगा। यदि पड़ता है तो उस से तुम्हारा आचार क्या संबन्ध रखता है। तुम क्यों अपनी जाति में गिनते हो।

(६) बहुत से गोत्र बिल्कुल ऊटपटांग रक्खे हुये हैं। जैसे पूरबन्दर के राजा ने उदयपुर के राजा को अपना गोत्र पूछरिया बताया था। भाटों को डरा धमका कर इसकी व्युत्पत्ति यह बनवाई कि हनुमान जी के पसीने को लंका जाते समय एक मछली खागई थी उसी से हमारी जाति है।

(१०) भिन्न २ शारीरिक बनावट ही इसको सिद्ध कर रही है। अनेक प्रथायें अभी तक ऐसी हैं जो विदेशीय जातियों से ही सम्बन्ध रखती हैं।

## इस विषय में शास्त्रों के प्रमाण

( १ ) जिन शंकर स्वामी के समय में यह नाना प्रकार की जातियां बनी हैं उनकी रची हुई शंकरनीति में स्पष्ट यह श्लोक पढ़ लीजिये कि

> न ज्ञात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्येवच ।
> न शूद्रो न चवै म्लेच्छो भेदिता गुण कर्मभि ॥

प्रत्येक मनुष्य अपने काल की आवश्यकता को पूरा करने के लिये अपना ग्रन्थ रचता है इसी नियम के अनुसार शंकर स्वामी ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने के लिये कि जन्म से ही वर्ण होते हैं यह श्लोक रचा था।

( २ ) मनुस्मृत्ति को सूत्रों से श्लोक बद्ध करने वाले ने स्पष्ट लिखा है कि लोगों ने अनेक वेद विरुद्ध स्मृत्तियां रच-मारी हैं। इन्हीं की भाँति एक स्मृत्ति का नाम अत्रिस्मृत्ति है जो कि किसी दक्षिणी ब्राह्मण ने नवीं शताब्दी में रची है उसमें लिखा है।

ज्योतिर्विदोह्याथर्वाणः कीराः पौराण पाठकाः।
श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीया न कदाचन॥
आविकाश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्र पाठकाः।
चतुर्विप्रानपूज्यन्ते बृहस्पति समा यदिः॥

अब विचारने की बात यह है कि ज्योतिषी, अथर्वपाठी, कीर, पुराणपाठी, अविक, चित्रकार, वैद्य, नक्षत्रपाठी ब्राह्मणों को लेखक ने क्यों अपूज्य बतलाया। इसका उत्तर कोई जन्माभिमानी नहीं दे सकता पर इसकी तह में एक गहरी बात है। आदि सृष्टि से आर्य्यों का यह नियम चला आता था कि वेदों को कुपात्र को कभी नहीं पढ़ाते थे। आपस्तम्ब सूत्र में लिखा है कि—

आथर्वणस्य वेदस्ये शेष इत्युपदिशन्ति।

जिसका अर्थ यह है कि उत्तम शूद्र अथर्व वेद पढ़ सकता है। इसी सनातन नियम के आगे सिर झुकाते हुये शंकर स्वामी ने नवीन ब्राह्मणों को ज्योतिष, वैद्यक, अथर्व वेद पुराणादि का पढ़ना पढ़ाना रक्खा था। यदि कोई महानुभाव यह कहें कि इसका शंकर स्वामी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है वरन् वेद न पढ़ने ब्राह्मणों के लिये एक प्रकार की चेतावनी है सो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम तो यह बात प्रसंग के बिल्कुल विरुद्ध है दूसरे इस स्मृति में स्पष्ट लिखा है कि—

अंगीकारेण ज्ञानीनां ब्राह्मणनुग्रहेण च।
पूयन्ते तत्र पापिष्ठा महापातकि नोपिये॥

अब विचारने की बात है कि वे कौन से महापातकी बौद्धादि से भिन्न थे जो जाति के ले लेने और ब्राह्मणों की कृपा से पवित्र होगये।

(३) यही नहीं ब्रह्मनिर्णयादि ग्रन्थों में तो स्पष्ट ही लिखा है कि—

सारखा, पारखा, खंडा, गौडा, गूजर, संज्ञकः ।
पंच विप्रा न पूज्यन्ते वाचस्पति समायदि ॥
आभीर, कंका, यवनाश्व, भृंगा
नारास्तथा मालव देश विप्राः ।
श्राद्धे, विवाहे, खलु, यज्ञकर्मणि
ते वर्जिता यद्यपि शम्भु तुल्या ॥

इतिहास से यही सिद्ध किया गया था कि उत्तरीय भारत के ब्राह्मणों में विदेशीय रक्त है। उसी को इन ग्रन्थों ने स्पष्ट कह दिया है इस पर भी यदि कोई अकड़े तो यह मूर्खता है

## एक विशेष बात

अनेक तुच्छ विचार के मनुष्यों ने समझ रक्खा है कि ब्राह्मण बनने के लिये केवल थोड़ी अथवा बहुत संस्कृत पढ़ लेना पर्याप्त है यह उनकी मूर्खता है उनको याद रखना चाहिये कि युधिष्ठिर, राम, कृष्ण, विदुर, जनक, धर्मव्याध्र आदि ने पूर्ण विद्वान् और धर्मात्मा होते हुये भी कभी ब्राह्मण बनने का दावा नहीं किया। वर्णाश्रम धर्म का मूल मंत्र यह है कि वह सम्पूर्ण समाज को संतोष पूर्वक अपनी २ योग्यता और देश काल की परिस्थिति के अनुसार दोनों प्रकार की उन्नति का अधिकार देता है। वह यारूप की भाँति असंतोष और स्पर्धा का पाठ पढ़ाकर दूसरों की आजीविका छीनना नहीं सिखाता वह यह नहीं कहता कि जो मनुष्य अधिक चालाक और बलवान हो वही दूसरों का धन हड़प कर मोटा हो जावे।

# गोत्र और वंशावलियों की उत्पत्ति

जो जातियाँ कभी बौद्ध मत में नहीं गईं, वे तो अपने गोत्रादि को पहिले से ही जानती थीं। पर अधिक मनुष्य ऐसे ही थे जो बौद्ध मत में जाकर हिन्दू मत में आये थे। इनमें जो लोग विदेशी थे, उनके तो गोत्रादि कुछ हो ही नहीं सकते, और जो देशी थे वे बौद्ध मत में जाकर सब कुछ भुला बैठे थे। पुराने हिन्दू तो धर्म कृत्यों में गोत्र का उच्चारण करते ही थे, पर नवीन हिन्दू कैसे करते इसलिये उस समय के विद्वानों ने उनके भी गोत्र, अ, ब, स, ऋषियों के नाम पर रख दिये और साथ ही इस विचार से कि कहीं किसी दो जातियों के समान गोत्रीय ब्राह्मण आदि वर्ण आवश्यकता में अन्धे होकर इन जातियों में गड़बड़ न करदें, किसी विशेष मनुष्य, विशेष नदी अथवा देशादि के नाम पर उनकी जातियों के भी नाम रखदिये। बहुत से विद्वानों ने जब वंश और गोत्र की टक्कर मिलती न देखी तो यह भी कह दिया है कि गोत्र का सम्बन्ध उस ऋषि से है जिससे किसी वंश के लोगों ने शिक्षा पाई थी। इस बात से यद्यपि हमारी बात की पुष्टि होती है पर इस बात में सार कुछ भी नहीं है। कश्यप ऋषि की पौराणिक गाथा को यदि आलङ्कारिक न मानकर सत्य मान लिया जावे तो इस से वैदिक सिद्धान्त टूटता है। क्योंकि इस दशा में कश्यप की सन्तान ने परस्पर ही विवाह किया होगा पर जिस समय हम उत्पत्ति को वैदिक काल में लिखे अनुसार मानते हैं तो सिद्धान्त कुछ नहीं टूटता, और गोत्र भी वैसा ही सत्य हो जाता है जैसा कि उसके शब्द से प्रकट होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि आदि में गोत्र का सम्बन्ध उसी ऋषि से था जिसकी मैथुनी सृष्टि आगे चली,

यदि ऐसा न करते तो एक ही ऋषि की सन्तान परस्पर विवाह कर बैठती। अधिक से अधिक गोत्रों का यह ताँता बाम काल तक ठीक रहा होगा। और बौद्ध काल में उन थोड़े से लोगों का ठीक रहा होगा जो कभी बौद्ध नहीं हुये। सम्भव है कुछ विचार शून्य भाई विद्वानों के नवीन अ. ब, स, नामक गोत्रों को एक ढोंग ही समझे बैठे हों, इसलिये इस विषय पर कुछ संक्षेप रूप से प्रकाश डाले देते हैं। उसके देखने से पता चलेगा कि उस समय के विद्वानों की यह कितनी बुद्धिमत्ता थी।

## गोत्रादि का महत्व।

(१) वैदिक धर्म का यह अटल सिद्धान्त है कि सगोत्र विवाह कभी मत करो, इस सिद्धान्त की पश्चिम के डाक्टरों ने जो प्रशंसा की है वह वैदिक विवाहादर्श नामक ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात होगी। जब नवीन वर्णव्यवस्था के अनुसार अपनी ही उपजाति में विवाह होने निश्चित होगये तो इस विचार से कि आगे गड़बड़ न हो, नवीन हिन्दुओं के गोत्र बना दिये।

(२) गोत्र से दूसरा लाभ यह था कि वह लोगों में वैदिक महापुरुषों के प्रति श्रद्धा और भक्ति को बढ़ाता है आदि में तो इन गोत्रों का लोगों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा पर आगे चल कर नवीन हिन्दुओं की सन्तान उनको अपना श्रद्धेय, पूर्वज मानने लगी और इस प्रकार विधर्मी होने के स्थान पर पक्के जन्माभिमानी होगये।

(३) यदि गोत्र न होता तो एक भारी दफ्तर विवाह के लिये बनाना पड़ता।

(४) यदि गोत्र न होता तो दाय भाग के विषय में बड़ी गड़बड़ मच जाती अन्य मनुष्य इसी प्रकार सम्पत्ति को हड़प जाते

जिस प्रकार सन् १६२३ ई० में बंगाल देशीय एक धनी मुसल्मान की सम्पत्ति की स्वामिनी एक अनाथ लड़की बन बैठी थी।

(५) संसार में जिस जाति के पास अपने पूर्वजों का इतिहास नहीं उसके उठने में बड़ी २ बाधा पड़ती है। राजपूत लोग जब भाटों के मुख से अपने पूर्वजों की वीरता से भरे करखे सुनते थे तो वे उनकी और अपनी मान मर्यादा के लिये मिट जाते थे सिक्खों के सामने जब गु० गोविन्दसिंहजी की वीरता आजाती थी तो अपने जीवन को वे तुच्छ समझ लिया करते थे। गोत्र, वंशावलि, और संकल्प क्या है? यही इतिहास का मूल मन्त्र है। जो लाभ यह तीन शब्द पहुँचा सकते हैं वह लाभ इतिहास के असंख्य पोथे भी जनता को नहीं पहुंचा सकते।

(६) सन् १८६६ ई० में जब प्रबुद्ध भारत (पत्र) के प्रतिनिधि ने स्वामी विवेकानन्दजी से विधर्मियों की शुद्धि के विषय में कुछ प्रश्न किये तो उन्होंने कहा हिन्दू धर्म में तो सब से बड़ा गुण यही था कि वह दूसरों को अपना बना लेता था। इस पर प्रतिनिधि ने पूछा कि स्वामीजी उनको किस जाति में मिलाया जावेगा, तो इस पर उन्हों ने हँसकर कहा नाम की बात मत पूछो बस जो कुछ है इसी नाम में है। उनका संकेत इन्हीं बातों की ओर था।

## जातीय गौरव से भरजाओ

हम लोग नहीं २ सारा संसार गोत्र और वंश गौरव को बड़ी श्रद्धा दृष्टि से देखता है, वह जाति संसार से मिट जावेगी जिस में गौरव नहीं है, पर वह जाति उस से भी पहिले मिट जावेगी जिसको झूटे अभिमान ने खा लिया है, पापी और दुष्ट मनुष्यों को छोड़ कर किसी को छोटे व्यवसाय अथवा वंश के कारण नीच समझने वाले सदा धक्के खाते हैं।

हम लोग गौरव का बड़ा आदर करते हैं इसी लिये हमने किसी विशेष जाति का उल्लेख नहीं किया। इस भय से कि दब्बू हिन्दू कहीं और न दब जावें।

## संस्कारों में गोत्रादि का कार्य्य

प्रायः पश्चिमी बातों के गुलाम, और अश्रद्धालु मनुष्य जब धार्मिक कृत्यों को पौराणिक विधि से करते हुये देखते हैं, तो बार २ के संकल्प और गोत्र के उच्चारण पर बहुत खिल्ली उड़ाया करते हैं। यदि यह भाई इन बातों के महत्व को समझते तो कभी ऐसा न करते। यदि इन बातों को बार २ कहने का नियम न रक्खा जाता तो इनकी रक्षा कभी नहीं हो सकती थी, यदि इनको भी पुस्तकों में बन्द कर दिया जाता तो अन्य ग्रन्थों की भांति यह भी नष्ट होजाते, दूसरे जो प्रभाव इनका बार २ कहना रखता है वह पुस्तकों में बन्द होने से कभी प्राप्त नहीं हो सकता। चीनी और यूनानी अभिमान करते हैं कि हमारे पास सब से अधिक पुराने इतिहास हैं तो हम अपनी अवनत दशा में भी यह कह सकते हैं कि मित्रो! यदि तुमको ६ सहस्र वर्ष के इतिहास पर घमंड है तो हमारे पास यह गोत्र और संकल्प २ अर्ब वर्ष के पुराने इतिहास चिन्ह आज भी मौजूद हैं। हमने अपने विपत्तिकाल में चाहे क्रम-बद्ध इतिहास को खो दिया, पर उसके निचोड़ की रक्षा उस में भी करली जिन इतिहासों से जीवन में पलटा नहीं उन से क्या लाभ। जब इतिहास अपने को सदा दुहराता है तो उसके तत्व की रक्षा करनी ही पर्याप्त है।

जो पश्चिमी विद्वान् अपने को इतिहासज्ञता का ठेकेदार समझते थे, उनको स्वीकार करना पड़ा है कि ब्राह्मण लोग इतिहास के भी पूरे पंडित थे। हम लोग भूमि की आयु

२ अर्ध वर्ष के आस पास सदा से मानते हैं पर पश्चिमी लोग, भूगर्भ शास्त्र के विरुद्ध अभी तक वही अलापे जाते हैं।

## यजमान का संकल्प का पैसा

ब्राह्मण लोग जब बात २ में संकल्प का पैसा माँगते हैं, तो उस समय लोगों की श्रद्धा उन से जाती रहती है. यह बात भी बड़ी गहरी है। विद्वानों ने सोचा कि यह नवीन ब्राह्मण वैसे तो क्या धर्म की बातों की रक्षा करेंगे, इस लिये इन के पीछे कुछ प्रलोभन लगा देना चाहिये जिसकी चाँट में यह कुछ न कुछ करते ही रहें। बस इसीलिये यह संकल्प का पैसा और बात २ में टके लगा दिये थे। यदि इन लोगों को एक साथ देने का नियम होता तो अब तो ५ प्र० सै० ब्राह्मणों को ही संकल्प याद होगा उस समय तो सब शून्य से गुणा खाये होते।

## वर्त्तमान वंशावलियां

भारत वर्ष में राजा लोग तो सदा से अपनी वंशावलियां रखते आये हैं, यह बात पुराण रामायण और महाभारत से भली प्रकार सिद्ध है, पर जनता में वंशावलियां रखने का नियम स्वामी जी के समय से बना है, ऐसा करने में यह लाभ थे।

(१) अपने वंश का पता गोत्र सहित लिखा भी रहे। जिस से दाय भाग में झगड़ा न पड़े।

(२) बौद्धों के विरुद्ध अपने पूर्वजों में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये।

(३) भाटों की जीविका के लिये।

(४) पीछे से कुछ वंशावलियां अपने को उच्च सिद्ध करने के लिये भी लिखी गईं जैसा कि अब भी होने लगा है।

# मुसलमानों की वंशावलि

जब मुसलमान यात्रियों ने देखा कि भारत के मनुष्य अपने गोत्रादि के घमंड में इतने पक्के हैं कि वे हमको नीच समझते हैं तो उन्हों ने भी वंशावलि गढ़नी आरंभ करदी, और क्या आश्चर्य है कि भारत के बन्दी भाटों ने ही यह बात जाकर सुझाई हो मुसलमान भी अपनी वंशावलि बाबा आदम और हौवा से मिलाते हैं। पर अब यह बात सिद्ध होगई कि आदम और हौवा की कहानी वाम काल में याज्ञवल्क्य ऋषि के वचनों का भाव न समझकर यहूदियों ने गढ़ मारी थी और उनसे मुसलमानों ने ले ली थी। पर इस ने सैय्यद, और जुलाहे का प्रश्न मुसलमानों में भी खड़ा कर दिया।

# खाट से नीचे क्यों लेते हो

हिन्दुओं में सब का यह चचार है कि मनुष्य मरकर अपवित्र होजाता है इसी लिये उसको प्राण निकलने से पूर्व भूमि पर लेते हैं, यह लोगों का भ्रम मात्र है। वैदिक काल का यह नियम था कि वे खाट पर मरने को पाप समझते थे, अवैदिक काल में आकर इसका अर्थ यह समझने लगे कि इस लकड़ी की खाट से नीचे उतार लेने से ही मुक्ति मिलजाती है, स्वामी जी के समय में लोगों को इसका रहस्य फिर बतलाया गया, और क्योंकि स्वामीजी को लोगों में त्याग उत्पन्न करना अभीष्ट था, इसलिये इस प्रथा को ज्यों का त्यों रहने दिया। कुछ काल के पीछे लोग इसके रहस्य को फिर भूल गये और मृतक को अपवित्र समझने लगे।

---

## भंगी के हाथ से मुक्ति होगी

स्वामीजी ने देखा कि कहीं इस छूत छात का यह परिणाम न हो कि लोग एक दूसरे को नीच समझने लगें, अब वे यह सोचने लगे कि इसका उपाय क्या किया जावे। संसार की सभी जातियों के मनुष्य अपने मृतकों का बड़ा आदर करते हैं, आर्य्य लोग तो अपने मृतक को हवन कुंड में रख कर घृतादि पदार्थों से आहुति दिया करते थे, आर्य्य जगत में यद कोई सबसे पवित्र चीज है तो वह यज्ञहै। अफ्रीका की वर बर जातियाँ भी अपने मृतकों का इतना आदर करती थीं कि मसाला लगाकर उनको बड़ी सावधानी से रखती थीं। अब विचारने की बात है कि ऐसी पवित्र, श्रद्धेय वस्तु की मुक्ति भंगी को नीच समझते हुये कैसे मानी जा सकती है। स्वामीजी ने लोगों को नीच ऊंच के गढ़े में गिरने से बचाने के लिये मानो यह लेम्प जलादिया था कि मृतक की मुक्ति भंगी के ही हाथ से होगी, इस में एक रहस्य यह भी था, कि भंगी जो स्वच्छता का राजा होता है, उसको अग्नि देकर कर देना अनिवार्य्य है। हमारे शत्रु कहते हैं कि हिन्दुओं के पूर्वजों ने भंगी को नीच समझ कर ही अछूत कह दिया था यह उनका अज्ञान है, इस विषय पर हम वैदिक काल में ही अच्छा प्रकाश डाल चुके हैं पर यहां पर इतना और लिखना उचित समझते हैं कि इस काल में भंगी को जो अछूत बतलाया उसका आशय यह नहीं था कि लोग उनको पशु से भी नीच समझते हैं। जिन विद्वानों ने हिन्दू साहित्य पर थोड़ी सी भी दृष्टि डाली है वे जानते हैं कि हिन्दू विद्वानों की यह सदा से नीति चली आती है कि जिन बातों का वे जनता में प्रचार करना चाहते हैं तो उनकी प्रशंसा को आकाश में पहुँचा

देते हैं और जिन बातों की वे बुराई करते हैं अथवा उनसे बचाव कराना चाहते हैं तो उनकी बुराई को पाताल में पहुँचा देते हैं। इस अतिशयोक्ति का विद्वानों पर तो अधिक प्रभाव नहीं पड़ता पर जन साधारण पर इन आवेशों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि साधारण मनुष्यों में विचार-शक्ति तो होती नहीं उन का मरना, जीना, धर्म, अधर्म, कर्तव्य और निषेध केवल उनके आवेशों पर ही निर्भर होता है ह० मुहम्मद ने इन्हीं आवेशों की शिक्षा देकर मूर्ख जातियों को सभ्य जातियों का स्वामी बनादिया था, आज हम कहे देते हैं कि मुसलमानों को वही जाति अपने बस में रख सकती है जिस के आवेश उन से भी अधिक बढ़े हुये हों। दया का पाठ पढ़ाने वाली ईसाई शक्ति अपने आदि काल में मुसलमानों को न दबा सकी पर असभ्य तातारियों ने अरबों को (जिनमें कुछ सभ्यता आगई थी) ऐसा परास्त किया कि कई लाख मुसलमानों के सिर दजला नदी की रेती में काट कर फेंक दिये और उनके बढ़ते हुये साम्राज्य को चंगेज़खाँ और तैमूर ने नष्ट कर दिया। मुसलमानों को जो नीचा मुट्ठी भर सिक्ख क्षत्रियों ने दिखा दिया वह परम नीति कुशल मराठों और अनुपम वीर राजपूतों से न दिखाया गया।

संसार के सभी मत मांस खाना पाप बतलाते हैं, बौद्ध लोग तो इससे बुरा पाप ही कोई नहीं समझते पर जितने निरामिष भोजी इस अश्रद्धा के समय में आर्य्य जाति में मिलेंगे उतने कहीं न मिलेंगे, इस का कारण यह है कि हिन्दू लोग अपने बच्चों को बचपन से ही इतनी घृणा मांस से उत्पन्न कर देते हैं कि मांस को देखते ही लोगों को वमन हो जाता है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार भंगी से छूत के सिद्धान्त को बहुत बढ़ाया था, मूल बात केवल इतनी थी कि भंगी का अन्न

बड़ी ही मेहनत का है, उसे सताना ठीक नहीं है। सेवा के कर्मों में उसका कर्म सब से बड़ा है। इसीलिये उसको किसी भी यज्ञादिक में धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं। इसीलिये हिन्दुओं में भंगी के नेग सब से अधिक रक्खे गये हैं। इसी अच्छे प्रबन्ध की कृपा है कि योरुप जैसे धनवान देश में लोग बेरोज़गार मारे फिरते हैं पर दीन भारत क एक भंगी नहीं जानता कि अकाल किस चिड़िया का नाम है। योरुप वालो जिस साम्यवाद के लिये लालयित हो रहे हो वह भारत से ही तुम को मिलेगी।

## श्राद्ध और तर्पणादि

श्राद्ध, तर्पण, और तेरहवीं आदि धर्म कृत्य वैदिक काल में भी थे पर इस समय आकर इन का रूप बदलना पड़ा। बौद्ध मत का यह एक सिद्धान्त था कि न दुख को दुख मानो न सुख को सुख मानो। माता, पिता, पुत्र आदि के मोह में मत फँसो और निर्वाण पद की तैयारी करते रहो। जन साधारण पर इसका यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने माता, पिता, पुत्रादि के प्रति कर्त्तव्य को ही त्याग दिया था। दुख में सुख मानने कोलिये वे मृत्यु पर भी सहभोज उड़ाते थे उस समय युवावस्था में कदाचित ही कोई मरता था अब स्वामीजी ने माता, पिता, पुत्र आदि के सम्बन्ध को बढ़ाने के लिये, और ब्राह्मण लोगों की आजीवका ध्यान रखते हुये पुरानी बातों में विशेष परिवर्त्तन करदिये। नैपाल के बौद्ध साधु जिस पात्र में भिक्षान्न लेते हैं उसको वे पिंडपात्र कहते हैं पिंड शब्द का क्या अर्थ है इसे विद्वान् स्वयं विचार लें॥

---

## ताम्बूलं समर्पयामि नमः

वैदिक काल से ही ताम्बूल, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, रोली, चन्दन, कलावा आदि शुभ चिन्ह और आदर प्रदर्शक समझे जाते थे। बौद्ध काल में भी बहुत ही वेद विरोधी लोगों को छोड़कर सभी लोगों में इनका प्रचार था। इस बात को हम पीछे ही लिख चुके हैं कि १ सहस्रवर्ष तक यज्ञों को बड़ी ही अश्रद्धा की दृष्टि से देखा जारहा था स्वामीजी ने यज्ञों का आदर बढ़ाने के लिये इन आदर प्रदर्शक बातों को भी यज्ञ विधि के साथ जोड़ दिया था। यद्यपि आज यह बातें देखकर नये छैलों को हँसी आती है पर बात अपने महत्व से शून्य नहीं है।

## त्रिकाल-संध्या

धर्म-शास्त्र में सन्ध्या के दो ही समय लिखे हैं और लोक में भी ऐसा ही है। धर्म शास्त्र में जो दो समय नियत किये हैं, वे बिलकुल ही ठीक हैं, निस्सन्देह प्रातःकाल और सायंकाल दो ही समय ऐसे हैं, जब कि मनुष्य का चित्त कुछ ठिकाने रहता है अथवा रह सकता है। संस्कृत में संध्या शब्द का अर्थ भले प्रकार ध्यान करना है। पर इसके साथ ही दो कालों के मिलने का नाम भी संध्या होता है. सायंकाल को तो सभी सन्ध्या कहते हैं। पर प्रातःकाल को भी विद्वान् पूर्व सन्ध्या ही कहते हैं। देव वाणी होने के कारण इस भाषा में यही विशेषता है, इस बात को हम वैदिक काल में प्रकट कर चुके हैं, कि वैदिक सिद्धान्त मानो भूगोल हैं और यह सृष्टि मानो चित्र है। संसार की किसी भी भाषा में यह विशेषता नहीं है। सृष्टि का आदि और उसका अन्त दोनों ही काल ऐसे हैं, जब कि मनुष्य के

हृदय में परम-पिता के प्रति भक्ति का समुद्र विशेष रूप से लहरें मारता है, इसी प्रकार दिन आदि और उसका अन्त भी यही विशेषता रखता है।

जिस प्रकार अनीश्वर वादी मूर्ति-पूजक अरबों में ह० मुहम्मद ने ईश्वर वाद के प्रचार के लिये पांच समय नियत कर दिये थे, इसी प्रकार भगवान शंकर स्वामी ने भी जैनों और बौद्धों को ईश्वर-वादी बनाने के लिये तीन समय रख दिये थे, जिस प्रकार मुहम्मद साहब ने हाथ में मूर्ति छिपाने वाले लोगों के लिये हाथ खोलकर नमाज़ पढ़ने की आज्ञा दी थी, इसी प्रकार स्वामीजी ने यह दिन का समय रख दिया था।

## रज वीर्य्य की रक्षा करो

बहुत से भाई कहा करते हैं कि दुहिता शब्द का प्रयोग करनेवाली जाति में मुसलमानों की भाँति एक ही वृक्ष में हेरा फेरी के विवाह की प्रथा कैसी पड़ी। इस समय के विद्वानों के सामने तीन प्रश्न थे जिनके हल करने का यदि कोई उपाय था तो यह था कि तुम लोग अपने रज वीर्य्य की रक्षा करो। वे प्रश्न यह हैं।

( १ ) लोगों में स्पर्धा उत्पन्न करके आचार, विचार, और वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा वृद्धि और विद्या वृद्धि की जड़ जमाना।

( २ ) प्राचीन लोगों की रक्षा करना।

( ३ ) गुण, कर्म,-स्वभाव के अनुसार विवाह करने कराने का सरल मार्ग।

( ४ ) बौद्ध लोग अन्धाधुन्ध सम्बन्ध करते थे, इसलिये लोगों की इस बान को छुड़ाने के लिये भी यह आवश्यक था।

## विदेशों में मत जाओ

आप से आप यह प्रश्न उठता है कि वैदिक साहित्य में तो विदेशों में व्यापार और प्रचार करना धर्म लिखा है और पौराणिक ग्रंथों में इसका निषेध कर दिया है, यह परस्पर विरुद्ध बातें कैसे लिख मारीं। यह नियम ८ वीं शताब्दी में बनाया गया था क्योंकि उस समय प्रथम तो बौद्ध संसार में ही अपने मत के घटने और तीर्थस्थानों के ब्राह्मणो के हाथ में चले जाने से बड़ा असंतोष फैला हुआ था, दूसरे पश्चिम से मुसलमानों के भी आक्रमणों के होने का भय लगा हुआ था। इस समय समुद्र यात्रा का सम्बन्ध ब्रह्मा, स्याम और चीन देश से ही था, इसलिये समुद्र यात्रा भी वर्जित ठहराई गई।

## गौ माता और गंगा माई

संसार में किसी जाति के उत्थान का मूल मन्त्र स्पर्धा है, जिस जाति में अभ्युदय-अभिमान अथवा अज्ञान वश यह गुण नहीं रहता वह अवनति को प्राप्त होती है। स्पर्धा और उत्कर्ष का चोली, दामन का साथ है पर जब स्पर्धा तमोगुणी होकर ईर्ष्या बन जाती है तो उस समय इससे हानि भी होने लगती है पर एक गुण इस में उस समय भी रहजाता है कि वह मनुष्य को आलस्य प्रमाद और अकर्मण्यता में फँसाकर हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठने देती। कर्म ही जीवन का चिन्ह होता है। और गति शून्य होना ही मृत्यु का चिन्ह है। स्पर्धा का वृत्त सत, रज, तम, के पात्र विचार से घटा बढ़ा करता है।

समझदार, कर्मवीर, और गैरतमन्द मनुष्यों में स्पर्धा स्वभाव से ही होती है, इनके विरुद्ध मूर्ख, अकर्मण्य और निर्लज्ज लोगों में इसका सर्वथा अभाव ही होता है। प्रथम

श्रेणी के लोगों में इस गुण को उत्तेजित करने और दूसरी श्रेणी के मनुष्यों में स्पर्धा उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि वे अपनी प्रत्येक अच्छी वस्तु का आदर करना सीखें, और शिक्षकों का यह कर्तव्य है कि इसकी शिक्षा-सामग्री एकत्र करें।

विद्वान् लोगों ने इस विचार से कि कहीं यह विदेशीय बौद्ध जातियाँ अपने देश के प्रधान चिन्हों और बौद्ध मत की बातों के गीत गाते २ एक दिन उसी गढ़े में न आपड़ें, इसलिये यह आवश्यक जान पड़ा कि इनके सामने अपने देश की वस्तुओं का महत्व जताया जावे। इसलिये गौ और गंगा जो इस देश के प्रधान चिह्न थे उनकी प्रशंसा पहिले से भी अधिक बढ़ादी इनके महत्व के साथ धार्मिक और ऐतिहासिक घटना, श्लेष, शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार जोड़कर बड़ा ही मनोहर रूप दे दिया। यद्यपि दार्शनिक दृष्टि और धर्म-तत्व ज्ञान से चाहे मूल सम्बंध कुछ न हो पर जन साधारण और विदेशीय जातियों को अपनाने और जीवन दान देने के लिये इस से अच्छा उपाय कोई भी नहीं है।

मुसलमान लोग जब भारत में आये तो वे भी इनकी स्पर्धा से ऊंटनियों की चाल दजला, फुरात, जेहूँ, सेहूँ, अरब के मरुस्थल और मदीने की कंकरीट की प्रशंसा में आसमान के कुलाबे मिलाने लगे।

प्रसिद्ध देश भक्त रासबिहारी बोस की यह बात बावन तोले पाव रत्ती ठीक है कि जो गौ और गंगा का शत्रु है वह देश और स्वतन्त्रता का शत्रु है।

## श्री शंकराचार्य्य जी की कृति

(१) उपनिषद् भाष्य (२) सूत्र भाष्य

(३) गीता का भाष्य (४) अन्य ग्रन्थ

### विशेष

(१) श्री स्वामीजी के नाम से बहुत से ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, पर इस का निश्चय करना बहुत ही कठिन है कि वे कौन से शंकराचार्य्य के रचे हुये हैं। यह बिल्कुल ही निश्चय हो गया है कि जिस प्रकार ऋषि, मुनियों के नाम पर ग्रंथ रचे गये थे इसी प्रकार स्वामीजी के नाम से भी ग्रंथ रचे गये थे।

(२) वैष्णव मत ने स्वामीजी की कृत्ति पर बड़ा ही प्रभाव डाला था।

## स्वामीजी के पीछे धर्म की दशा

स्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् वाम काल से भी बुरी दशा होगई, स्वामीजी का विचार था कि जैन बौद्धादि मतों के मन्दिरों में वेदों का पठन, पाठन आरम्भ करेंगे, पर दैव की आज्ञा के आगे उनकी कुछ न चली।

स्वामीजी ने जो मठ धर्म प्रचार के लिये बनाये थे राजा लोगों ने उनके शिष्यों को प्रसन्न करने के लिये बहुत सी संपति दे डाली थी। स्वामीजी के शिष्य शंकराचार्य, विजय प्रसन्नता निर्भयता, विषय भोग और पारस्परिक विद्वेष के वश में होकर सारा कार्य्य बन्द कर बठे। कहां तो स्वामीजी ने एक ही लँगोट और कमंडल से भारत वर्ष को हिला दिया था अब उनके शिष्यों ने धर्म की परिभाषा में ऐश्वर्य और राजसी ठाठ को भी सम्मिलित कर दिया, सिद्धान्त को न समझ कर कर्म को बन्धन बताने लगे। अद्वैतवाद के तत्व को न समझ कर उपदेश झाड़ने लगे, कि न किसी का बन्धन है, न किसी की मुक्ति होती है, न कर्ता है न कोई भोक्ता, लोक, वेद सब झूठा भगड़ा है। जिस जाति के नेताओं के मुख से यह फूल झड़ें वह क्या फल पावेगी। परिणाम यह हुआ, कि देश में अत्याचार

बढ़ने लगा, अकर्मण्यता की यह दशा होगई कि बहुत से साधु, सन्त तो अपने हाथ से भोजन भी करना पाप समझते थे।

जब अद्वैतवाद पर अवैदिक और नवीन मत होने के आक्षेप होने लगे तो ऋषि, मुनियों के नाम पर ग्रन्थ रचने लगे इन लोगों ने स्वामीजी के लगाये पौधे की कुछ परवा न की।

कोई २ महाशय तो पहिले से ही धर्म शत्रु होगये थे कि स्वामीजी ने मुझे मठाधीश अथवा प्रधान शिष्य क्यों नहीं बनाया। मुझपर अविश्वास करके अमुक ग्रन्थ क्यों नहीं रचवाया। सनन्दन को वे क्यों प्यार करते थे। पर इनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो धर्म प्रचार में ही मरना जीना जानते थे।

हिन्दू मत में आने से पूर्व सम्पूर्ण मतों के आचार्य्य बड़े २ माल मारते थे, पर हिन्दू मत में ब्राह्मण को उपवास भी करना पड़ता है। लोगों की दाढ़ को तो जीरा लगा ही हुआ था, अब रुपया रोलने की विधि सोचने लगे. शकर खोरा को शक्कर और मूजी को टक्कर, भगवान् की कृपा से स्वामीजी के पांचवें सिद्धान्त का सहारा लेकर अपने २ मतों की मूर्तियाँ उन्हीं मन्दिरों में कुछ हेर फेर के साथ फिर स्थापित करदीं। इस विचार से कि कहीं जनता, मठाधीश और राजा विधर्मी न समझने लगें, ऋषि, मुनियों के नाम से कथायें रच मारीं। दूसरे लोगों ने जब यह देखा तो उन्होंने अपने देवता की बड़ाई और दूसरों की बुराई लिख मारी। जब इस से भी काम न चलता देखा तो वेद मन्त्र भी ढूंढने लगे और जहां किसी देवता का नाम मिला, झट उछल पड़े और अर्थ को बिना समझे उसे पूजा का मन्त्र बना डाला। जिस शैव मत का स्वामीजी ने स्वयं बड़ा तीव्र खंडन किया उसी ने सब मतों को नीचे गिराकर उच्चासन प्राप्त कर लिया था।

## शैव मत ने क्यों उन्नति की

(१) स्वामीजी से पूर्व भी इस मत की संख्या अधिक थी।

(२) राजा लोग शिव के त्रिशूलधारी रूप को बहुत अच्छा मानते थे। इन की देखा देखी सारी प्रजा में इस मत का प्रचार होगया।

(३) शैव मत की बातें अन्य मतों से पुरानी और वैदिक थीं चाहे उनका स्वरूप कुछ था।

(४) वेदों में शिव, तथा देवी के नाम अथवा उनके उपनाम बहुत पाये जाते हैं। कहीं २ तो मंत्र के मंत्रों में शिव का वर्णन पाया जाता है।

(५) शंकर नाम की अपेक्षा से शैवों ने स्वामीजी को भी शङ्कर का अवतार प्रसिद्ध करदिया। जिस से जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

(६) अपने को शङ्कर (शिव) का प्रतिनिधि बनने और राजा लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये मठाधीश भी शैव बन गये।

(७) निवृत्ति मार्ग और शिवजी के जीवन से गहरा सम्बन्ध था।

(८) इस मत में वाममार्गियों, मांस खाने वालों, मद्यपों और नशेबाज़ों के लिये भी पर्याप्त सामग्री थी।

## जैन और बौद्ध आचार्य्य

बौद्धों और जैनियों ने देखा कि मित्र लोग तो हाथ मारगये हम ही बट्टे खाते में रहगये बस उन्हों ने अब वर्द्धमान महावीर के स्थान पर हनुमान महावीर को अपना इष्ट-देव बनाया। २४ तीर्थङ्करों के स्थान पर उलट पुलट कर २४

अवतारों की लिस्ट तैयार की, उनमें कुछ तो वैदिक महापुरुषों के नाम रक्खे, कुछ अपने महापुरुषों के नाम रक्खे, इस २४ की संख्या को जिस प्रकार मच्छली मेंढक के नामों से पूरा किया है वह तो है ही पर सब से अधिक अनर्थ यह किया है कि सारे वैदिक महापुरुषों के पीछे कुछ न कुछ दोष लगा दिया, किन्तु बुद्धजी को सर्वश्रेष्ठ और निर्दोष सिद्ध किया, वह वाराह जिसकी पूजा तिब्बत में अब भी होती है। बौद्ध मत का ही देवता है। हमको इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि भगवान् बुद्ध की बड़ी प्रशंसा की है, पर इस बात का हमको बड़ा दुःख है कि इन लोगों ने हमारे ऋषि, मुनि और पूर्वजों को क्यों कलंकित किया।

पुराणों को देखने से पता चलता है कि वैदिक काल से लेकर ईसाई काल तक की धार्मिक घटनाओं की ये पूरी २ नोटबुक हैं।

## आश्चर्य्य-जनक बात

सारे पुराणों में यद्यपि बहुत सी परस्पर विरुद्ध बातें मिलाई गईं, एक मतने दूसरे मत पर बुरे से बुरे भी आक्षेप किये पर यह बात स्वामी दयानन्दजी से पूर्व किसी भी विद्वान् के मुख से नहीं सुनी और न किसी ग्रन्थ में लिखी देखी कि पुराणों में अमुक मत में प्रक्षेप किये हैं। सब एक स्वर से यही कहते हैं कि पुराण व्यासजी ने बनाये हैं। ग्रन्थों के मिलाने से, परस्पर विरुद्ध बातों का लिखा होना जैन, बौद्ध और यवन काल से सम्बन्ध रखनेवाली छोटी २ घटनाओं से यह स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों को भ्रष्ट अवश्य किया गया है। मान भी लो कि भगवान् बुद्ध का नाम भी व्यासजी ने लिख दिया होगा, पर क्या अपनी बातों का आप खंडन, और ऋषि-मुनियों

को पापी सिद्ध करने वाली बातें भी व्यासजी ने लिख डारी थीं। इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि व्यास जी ने १८ पुराण अवश्य रचे होंगे पर ३२६ पुराण तो उन्हों ने नहीं रचे थे, इस को तो कोई भी नहीं मानता।

भागवत में संकलन के सम्बन्ध में जो वृत्तान्त है उसकी टीका करते हुये श्रीधरजी ने लिखा है कि पहिले ६ पुराण संहितायें थीं जिनको व्यासजी ने लोमहर्षण को दिया था, लोमहर्षण ने अपने ६ शिष्यों को और उन शिष्यों से उग्रश्रवा ने पढ़ा था विष्णु पुराण ३ अंश ६ अध्याय श्लोक १६,१९ के देखने से ज्ञात होता है कि पहिले एक ही पुराण था। अमरसिंह ने ५ वीं शताब्दी के लगभग अमरकोप रचा है उस में पुराणों के जो पाँच लक्षण बतलाये हैं वे इन पुराणों में से बहुत ही थोड़ों में किसी अंश में पाये जाते हैं। जावा और बाली द्वीप के आर्य्य महाभारत युद्ध से पीछे कलंग देश से उठकर गये हैं उन लोगों ने यद्यपि बौद्धों के लहवास से माँस और मूर्त्ति पूजा सीखली है पर आज भी उनमें ब्राह्मण वर्ण के लोग न मांस खाते हैं न किसी देवता की मूर्ति पूजते हैं। महा तत्त्वज्ञानी परमहंस स्वामी आनन्दगिरिजी महाराज श्रीमद्भगवद्गीता की टीका करते हुये पुराणों के विषय में जो कुछ लिखते हैं उसे सभी लोग जानते हैं।

## यह अनर्थ क्यों न रुका

(१) तुलसी दास की रामायण एक नवीन और प्रसिद्ध ग्रंथ है, पर लोगों ने अपनी पुरानी प्रवृत्ति के अनुसार इस को भी भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया था, जब विद्वानों को ज्ञात हुआ तो क्षेपक निकालकर फेंक दिये अथवा अलग कर दिये। इससे जान पड़ता है कि लोगों ने इसी प्रकार अपनी २

प्रवृत्ति के अनुसार नोट चढ़ाये होंगे, और क्योंकि ऐसे नोट-बाज़ प्रायः मूर्ख ही होते हैं इसलिये उन्हों ने विषय धर्म और इतिहास का कुछ भी ध्यान नहीं किया। १० वीं शाब्दी का मुसलमान यात्री अलबेरूनी लिखता है कि हिन्दू लोग ग्रंथों की प्रति लिपि करने में बहुत गड़बड़ करते हैं दो चार बारी के पीछे एक नवीन ग्रन्थ बन जाता है। वह यह भी लिखता है कि पुजारी लोग लोगों के ठगने के लिये बड़े २ करतूत करते हैं। नऊज़बिल्ला मिनहा अर्थात् बचावे खुदा इन लोगों से।

( २ ) पुराने समय में ग्रन्थों का बड़ा अभाव था इसलिये जिस के पास जो ग्रन्थ था वह पड़ा २ नोटबाजी करता रहा, वेदों को छोड़ संसार का कोई ग्रन्थ इस प्रवृत्ति से अछूता नहीं बचा।

( ३ ) इस काल में लोग केवल जीवका मात्र के लिये पढ़ते थे, इसलिये उन्हों ने इस बात की ओर ध्यान भी न दिया।

( ४ ) अपने मत की बड़ाई और दूसरों की बुराई की प्रथा पहिले से चली आती थी।

( ५ ) जिस प्रकार ६ दर्शनों के एकस्वर होने पर भी अज्ञानियों ने ६ मत बना डाले इसी प्रकार पौराणिक बातों को न समझ कर यह झगड़ा मचा डाला।

( ६ ) राजा भोज ने मारकंडेय और शिवपुराण बनाने वालों को दंड भी दिया था। जहां तक अनुमान होता है यह भोज ६ वीं शताब्दी वाला भोज होगा।

( ७ ) सम्भव है रंगरूटों को फांसने के लिये विद्वानों ने ही आज्ञा देदी हो।

( ८ ) यह भी हो सकता है कि जब मठाधीश लोग ही पुराने गढ़े में चले गये होंगे तो वे दूसरे लोगों को भी न रोक सके होंगे।

( ९ ) स्वामीजी के पीछे उनके भक्त तो थोड़े ही रह गये थे और वे भी फिर उन्हीं नकटों में मिलगये होंगे उन्होंने लाटा नमक कर लिया होगा कि जो मन में आवे सो करो और मौज उड़ाओ।

( १० ) लोगों को सब से बड़ा सहारा मनमानी करने के लिये स्वामीजी का पांचवा सिद्धान्त था।

# होली का हल्ला और जगन्नाथजी

इस बात को तो हम अभी दिखला चुके हैं कि लोगों को अपनी २ प्रवृति पूरी करने का अवसर कैसे मिल गया। वाम मार्ग के एक सम्प्रदाय में एक प्रथा यह थी कि अन्त्यज से लेकर ब्राह्मण तक एक दिन एकत्र होते थे, प्रथम बीच में एक मद्य का बड़ा रक्खा जाता था, सब का गुरू घंटाल नग्न खड़ा होकर मटके को हाथ में लेकर कहता था, मैं शिव हूँ, इसी प्रकार एक स्त्री खड़ी होकर कहती थी कि मैं पार्वती हूँ. दोनों यह कहते हुये मद्य पीकर व्यभिचार करने लगतेथे, दूसरे लोग इनके बचे हुये मद्य मांस का प्रसाद पाकर जिस के साथ जी चाहे व्यभिचार करने लगते थे। उनका विश्वास था कि इस भैरवी चक्कर नामक उत्सव में सब एक हैं, कोई किसी के साथ कुछ करो कुछ दोष नहीं वरन् जो न करै वह महा पापी है उसकी कभी मुक्ति नहीं हो सकती कुछ विद्वानों का निश्चय है कि वे सम्पूर्ण धर्म कृत्य, जिनमें निर्लज्जता, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, मादकद्रव्य सेवन और जूठा खाने की प्रथा अभी तक पाई जाती है, वे सब बाममार्ग के ही संस्कार हैं। यों तो दुष्ट लोग धर्म के नाम पर बड़े २ अनर्थ कर रहे हैं हम को उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है, हमको केवल इस विषय पर प्रकाश डालना है कि वर्त्तमान होली ने अपना यह रूप कैसे धारण

किया, जहां तक हमारा निश्चय है वहाँ तक यही समझ में आता है कि होली और इस जगन्नाथजी के तीर्थ का वाममार्ग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है. वरन् जहां स्वामीजी ने छूत छात के नियम बनाये थे वहां लोगों के हृदय से जातीय घृणा निकालने के लिये यह दोनों बातें रक्खी होंगी, आगे जाकर इनका रूप बिगड़ गया।

## तीर्थ-यात्रा का महत्त्व

वैदिककाल में तीर्थ शब्द का आशय यह था कि लोग किसी बड़े विद्वान् से उपदेश वा शिक्षा प्राप्त करने को विशेष स्थानों तथा आश्रमों में जाया करते थे, उस समय यात्रा करने के लिये रेलगाड़ी तो थी नहीं इसलिये धनवानों और राजाओं ने स्थान २ पर और उन तीर्थ स्थानों पर भोजनादि का अच्छा प्रबन्ध कर दिया था, यह कार्य्य वामकाल और बौद्धकाल में आकर ढीला पड़ गया। जब महात्मा बुद्धजी की मृत्यु होगई तो बौद्धों ने उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले स्थानों को तीर्थ बना लिया। स्वामीजी ने वैदिक तीर्थों और बौद्ध तीर्थों को मिलाकर वर्तमान तीर्थ बनाये। आदि में इन तीर्थों का बड़ा अच्छा प्रबन्ध था, धनवानों और राजाओं की ओर से सब बातों का प्रबन्ध किया जाता था पर थोड़े समय के पीछे जब लोगों में पाप बढ़ गया और जैनमत और वैष्णव मत के प्रचार ने इस मत से अश्रद्धा उत्पन्न करदी तो राजाओं और धनवानों ने भी हाथ खींच लिया, अब इन तीर्थों के पंडों, पुजारियों ने धन कमाने के लिये बड़े २ जाल रचने आरम्भ कर दिये। काली कमली वाले बाबाजी का तीर्थ इस बिगड़े हुये समय में भी आदर्श तीर्थ है। वह एक ऐसा तीर्थ है जिस में दान देना आर्य्य समाजी भी कल्याण कारी मानते हैं

यद्यपि इस समय तीर्थों से अनुभव और यात्रा के अतिरिक्त कुछ लाभ नहीं है पर पुराने तीर्थ वास्तव में मुक्ति देने वाले तीर्थ थे।

## त्यौहार और मेले

किसी जाति के पूर्व अभ्युदय को चमकानेवाले उसके त्यौहार और मेले हैं। जिस जाति में जितने अधिक त्यौहार होतेहैं वह जाति भूतकालमें वा वर्त्तमानमें उतनी ही उन्नत हुआ करती है वैदिक काल में तीन प्रकार के तीर्थ थे प्रथम वे त्यौहार जो किसी ऐतिहासिक घटना से सम्बन्ध रखते थे जैसे विजय दशमी और जन्माष्टमी, दूसरे वे त्यौहार जो किसी विशेष संस्कार से सम्बन्ध रखते थे जैसे नवान्नेष्टि यज्ञ ( होली ) और श्रावणी तीसरे वे त्यौहार जो किसी विशेष उत्सव से सम्बन्ध रखते थे जैसे दीपमालिका, देवसेनी एकादशी। जिस में वर्षा काल के आरम्भ होने से पूर्व ऋषि, मुनी और सन्यासी लोग एक स्थान पर आश्रम बनाकर उपदेश देते थे, इसके साथ ही देवठानी एकादशी जिसमें ये लोग अपना आश्रम छोड़कर घूमते फिरते किसी एक स्थान पर जमा हो जाते थे, वहाँ पर जिज्ञासू लोग भी उनका वार्तालाप सुनने के लिये चले जाते थे बस इसीका नाम मेला था।

जैन मत का मूल सिद्धान्त उपासना और संयम था इसके लिये जैन विद्वानों ने कुछ उपवास करने के लिये भी दिन नियत कर दिये थे, स्वामीजी ने इन उपवासों को भी पिछले त्यौहारों में मिला दिया। कहते हैं कि स्वामीजी गुरुकुल में पढ़ा करते थे तो वे एक दिन भिक्षा के लिये एक दीन विधवा के घर चले गये, उसके पास देने को कुछ न था, इसलिये वह रोने लगी कि हाय वेद ब्रह्मचारी वैसे ही

चला जायगा दैवात उसके घर में खड़े हुये पेड़ से एक आँवला गिर पड़ा दीन विधवा ने उठाकर बड़े आदर-भाव से उसे भेंट कर दिया, स्वामीजी ने जब उसके रोकने का कारण पछा तो उनका हृदय फटगया, वे अपने को संभाल न सके और सोचने लगे कि हाय आज ब्राह्मणों की ऐसी दुर्दशा होरही है कि उनकी स्त्रियों को अन्न भी नहीं मिलता। स्वामीजी इस घटना को जन्म भर न भूले और जिस समय त्योहारों की लिए तैयार हुई तो सब से प्रथम उसी घटना की स्मृति में आँवला एकादशी का त्योहार रक्खा गया। यदि आज लोगों के हृदय में कुछ भी ऋषि, मुनियों का अंश होता तो इस घटना से संसार भर में अहिंसा धर्म का प्रचार कर सकते थे। पर करें तो तब, जब उनका खून हो, वे तो उनके शत्रुओं के वंशज हैं।

## असत्य-दोषारोपण

बहुत से विचार-शून्य कहते हैं कि श्रीस्वामीजी ने हिमालय पर्वत से लेकर कन्याकुमारी तक और काठियावाड़ से लेकर जगन्नाथपुरी तक सारे बौद्धों और जैनियों को बलात्कार हिंदू बनाया, उनके मन्दिर और मूर्त्तियां तोड़कर फेंकदीं, जिन लोगों ने उनका मत न माना उनकी खाल खिचवाई गई, उनको नदी में डुबादिया।

यह फुलझड़ी अंगरेज़ विद्वानों और उनके टुकड़खोरों की ओर से इसलिये छोड़ी गई है कि कहीं बौद्ध लोग और वैदिक धर्मी लोग जो मूल सिद्धान्त में एक ही हैं मिलकर ईसाई मतकी समाप्ति न करदें। इन लोगों को याद रखना चाहिए कि यदि सत्य और न्याय कोई पदार्थ संसार में है तो यह तो एक दिन होकर ही रहेगा।

---

## यह सफ़ेद झूट है

(१) नदी में डुबाने की घटना कदाचित् बाइबिल में लिखी होगी अथवा इन दुमदार सितारों की दुम में लिखी होगी। किसी ग्रंथ में तो लिखी नहीं।

(२) हिन्दुओं के जितने मंदिर हैं, सब जैन बौद्ध अथवा अन्य मतों के ही मंदिर हैं। उनको अपवित्र समझकर नहीं तोड़ा।

स्वामीजी ८ वीं शताब्दी में हुये हैं और बौद्ध और जैन मत का जोर १२ शताब्दी तक भी पाया जाता है। इन लोगों की समझ तो देखो जब हिन्दू दाल में नमक के समान थे उस समय तो उन्होंने राज्य बल से काम लिया और जब बौद्ध और जैन नमक के समान रह गये उस समय उनको भी बराबरी के स्वत्व दे दिये।

(४) कभी शंकर दिग्विजय भी पढ़ा है जिस में शास्त्रार्थ की प्रतिज्ञा ही मत त्याग होती थी। जब लोग शास्त्रार्थ में हार गये थे तो उनको अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आप ही मूर्तियां, फेंकनी वा तोड़नी पड़ती थीं। भारतीय लोग पश्चिमी नहीं थे जिनकी प्रतिज्ञा उसी समय रद्दी के टोकरे में पड़जाती है।

(५) बुद्धि के ठेकेदारो! जैनियों की खाल एक पापी जैनी राजा ने ही अपनी स्त्री के कहने से खिचवाई थी। जो जैनियों की किसी बात से चिढ़कर शैव हो गया था।

( ६ ) स्वामीजी यदि जैनियों और बौद्धों के शत्रु होते तो वे उनकी बातों को ही अपने मत में क्यों स्थान देते।

( ७ ) स्वामीजी का तो पांचवा सिद्धान्त ही पिछले मतों का आदर प्रदर्शक था।

(८) आज भी जैनियों और बौद्धों के बड़े २ मन्दिर २ सहस्र वर्ष के उन स्थानों पर मौजूद हैं जहाँ कट्टर हिंदुओं का राज्य लगातार रहा है।

(९) राजा सुधन्वा ने स्वामीजी के प्रचार का प्रबन्ध किया था, वह कैसा धर्मात्मा और दयालु था यह इतिहास से सिद्ध है।

(१०) यदि स्वामीजी कुछ भी जैन वा बौद्ध मत से बैर रखते तो आज हिंदू लोग उनके महापुरुषों को पूज्य दृष्टि से न देखते। यह बात तो इतिहास ही से सिद्ध है कि भारत में धर्म के नाम पर मारकाट से कभी काम नहीं लिया और यों तो परस्पर भी गर्दन कटजाती है।

# परम वैष्णव गुरू भगवान् रामानुजाचार्य्य

## वैष्णव मत की प्रस्तावना

यह बात हम पाठकों के समक्ष प्रकाशित कर चुके हैं कि स्वामीजी के पश्चात् लोग किस खड्डी नाली में गिरने लगे थे, कुछ विद्वानों ने लोगों को इन पापों से बचाने का यत्न भी किया पर वे इसमें सफल नहीं हुये। अन्त में वैष्णव लोग जो केवल विष्णु भगवान् के उपासक थे इन बहदेव वादियों, नास्तिकों और पापी लोगों के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। और इस कार्य्य में बहुत कुछ सफल भी हुये।

वैदिक काल में तो प्रत्येक मनुष्य को धर्म शिक्षा प्राप्त करने की पूरी २ स्वतन्त्रता थी, वाम काल में कुछ बन्धन बनगये थे, पर बौद्ध मत ने सब को फिर स्वतंत्र बना दिया था, स्वामीजी को विवश होकर छूत छात के नियम बनाने पड़े थे, यह बातें

रामानुजाचार्य

पृष्ठ १८८

SHUKLA PRESS, LUCKNOW.

धीरे २ इतनी पकगई कि शूद्रों और विदेशियों को बिल्कुल ही धर्म शिक्षा और धर्मोपदेश से वंचित कर दिया बिचारे दीन शूद्र और विदेशी लोग स्वामी के पीछे २५० वर्ष तक तो अपनी धर्म पिपासा को रोके पड़े रहे पर ६५० ई० के पास जब अत्याचार और पाप ने बहुत ही सिर उठालिया तो शठ कोप महामुनि खड़े हुये, यह महात्मा कंजर जाति से थे, इन्हों ने अपने ग्रंथ द्राविड़ भाषा में लिखे थे जिस से सर्व साधारण सहज ही में धार्मिक बातों को सीख लें। एकेश्वरवाद का प्रचार और छूत छात का खंडन ही इनका उद्देश्य था। शठकोप महा मुनि के कुछ दिन पीछे एक दूसरे महात्मा भंगी जाति में हुये इनका पवित्र नाम मुनिवाहन था। मुनिवाहन के पश्चात् यामुनाचार्य्य हुये यह महात्मा यवन (मुसलमान जाति) से थे, स्वभाव से ही धर्म प्रेमी होने के कारण इनकी श्रद्धा मुसलमानी मत से जाती रही थी. आपकी श्रद्धा वैदिक धर्म में बहुत थी पर उस समय लोग उनको अपने मत में नहीं घुसने देते थे, इसलिये आप शठकोप महामुनि के सम्प्रदाय में जा मिले और मृत्यु पर्यन्त धर्म का प्रचार और पाप का खंडन करते रहे। इन लोगों के प्रचार से धर्म के विषय में खलबली सी पड़गई। जैनी लोगों ने जब देखा कि जिन वालों से शंकर स्वामी ने हराया था, वे तो बिल्कुल ही थोती हैं, बस फिर क्या था फिर प्रचार की तैयारी करदी। वैदिकधर्मी लोगों को बड़ी चिन्ता हुई कि बना बनाया खेल फिर बिगड़ जायगा। इसी बीच परमेश्वर की कृपा से एक महान पुरुष ने वैदिक धर्म की रक्षा के लिये ब्राह्मण के घर जन्म लिया उनका बड़ा ही मनोहर नाम भगवान रामानुजाचार्य्य है।

---

## बचपन और शिक्षा

मद्रास के पश्चिमोत्तर पेरुम्बुर ग्राम में ११११ ई० में रामानुज का जन्म हुआ पिता का नाम केशवाचार्य और माता का नाम कान्तिमती था। आप कुलीन ब्राह्मण थे अतः आपके पिता जी ने कुल प्रथा के अनुसार चोला राज्य की राजधानी कांचीवरम में पुजारियों के पास पढ़ने भेज दिया। वहां वे शैव लोगों की दुर्दशा देखकर बड़े कुढ़ा करते थे। बुद्धि के बड़े ही तीव्र थे इसलिये थोड़े ही दिनों में वैदिक धर्म के साथ २ अन्य मतों के सिद्धान्त भी जान लिये।

एक दिन गुरूजी ने प्रसन्न होकर एक गुप्त मन्त्र बताया और चेतावनी दी कि देखो किसी को भी यह मन्त्र न बताना, यदि ऐसा किया तो तू नरक में जा पड़ेगा।

रामानुज ने पूछा कि महाराज उन श्रोता लोगों को क्या फल मिलेगा, इस पर गुरूजी ने कहा उनको स्वर्ग मिलेगा। यह मंत्र कंठ करके रामानुज एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर चिल्लाने लगे कि अरे दौड़ो मैं मरा २ यह शब्द सुनते ही चारों ओर से मनुष्य आने लगे। लोगों ने बहुत पूछा कि क्या पीड़ा है, पर उन्होंने एक भी उत्तर न दिया और बराबर चिल्लाते रहे जब उनके गुरू और बड़े २ मनुष्य भी आगये तो कहा कि भाइयो मेरे हृदय में यह बड़ी पीड़ा है कि मेरे इतने भाई जो पापों में फंसे हुये हैं किस प्रकार मुक्त होंगे।

लो अब मैं तुमको एक ऐसा मन्त्र सुनाता हूँ जिस से तुम सहज ही में सद्गति प्राप्त कर लोगे, यह कह कर बड़े मधुर स्वर से उस मन्त्र को बार २ गाकर सुनाया, उस मन्त्र में बात तो बड़ी गहरी थी पर गुरूजी उसके तत्त्व को कुछ भी नहीं समझते थे। इस घटना की चरचा दूर २ तक फैल गई। गुरू

जी और रामानुज के बीच जो इस विषय पर वादानुवाद हुआ वह नीचे दिया जाता है, उससे प्रकट हो जायगा कि बचपन ही से रामानुज के भीतर कौन शक्ति काम कर रही थी। होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

## गुरूजी और रामानुजाचार्य्य का वादानुवाद

गुरू—तुम ने गुप्त मन्त्र क्यों बताया।

रामानुज—आप ने मुझे क्यों बताया था।

गु०—हमने तो तेरे कल्याण के लिये बताया था।

रा०—मैंने भी दूसरों के कल्याण के लिये बता दिया।

गु०—हमने तो धीरे २ सुनाया था।

रा०—मेरे सामने बहुत से मनुष्य सुनने वाले थे इस लिये उच्च स्वर से सुनाया।

गु०—हम ने तो धीरे २ इस लिये सुनाया था कि कोई अनाधिकारी न सुन पावे।

रा०—मैं अधिकारी था वा नहीं।

गु०—उस समय तो था पर अब नहीं रहा।

रा०—जब अधिकार बदलने वाला है तो इसका झगडा ही लगाना व्यर्थ है।

गु०—अरे गुरू द्रोही तू भी नरक में पड़ा और मुझे भी नरक का अधिकारी बनाया।

रा०—( चरणोंपर सिर धर कर ) महाराजा आप मेरी ढिठाई को क्षमा करें जब अद्वैतवाद में लोक, वेद बन्धन, मुक्ति कुछ भी नहीं तो आप क्यों दुखी हो रहे है।

इस बात को सुनकर गुरुजी चुप होगये और मनुष्यों का चित्त अद्वैतवाद से फिरने लगा। मन्दिर के पुजारी और

गुरुजी इस नवयुवक की युक्तियों से तो बड़े प्रसन्न होते थे पर जब इसे अद्वैतमत में अश्रद्धालु देखते तो दुखी भी बड़े होते। रामानुज तो संसार में आये ही किसी विशेष कार्य्य के लिये थे, इसलिये उन्होंने लोगों की अप्रसन्नता की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। उनके गुरु यद्यपि उनसे बड़े अप्रसन्न थे पर इनकी बुद्धि और विद्या पर वे भी अपना मान करते थे। एक दिन रामानुजजी ने उपनिषद के किसी मन्त्र का अर्थ पूछा गुरुजी ने वही अपनी खींचा तानी लगाकर ऊंट की तीन टाँग बताई। रामानुजजी ने विनय पूर्वक कहा महाराज आप का अर्थ मेरी छोटी बुद्धि में नहीं आता, वरन् मेरी समझ में तो यह आता है। यह सुनते ही गुरुजी के हृदय में तो पतंगे लगे और बड़े ही लाल होकर बोले अरे पापी तुझे इतने दिनों से धर्म पर चोट करते हुये लहू का घूंट सा पीकर रह जाते हैं और कुछ ध्यान नहीं देते। तू तो अब शंकर की बातों में अशुद्धि पकड़ने लगा जिसने संससार को हिला दिया था। जब उन्होंने देखा कि यहां का राजा भी शत्रु होगया है तो वे द्वार समुद्र ( सारंगा पटम ) में चले गये वहां का राजा वैसे तो जैनी था यह रामानुजजी की शिक्षा और चोला के राजा के द्वेष के कारण ११६३ ई० में वैष्णव होगया, इस राजा का नाम विष्णु वर्द्धन था।

## वैष्णव मत का प्रचार

अब रामानुजाचार्य्य ने यह मन में ठान लिया कि इस नास्तिक मत और पापाचार को नष्ट करके एकेश्वरवाद का प्रचार करूंगा।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे पूरी २ तयारी करने लगे, प्रथम उन्होंने शैवों के प्रधान सिद्धान्त अद्वैतवाद के विरुद्ध

भाष्य लिखने आरम्भ किये। इसी बीच उनको सूचना मिली कि काश्मीर नरेश के पुस्तकालय में एक बहुत अच्छा ग्रंथ है, यदि किसी प्रकार उसको प्राप्त कर लो तो बड़ा अच्छा हो। फिर क्या था अपने चेलों को साथ लेकर चल दिये। कई मास में काश्मीर देश में जा पहुँचे एक दिन अवसर जान राजा से अपनी इच्छा प्रकट की राजा ने उसी समय लाने की आज्ञा दी, पर राज-सभा के पंडितों ने राजा को न देने पर विवश कर दिया। रामानुज ने तो हृदय ही और पाया था, इस पर भी वे निराश न हुये और वहीं डटे रहे। राजकन्या को जब यह सूचना मिली तो उसने ग्रंथ निकाल कर दे दिया और कहा महाराज अभी चले जाओ, नहीं तो ये दुष्ट पंडित फिर कुछ अड़ंगा लगा देंगे। स्वामीजी उसे लेकर अयोध्या में आगये। राज-सभा के पंडितों को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने घोड़े छुड़वा दिये। उन्होंने स्वामीजी से ग्रंथ तो लेलिया पर ब्राह्मण समझकर अथवा दूसरे राज्य में होने के कारण और कुछ न कहा। इस घटना से वे बड़े ही चिंतित हुये, इसी बीच उनका एक चेला कहीं से टहल कर आगया, उसने पूछने पर सब कारण जाना तो कहा महाराज इसकी चिंता न कीजियेगा, यह कह कर एक बड़ा ही सुन्दर और नवीन ग्रन्थ सामने रख दिया, स्वामीजी उसे देखकर बड़े चकित हुये और पूछा पुत्र! यह ग्रन्थ तुमने कहाँ से पाया? शिष्य ने कहा—"भगवन्! रात्रि में जब सब लोग सो जाते थे तो मैं इसको शुद्ध लिखा करता था।" इस बात को सुनकर स्वामीजी उसकी बुद्धि पर बड़े प्रसन्न हुये। और उसे अपने हृदय से लगा लिया।

अयोध्या से प्रचार करते हुये वे फिर कांचीवरम पहुँचे और उपदेश करने लगे शैवों ने रोका तो कहा शास्त्रार्थ करलो अन्त में शास्त्रार्थ होना ठहर गया।

## रामानुज और शैवों का शास्त्रार्थ

शैव०—एक ब्रह्म ही सत्य है, जीव ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है।

रामा०—जब दोनों में कुछ भेद नहीं है तो क्या ब्रह्म भी दुःख सुख सहता है। जब सब एक ही है तो एक को दुख होते हुये सब को दुःख क्यों नहीं होता।

शैव०—यह दुःख सुख कुछ भी नहीं सब भ्रम है।

रामा०—यह भ्रम किसको है?

शैव०—जीव को।

रामा०—जीव ब्रह्म से भिन्न है वा दोनों एक हैं।

शैव०—दोनों एक हैं पर माया की उपाधि करके जो शुद्ध चेतन्न ब्रह्म अपने को भिन्न समझता है वही जीव है।

रामा०—माया, ब्रह्म ही है वा भिन्न पदार्थ है।

शैव०—हम लोग ब्रह्म, ईश्वर, जीव, इनका सम्बन्ध माया, और अविद्या इन ६ पदार्थों को मानते हैं।

रामा०—तो अद्वैत की रागनी कैसी।

शैव०—अन्तिम ५ पदार्थ तो अनादि सान्त हैं, केवल ब्रह्म ही नित्य है।

रामा०—एक किनारे की नदी कभी नहीं हो सकती देखो गीता क्या कहती है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

अर्थात् जो अनादि है वह अनन्त भी है।

शैव०—श्रुति का वचन है, कि ज्ञानी पुरुष सबको आत्म तुल्य देखता है, वह कुछ भेद नहीं देखता।

रामा०—इस श्रुति से तो तुम्हारी बात आप ही कट गई जब देखने वाला और दृश्य दोनों एक ही हैं तो कौन किसको देखता है।

जब लोक वेद ही तुम्हारे मत में मिथ्या है तो उसका प्रमाण ही क्यों देते हो।

शैव०—तो क्या दोनों में कुछ भी अभेद नहीं है यदि यह बात नहीं है तो शंकर स्वामी ने ऐसा क्यों माना है ?

रामा०—वह समय गया, तुम शंकर स्वामी की बात को समझते तो इस नास्तिकता, पापाचार और बहुदेववाद में देश को न फँसा देते। जीव और ब्रह्म में जो अभेद है, उसे स्वामीजी ही समझते थे।

शैव०—अरे लोगो! देखो आप दुरंगी बात करके वाक छल से सबको नीच जाति शठकोप कंजर के मत में लेजाकर सब को अधर्मी बनाना चाहता है। यह सुनते ही मूर्ख लोग उनपर ठोकरों और अपशब्दों की वर्षा करने लगे। विचारे साधु ने धर्म के लिये फूलों की वर्षा समझकर सहन किया।

इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ

## स्वामीजी पर नवीन आपत्ति

शास्त्रार्थ करने के पश्चात् स्वामीजी किसी स्थान पर जा ठहरे। शैवों ने मूर्ख राजा से कहा महाराज यदि इसको दंड न दिया गया तो सब को भ्रष्ट कर डालेगा, जनता का मन धर्म से उचाट होगया बहुत से तो जैनियों को ही धर्म से अच्छा कहने लगे हैं, बहुत से मनुष्य तो यहाँ तक कह रहे हैं कि धर्मा-धर्म कुछ नहीं सब ब्राह्मणों के झगड़े हैं। राजा ने कहा, लोग कहते हैं कि शैव विद्वान् हार गया, यदि यह बात है तो उसको दंड कैसे दिया जा सकता है। ब्राह्मणों ने कहा महाराज अधर्मी लोग ऐसा कहते होंगे, भला जिस सिद्धान्त से शंकर स्वामी ने सारे मतों को परास्त किया, उस सिद्धान्त के मानने वाला कभी हार सकता है। अच्छा महराजजी यद्यपि

आप पढ़े लिखे तो नहीं हैं पर वैसे तो साक्षात धर्मावतार हैं, यदि आप पिछले पन में धर्मात्मा और विद्वान् न होते तो आज राजा ही क्यों बनते, महाराज भला शिव और पार्वती की सनातन पूजा पाप है? महाराज यह तो आपने भी अन्त में सुना होगा कि वह दबी ज़ुबान से अभेद भी मानता है। भला महाराज यह वाक छल नहीं तो और क्या। श्री महाराज आपके पूर्वजों ने तो धर्म के शत्रुओं का नाम भी न छोड़ा आज आपके होते हुये कंजर का चेला सच्चे सनातन धर्म को असत्य कहदे? हाय २ इसी झगड़े में सन्ध्या का समय होगया। राजा ने ब्राह्मण समझकर मृत्यु दंड तो न दिया पर आँखें निकालने की आज्ञा दे डाली। स्वामीजी को भी किसी धर्मात्मा ने यह सूचना देदी थी। इसलिये उनके शिष्य ने स्वामीजी को तो समझा बुझाकर वहाँ से चलता कर दिया और आप रात्रि के समय चांडालों के साथ दंडालय चला गया, वहाँ जाकर पापियों ने दोनों नेत्र निकाल लिये। स्वामीजी अपने पुराने शिष्य वर्द्धमान के राज्य (मैसोर) में पहुंच गये थे। कुछ दिनों पीछे वह अन्धा शिष्य भी द्वार समुद्र (सारंगापटम) में जा पहुँचा। स्वामीजी उसको देखते ही अपने आसन से उठ खड़े हुये और परम वेदनवान होने पर भी उसको गले से लगाकर दुखिया की भाँति रोने लगे। कहते हैं कि स्वामीजी मरते दम तक अपने उस शिष्य का अपने को ऋणी मानते रहे। स्वामीजी उन मनुष्यों में से न थे जो थोड़ी सी बाधा से ही कार्य्य छोड़ बैठते हैं, उनका साहस विपत्ति को को सामने देखकर सहस्र गुणा बढ़ जाता था। एक से वह एक विपत्ति में पड़कर उन्होंने सारे भारतवर्ष में धर्म का डंका बजाया।

धर्म-प्रचार के लिये स्वामीजी ने ७०० मठ बनाये और १७ योग्य शिष्यों को स्वयं आचार्य्य की पदवी दी। स्वामीजी

द्विजों में ही धर्म प्रचार किया करते थे। इसके दो विशेष कारण थे और तीसरा गौण था प्रथम यह कि वे जानते थे कि धर्म का विशेष सम्बन्ध द्विजों से होता है, शूद्र लोगों को इस से कुछ अधिक सम्बन्ध नहीं, वे यह भी जानते थे कि भारतवर्ष में जिस मत को ब्राह्मणों ( द्विजों ) ने नहीं अपनाया वह अन्त में उखड़ ही गया।

दूसरा कारण यह भी था कि लोग वैष्णव मत को केवल इसलिये नहीं ग्रहण करते थे कि वह नीच मनुष्यों ने चलाया है स्वामीजी ने लोगों को न चिढ़ाने के विचार से ही द्विजों में प्रचार किया, वे शूद्रों से कुछ भी द्वेष नहीं रखते थे। वे यह भी जानते थे कि शूद्र लोगों में और ही लोग प्रचार करते रहे हैं। जब द्विज ही इस मत में आजावेंगे तो और लोग कहाँ रह जावेंगे।

तीसरा कारण यह था कि वे मुसलमानों से धर्म रक्षा करने के लिये छूत को कल्याणकारी मानते थे। शूद्रों का सम्बन्ध मुसलमानों से भी रहता था। इसलिये इस विषय में वे चुप रहे। स्वामीजी की शिक्षा पर चलने वाले श्री वैष्णव कहलाते हैं। स्वामीजी की मुक्ति ११०० ई० के लगभग हुई थी। स्वामीजी ने यद्यपि एकेश्वरवाद में शठकोप आदि महात्माओं के ही मूल सिद्धान्त का प्रचार किया पर उनके और स्वामीजी के दृष्टि कोण में बड़ा भारी अन्तर था। स्वामीजी अपने समय के अनुपम दार्शनिक विद्वान् थे।

## स्वामीजी के सिद्धान्त

(१) वेद स्वतः प्रमाण हैं। उपनिषदादि भी वेद ही हैं।

(२) ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों पदार्थ नित्य हैं। इनमें भेद भी है और अभेद भी।

(३) तिलक, शंख, चक्र, गदा, पद्म, के चिन्हों को धारण करने से सद्गति मिलती है।

(४) ईश्वर साकार भी है और निराकार भी है वह भक्तों के उद्धार के लिये और प्राणीमात्र के कल्याण के लिये अवतार लेता है। इन अवतारों की मूर्तियों को पूजना भी उपासना है।

(५) छूत छात और आचार, विचार, से रहना ही धर्म का मूल है।

# सिद्धान्तों पर गहरी दृष्टि

## प्रथम सिद्धान्त

इस सिद्धान्त पर हम पूरा २ प्रकाश डाल चुके हैं आवश्यकतानुसार आगे भी कुछ लिखेंगे।

## दूसरा सिद्धान्त

यह सिद्धान्त बिल्कुल वैदिक सिद्धान्त है पर इस सिद्धांत में कुछ शब्दों का फेर रखदिया था जिस से आगे चलकर लोग फिर भ्रम में पड़ गये। इस शब्दों के फेर में भी वैसा ही रहस्य था जैसा कि शंकर स्वामी के सिद्धान्तों में था। यह बात मोटी समझ के मनुष्य नहीं समझ सकते कि इन तीनों पदार्थों में भेद और अभेद किस प्रकार है। स्वामीजी के समय में लोग उस मनुष्य को बिना सोचे समझे नास्तिक और वेद विरोधी समझते थे जो ईश्वर के सिवा किसी भी पदार्थ को सत्य मानता था। जिस प्रकार वर्त्तमान भारतीय मुसलमान। स्वामीजी ने इस विचार से कि पाखंडियों को नास्तिक कहकर लोगों को अकारण ही उभारने का अवसर न मिले यह शब्द फेर रख दिया था। यह शब्द फेर प्रत्यक्ष में तो सिद्धान्त में परस्पर विरुद्ध बातों को प्रकट करता है। पर समझदार के

लिये बड़ा लाभदायक है। क्या यह तीनों पदार्थ, नित्यता में एक नहीं हैं, क्या जीव और ब्रह्म कुछ बातों में एक नहीं हैं, क्या जीव प्रकृति कुछ बातों में समान नहीं हैं?

## तीसरा सिद्धान्त

शंकर स्वामी के प्रकरण में हम यह बात दिखला चुके हैं कि जन सधारण में किसी बात का प्रचार करने के लिये किस युक्ति से काम लिया जाता है। बुद्धिमान किसी बात को आवेश में आकर नहीं मान लेता, जब तक कि वह बात की तह तक न पहुँच जावे और मूर्ख किसी बात को उस समय तक नहीं मानता जब तक उस से कुछ लाभ न हो। विद्वानों ने इसी प्रवृत्ति का सदुपयोग करके संकल्प, गोत्र, यज्ञोपवीत, गंगास्नान आदि बातों का महत्व जताकर आज तक धर्म की रक्षा की और धूर्तों ने लोगों की इसी प्रवृत्ति से लाभ उठाकर मियाँ मदार और कब्रों को पुजवाकर खूब उल्लू सीधा किया। स्वामीजी ने तो ईश्वर, जीव, प्रकृति के चिह्न-स्वरूप तो तिलक नियत किया। और शंख चक्रादि के चिह्न ईश्वर (वैदिक महापुरुष) के प्रति अपनी भक्ति दिखलाने के लिये नियत किया। इन चिह्नों की जो बहुत ही प्रशंसा की है वह केवल इसलिये की है कि जन साधारण इनकी ओर अधिक ध्यान दें।

विद्वानों के लिये यद्यपि इन बातों की कुछ भी आवश्यकता नहीं है, पर जनता तो अपने नेताओं के पीछे ही चलती है, इसलिये विद्वानों के लिये भी आज्ञा देदी।

जब वैदिक-धर्मी लोग शिखा, सूत्र को बुरा नहीं समझते, मुसलमान दाढ़ी को बुरा नहीं जानते और ईसाई गले में फाँसी तक के चिह्न को अच्छा समझते हैं। तो वैष्णवों के चिन्हों पर हास्य करना अज्ञान नहीं तो क्या है। पक्षपात नहीं तो क्या है।

## चौथा सिद्धान्त

यह सिद्धान्त बड़ा गम्भीर है। इसके विषय में जब तक हम जड़ से न उठावेंगे तब तक समझ में आना बड़ा कठिन है। इस सिद्धान्त पर लोगों ने व्यर्थ ही झगड़ा मचा रक्खा है। दूसरे सिद्धान्त में लोग दो परस्पर विरुद्ध बातें बताते थे इस में चार हैं। (१) निराकार (२) साकार (३) निराकार उपासना (४) साकार उपासना। जो मनुष्य देश, काल और पात्र करके कुछ भेद नहीं मानता वह इस विषय को समझने का कभी स्वप्न में ध्यान न लावे। उसका सारा परिश्रम पानी की लकीर हो जावेगा। आँखें सदा दूसरों को तो देखा करती हैं पर आपको नहीं देखतीं। इसी प्रकार मनुष्य भी दूसरों की बुराई देखा करते हैं, वे अपनी नहीं देखते।

## साकार और निराकार ईश्वर

हमारे हृदय में इस सिद्धान्त को पढ़ते ही यह विचार उठने लगता है कि क्या ईश्वर जल के समान कोई पदार्थ है जो भाप बनकर सूक्ष्म भी बन जाता है। और बर्फ बनकर स्थूल भी होजाता है। आर्ष-ग्रंथों में तो यही लिखा है कि वह परमेश्वर एक रस है। स्वामीजी से पूर्व किसी ईश्वर वादी ने ऐसा नहीं कहा इसीलिये किसी २ भाई के हृदय में यह भी विचार उत्पन्न हो सकता है कि यह उनका मनगढ़न्त सिद्धान्त है पर एक महापुरुष के प्रति यही विचार पाप का मूल है। वास्तव में विद्वान् के लिये बड़ी अच्छी बात है। परमेश्वर को जानने के लिये उसका ध्यान दो रूपों से किया जाता है।

प्रथम सगुण रूप वह है जिस में परमेश्वर का ध्यान गुणों सहित किया जाता है जैसे दयालु न्यायकारी, सर्वज्ञ, आनन्द

स्वरूप। अर्थात् ध्याता, अपने विचार में इस बात को धारण करता है कि परमेश्वर में दया, न्याय, सर्वज्ञता और आनन्द के गुण पूरे २ हैं इन बातों को हृदय में बसाने के लिये कुछ कठिनाई नहीं है क्योंकि साधारण बुद्धि का मनुष्य भी दया और न्याय आदि पदार्थों को जानता है।

परमेश्वर के निर्गुणरूप में उसका ध्यान कुछ गुणों से रहित करके करना पड़ता है जैसे अजर, अमर, अनादि, अनन्त अरूप अखंडित आदि। साधारण बुद्धि का मनुष्य क्या जाने कि जो पदार्थ अठायु, मृत्यु, आदि, अन्त, रूप, खंड नहीं रखता वह क्या अद्भुत पदार्थ है। कभी २ तो लोगों को ऐसे पदार्थ के होने में भी सन्देह हो जाता है। इसी लिये ऋषियों ने सन्ध्या में जितने मंत्र रक्खे हैं वे सगुण रूप के ही रक्खे हैं। क्योंकि परमेश्वर के निर्गुण नामों की उपासना केवल योगी ही कर सकता है।

## गुण ही आकार होता है

सगुण का अर्थ साकार और निर्गुण का अर्थ निराकार जो किया जाता है वह ठीक है। इस बात को सभी दार्शनिक विद्वान् जानते हैं। कि गुण से भिन्न गुणी कुछ भी नहीं है या यों कहना चाहिये कि गुण से भिन्न आकार कुछ भी नहीं है। जहां दाह नहीं वहाँ अग्नि कहां। जहाँ मिठास नहीं वहाँ मिश्री कहाँ। जिस प्रकार रगड़ से अग्नि को प्रकट करके प्रत्यक्ष किया जाता है इसी प्रकार उपासना की रगड़ से ईश्वर प्रकट होता है।

## आकार का विवेचन

साधारण मनुष्यों के हृदय में यह बात समाई हुई है कि दृश्य पदार्थ में ही आकार होता है अदृश्य पदार्थ निराकार होता

है, यों अपने प्राकृतिक व्यवहार में चाहे ऐसा ही समझने से कार्य चलता हो पर मूल में यह बात नहीं है। दार्शनिक विद्वान् जानते हैं कि आकार सूक्ष्म भी होता है। सब मनुष्य आकाश को दृश्य न होने से निराकार मानते हैं पर बात यह नहीं है। कोई भी प्राकृतिक पदार्थ निराकार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रकृति स्वयं सत, रज, तम; गुण युक्त है। जहाँ गुण है वहाँ आकार अवश्य मानना पड़ेगा। परमेश्वर वा चेतन्न पदार्थ इन गुणों से परे हैं इसलिये वे ही निराकार कहे जा सकते हैं। अब हृदय में प्रश्न उठता है कि जब परमेश्वर त्रिगुणातीत है तो फिर उसमें जो दया, न्याय आदि गुण बताये वे किस प्रकार ठीक हैं। बात यह है कि वास्तव में आत्मा के इस शुद्ध, चेतन्न स्वरूप की अपेक्षा तो परमेश्वर में दयालुता आदि का कोई भी गुण नहीं है जिसमें कि उस पर प्रकृत्ति का लेश मात्र भी आवरण नहीं चढ़ा है। अर्थात् अद्वैतवाद की परिभाषा में वह जीव नहीं हुआ है। क्योंकि जब मोहन कोई पाप ही नहीं करता उसको किसी पदार्थ की आवश्यकता ही नहीं तो वह सोहन के दयालुता और न्याय आदि गुणों से क्या सम्बन्ध रखता है। अर्थात् मोहन की अपेक्षा सोहन में यह गुण नहीं कहे जा सकते। अब दूसरी ओर ध्यान दीजिये रोहन नाम का एक बालक है जो अल्प शक्ति है। उस से कोई आवश्यक कार्य्य नहीं होता, वा किसी दूसरे बालक ने उसके कार्य्य में रुकावट डाल दी। अब उसके दयालु और न्यायकारी गुरू सोहन में उसके कार्य्य में सहायता आकर देनी आरम्भ कर दी, तो वही सोहन अब दयालु हो गया, यदि सोहन दूसरे बाधक बालक को दंड भी दे डाले तो वह न्यायकारी भी हो जावेगा। संसार में दो प्रकार के गुण होते हैं। प्रथम जातीय गुण जो गुणी से कभी विलग ही नहीं हो सकते जैसे कि अग्नि से

दाह गुण। दूसरे गुण वे होते हैं जो विलग भी हो जाते हैं। जैसे वस्त्र से पीला रंग जहाँ जातीय गुण होते हैं वहाँ गुण और गुणी एक ही होते हैं जैसे मिश्री और मीठा दो बात नहीं हैं पर कृत्रिम गुण और गुणी दो भिन्न पदार्थ ही होते हैं जैसे पीलापन और वस्त्र एक कभी नहीं होते। एक ज्ञानी गृहस्थ में रहता हुआ भी उसमें लिप्त न होने के कारण सन्यासी अथवा ब्रह्मचारी भी कहा जाता है। एक जीवनमुक्त योगी शरीर से मोह न रखने से विदेह भी कहा जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर (ब्रह्म) जीव और प्रकृति की उपाधि (सम्बन्ध) से होने वाले गुण, कर्म और स्वभाव में लिप्त न होने के कारण सगुण और निर्गुण दोनों नामों से याद किया जाता है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि परमेश्वर निराकार भी है और साकार भी। परम पिता के दोनों नामों में कौन सा नाम प्रधान है यही एक विचारणीय बात और रह जाती है। पर बात सीधी सी है, जिस प्रकार उस निर्लेप मनुष्य को ज्ञानी लोग सन्यासी ही समझते हैं और जनता उसको गृहस्थ ही समझती है, इसी प्रकार ज्ञानी लोग परमेश्वर को निर्गुण नाम से ही याद रखते हैं, और जन साधारण के लिये वह सगुण ही है। अपने २ पात्र की अपेक्षा दोनों ही बातें ठीक हैं।

## भेद ईश्वर और परमेश्वर का

(१) ईश्वर (जीवनमुक्त) में अल्पज्ञता आदि गुण प्रधान (जातीय) होते हैं और सर्वज्ञता आदि गुण अप्रधान (कृत्रिम) होते हैं।

(२) परमेश्वर में इसके विपरीत गुण समझने चाहिये पर विचार पूर्वक नहीं तो मनुष्य गढ़े में जा पड़ेगा।

(३) जीवन मुक्त पुरुष इस अपने शरीर का पूर्ण स्वामी होकर आनन्द में रहता है और कुछ जीवों का कल्याण करता है।

(४) परमेश्वर इस अखिल ब्रह्माण्ड का पूर्ण स्वामी होकर आनन्द में रहता है, और सारे जीवों का कल्याण करता है।

(५) ईश्वर के सारे अधिकार परमेश्वर के अधीन होकर कार्य्य करते हैं।

(६) परमेश्वर के सारे कार्य्य अपने परम शुद्ध चेतन्य रूप (ब्रह्म) के अधीन रहते हैं।

नोट—यद्यपि परमेश्वर और शुद्ध चेतन्य रूप दो बातें नहीं हैं पर वेदान्त शास्त्र की परिभाषा में उसे ब्रह्म ही कहते हैं।

## चेतन्य ही निराकार है

जब तक जीव पर प्राकृतिक आवरण चढ़ा रहता है उस समय तक सूक्ष्म शरीर रखने के कारण भी वह निराकार नहीं कहा जा सकता। पर जिस समय भौतिक सूक्ष्म शरीर भी नष्ट होकर शुद्ध चेतन्य स्वरूप हो करके मुक्ति प्राप्त कर लेता है तो उस समय उसे निराकार कह सकते हैं।

हमारे समझदार पाठकों को इस में यह शंका हो सकती है कि जैमिनि तो मुक्ति में भी सूक्ष्म शरीर मानते हैं। तो उस अवस्था में भी आत्मा को निराकार नहीं कह सकते। उसके उत्तर में हम यह कहकर छूटे जाते हैं कि पाराशर तो नहीं मानते जो उनके गुरु के भी पिता हैं इतना कहकर हम तो साफ बचे जाते हैं, पर इसमें विधर्मी लोग दे शास्त्रों की भांति अपनी अन्ध विश्वास की बांसुरी में मतभेद का राग अलापकर विचार शून्य और फैशन-परस्त पाश्चात्यवायु के मारे लोगों को मोहकर अपने भ्रमजाल में पकड़ कर ले जावेंगे, इसलिये हाथ के हाथ इस कुफ्र को भी तोड़े देते हैं।

# मूर्खों के लिये मतभेद हैं

जिस प्रकार ६ शास्त्रों में कुछ मतभेद नहीं है केवल भिन्न विषय लेकर एक ही बात को सिद्ध किया है इसी प्रकार पाराशर और जैमिनि का विषय समझना चाहिये। जिस मनुष्य को वेदान्त, शास्त्र का कुछ भी ज्ञान है वह सहज में हमारे विवेचन को समझ लेगा।

# शरीर और अवस्था

| शरीर | अवस्था |
|---|---|
| (१) स्थूल | (१) जाग्रत |
| (२) सूक्ष्म | (२) स्वप्न |
| (३) कारण | (३) सुषुप्ति |
| (४) शक्ति | (४) तुरीय |

## दोनों का सम्बन्ध

(१) जाग्रत अवस्था में चारों शरीरों से सम्बन्ध रहता है।

(२) स्वप्नावस्था में सूक्ष्म, कारण और शक्ति रूप शरीर से सम्बन्ध रहता है।

(३) सुषुप्ति अवस्था में कारण और और शक्ति रूप शरीर से सम्बन्ध रहता है।

(४) तुरीय (मुक्तावस्था) में केवल शक्ति रूप शरीर (अत्यन्त ही सूक्ष्म-निराकार) शरीर से सम्बन्ध रहता है।

# विवेचन

स्थूल, सूक्ष्म शरीर तो शुद्ध प्राकृतिक शरीर है अब क्योंकि जीव एक ऐसा पदार्थ है जो जड़ता में प्रकृति से और चेतनता में ब्रह्म से मिलता है इसीलिये जिस विद्वान् का विषय केवल सांसारिक (प्राकृत-अवस्था) है वह मुक्ति का

विवेचन करते समय कहता है कि सूक्ष्म अर्थात् दूसरा प्राकृतिक शरीर और कारण मुक्ति में नहीं रहता पर जिस विद्वान् का विषय ही आत्मिक है वह कहता है कि मुक्ति में दवे हुये कारण और शक्ति के योग से जो एक अत्यन्त ही सूक्ष्म शरीर बनता है वह अवश्य रहता है, यदि वह न रहे तो मुक्ति का आनन्द ही कौन भोगे। यह विषय इतना मनोरंजक है कि कहने में भी नहीं आ सकता। इस शरीर में जो दवा हुआ कारण है वह जड़ता का भाग है। और शक्ति जो है वह चेतन्नता का भाग है। प्रातः स्मरणीय, ब्रह्म कुल भूषण भगवान् शंकराचार्य्य ने अपनी सामयिक आवश्यकता के लिये प्रभु की प्रेरणा से इस दवे हुये कारण शरीर को न मान कर उसे नष्ट हुआ इस विचार से मान लिया था कि यदि कारण को किसी भी अवस्था में मानेंगे तो फिर मुक्ति से लौटना मानना पड़ेगा जिसका फल यह होगा कि हमारा सारा खेल बिगड़ जावेगा। और बात को यदि दूसरी दृष्टि से देखा जावे तो ठीक भी जान पड़ती है, जो पदार्थ हो और उस समय अपने कुछ प्रभाव न रखता हो वह न होने के बराबर है। पर भगवान् रामानुजाचार्य्यजी का समय वह समय नहीं था इसलिये उन्होंने इस बात को प्रथम दृष्टि ही से देखा।

## परमेश्वर के शरीर

उपनिषद् और गीता में इस सकल ब्रह्माण्ड को परमेश्वर के विराट रूप के नाम से स्थूल शरीर कहा है। अब विचार यह करना है कि उसके अन्य तीन शरीर भी हैं वा नहीं। शरीर और अवस्था का साथ है, अर्थात् शरीर के साथ अवस्था और अवस्था के साथ शरीर का सम्बन्ध है। वर्त्तमान

जगत को नियम पूर्वक चलाने की दशा में मानो परमेश्वर जाग्रत अवस्था में है। जब प्रलय होनी आरम्भ होती है, प्रलय से सृष्टि होनी आरम्भ होती है वही मानो स्वप्नावस्था है। प्रलय की अवस्था ही मानो सुषुप्ति अवस्था है और जब वह व्यापक परमेश्वर लिप्त न होने के कारण इन सब झगड़ों से अलग अपनी शक्ति सहित अपने को आनन्द-स्वरूप अवस्था में देखता है तो वही मानो उसकी तुरीयावस्था है।

## अलङ्कार

पुराणों में इन अवस्थाओं को बड़ी मनोरञ्जक गाथाओं के रूप में दिखलाया है। इस चौथी अवस्था को इस प्रकार समझाया है कि वहाँ परमेश्वर को विष्णु भगवान का नाम दिया है, उसकी कांति-मय शक्ति को लक्ष्मी अनन्त प्रकाशावस्था को क्षीर सागर, और परमेश्वर की भक्ती के प्रति कोमल और सुन्दर दयालुता को कमल बताया है और इन तीन अवस्थाओं के झगड़े से अलग रहने को ही शयन करना कहा गया है। समझाने के लिये परमेश्वर को एक जीवन मुक्त योगी से उपमा दी जा सकती है। जिस प्रकार योगी अपने तीनों शरीरों में भी है और इन से अलग भी, इसी प्रकार परमेश्वर सृष्टि की इन तीन अवस्थाओं में भी है और इन से अलग भी।

जिस प्रकार परमेश्वर सृष्टि रचकर जीवों का कल्याण करता है इसी प्रकार महानुपुरुष भी शरीर धारण करके संसार का उद्धार करते हैं। ऐसी ही समानता को देखकर विद्वानों ने दोनों को एक ही कह दिया है। और परमेश्वर के सिवा मुक्त पुरुष को भी ईश्वर कह दिया है इसी परिभाषा का प्रयोग कृष्ण भगवान्, व्यास २४ तीर्थङ्कर, भगवान् बुद्ध, शंकर स्वामी और रामानुजादि ने भी किया है।

स्वामी रामानुजाचार्य्यजी ने इतनी बात और कह दी कि ईश्वर साकार भी है और निराकार भी। वह भक्तों के कल्याण के लिये अवतार भी लेता है।

उनका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि सर्व व्यापक परमेश्वर छोटे से गर्भ में कूदकर आ बैठता है। इसी झूठे विचार ने स्वामीजी को अपयश लगाया है।

विद्वानों ने ठीक कहा है कि मूर्खों के संग से लाल भी पत्थर ही हो जाता है। बात कैसी गहरी थी और लोग कहाँ गढ़े में जा पड़े।

## नाम का क्या महत्त्व है

वैष्णव मत में नाम की बड़ी महिमा बताई गई है, और गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो नाम को ही सब कुछ कह दिया है। धर्म शास्त्र में तो यहाँ तक आज्ञा दी है कि यदि किसी कन्या का नाम बुरा हो, तो उसके साथ कभी विवाह मत करो। इस का आशय यह भी है कि कोई मनुष्य अपने बच्चों का नाम बुरा न रक्खे। सम्राट नेपोलियन एक बार अपने शत्रु की अतुल सेना देखकर साहस हीन होगया था, पर ज्योंही उसको अपने नाम का ध्यान आया तो उसके हृदय में. वीर-रस की तरंग उठने लगीं। और थोड़ी सी सेना से ही शत्रु का पराजय कर दिया। चित्तौड़ गढ़ के राना केवल सूर्य्यवंश के नाम पर ही जान को हथेली पर धरे रहते थे। गुरुगोविन्दसिंहजी इस नाम के महत्त्व को भली प्रकार जानते थे, उन्होंने जहाँ सिक्खों में जीवन दान देने के अनेक उपाय किये उनमें सब से प्रथम नाम को जानकर ही, सिक्खों का नाम सिंह रख दिया था। आप के सामने दो मनुष्य समान आयु और बल वाले खड़े हैं, आप को पूछने पर जब यह ज्ञात होगा कि इन में से एक मनुष्य राजपुत्र है, तो उसके प्रति आपके हृदय में और ही कुछ भाव

उत्पन्न हो आवेंगे। इसका कारण यह है कि नाम के साथ ही झट उसके गुण भी याद आ जाते हैं। यदि मनुष्य किसी अच्छे पदार्थ का नाम ही जानता हो तो यह होगा कि एक दिन उसके गुणों के जानने का भी विचार उसके हृदय में अवश्य उठेगा। बच्चों को प्रकृति इसी नियम के अनुसार शिक्षा देती है।

## भक्ति-मार्ग और ज्ञान-मार्ग

एक विद्यार्थी गणित का अपूर्व पंडित होना चाहता है, वह इसलिये कि कहीं उसको गणित का प्रोफेसर बना दिया जावे; विद्यार्थी बहुत ही परिश्रम करता है पर उसे गणित के सिद्धान्तों से कुछ भी प्रेम नहीं है वह केवल नौकरी के लिये विवश होकर गणित सीख रहा है। यह विद्यार्थी कभी गणित का पूर्ण पंडित नहीं हो सकता, इसके विरुद्ध एक दूसरा विद्यार्थी है, जो परिश्रम तो अधिक नहीं करता पर उसको गणित का बड़ा भारी प्रेम है, यह विद्यार्थी अवश्य पंडित हो सकता है। मनुष्य को जब किसी विषय से प्रेम हो जाता है तो वह सहज में उसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान भी सीखने से बहुत कठिनाई से ही कुछ आ सकता है, पर प्रेम (भक्ति) से सहज में ही प्राप्त हो सकता है।

## वैष्णव मत की उपासना

स्काउट मास्टर, अपने बच्चों में यह बात उत्पन्न करने का यत्न करता है कि वे वर्त्तमान सामग्री से अपना कार्य्य सिद्ध करना सीख जावें। महान पुरुषों में यह गुण पूर्ण रूप में बिना सिखाये ही स्वाभाविक होता है। क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें किसी विशेष उद्देश्य के लिये उत्पन्न किया है।

शंकर स्वामी ने ३६० ईंटों से जिस सुन्दर धर्म मन्दिर को बनाया था, कुछ समय के पीछे अज्ञान के भूकम्प ने उसे गिराकर ७२० टुकड़े कर डाले, रामानुजजी ने देखा कि यदि इन टुकड़ों में ईश्वरोपासना का सीमेन्ट लगा दिया जावे तो यह मन्दिर फिर भली प्रकार तैयार हो सकता है। पर इसमें एक बड़ी कठिनाई थी, मन्दिर के उन भागों के लिये तो यह सीमेन्ट बड़ा उपयोगी था, जिधर ज्ञान त्रिवेणी तरंगे मार रही थी, पर उन भागों में यह सीमेन्ट बालू के गारे का काम देगी जिधर अज्ञान की धूल उड़ रही हो। इसलिये अब उन्होंने यह विचार किया कि इस मन्दिर को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की बड़ी २ शिलाओं से बनाया जावे। ज्ञान त्रिवेणी की ओर तो यह सीमेंट लगाया, और दूसरी ओर ७२० टुकड़ों को कूट छानकर, वैदिक महापुरुषों का कीर्ति रूपी स्वच्छ कली मिश्रित और उसमें भक्तिरस मय ईश्वरोपासना का चिपकदार मसाला तथा त्रिवेणी का जल मिलाकर, बड़ा ही पुष्ट चूना (गारा) बनाया, और उसको काम में लाकर ७०० खम्भों पर यह वैष्णव धर्म का विशाल मन्दिर खड़ा कर दिया।

अर्थात् जब स्वामीजी ने बहुदेव वाद के कारण लोगों को सिर फोड़ते हुये देखा तो ईश्वरोपासना के द्वारा एक करना चाहा, पर ईश्वरोपासना संसार के अन्य उत्तम पदार्थों की भाँति एक ऐसा पदार्थ था, जो पात्रों (ज्ञानियों) को लाभ दायक और कुपात्रों को हानिकर भी हो सकता था। उन्होंने सोचा कि समझदार मनुष्यों के लिये तो यह वेद और उपासना पर्याप्त है, पर इन मूर्खों, बाह्य पदार्थों के पूजकों का क्या बनाऊं। यह तो किसी अदृश्य पदार्थ पर विश्वास ही नहीं करते।

स्वामीजी ने अब देखा कि इन मूर्खों में तो इन जड़ मूर्त्तियों के प्रति इतनी श्रद्धा है कि विद्वानों में ईश्वर के प्रति भी नहीं

है। वे इस बात को भी भली प्रकार जानते थे कि कोई मनुष्य किसी विषय में कितना ही अज्ञानी हो, पर जब उसको उस विषय से प्रेम हो जाता है तो उसको शनैः २ प्राप्त कर ही लेता है। अब उनके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि किसी प्रकार परमेश्वर की भी मूर्ति बन जावे तो बड़ा अच्छा हो पर वेद तो इसके विरुद्ध यह कहता था कि—

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद् यशः।

इसके ध्यान में आते ही वे बड़े सोच में पड़ गये पर थोड़ी ही देर में जब उनका ध्यान श्रुति और पुराणों के उन वचनों पर गया जिनमें विष्णु को श्री सहित बताया गया है तो वे कुछ संतुष्ट हुये, अब उन्होंने निश्चय कर लिया कि बस अलङ्कारों में वर्णित ईश्वर रूप की ही मूर्ति बनानी चाहिये, अभी यह निश्चय ही करने पाये थे कि झट जैनियों के प्रचार की दुःख भरी घटना सुनाई दी, जैनी लोग यह कहकर लोगों को अपने मत में फिर मिलाने लगे थे कि यह ब्राह्मण निमंत्रण उड़ाने के मारे तुमको उल्लू बना रहे हैं, भला यह तो सोचो कि जैसा ईश्वर वे बतलाते हैं वैसा कभी हो भी सकता है। अब स्वामीजी ने सोचा कि यह तो अद्वैतवाद के खंडन से बड़ी हानि हुई, और यह जैनी अवश्य अपने प्रचार में सफल होंगे अब यदि वैदिक परमेश्वर को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर वैदिक महापुरुषों की मूर्तियों को परमेश्वर मानता हूँ तो सारे वैदिक धर्मी विद्वान् कभी इस बात को स्वीकार न करेंगे और यदि केवल वैदिक परमेश्वर को रखता हूँ तो यह बहु संख्यक मूर्ख जैनियों के फंदे में जा फसेंगे, स्वामीजी की उस समय बिल्कुल राजा दशरथ की दशा थी। अर्थात्—

धर्म सनेह उभय मत घेरी, भई गत साँप छछूंदर केरी।

अब स्वामीजी को समय ने विवश कर दिया कि वे दोनों ही बातें रक्खें। यह बात अभी हृदय में बैठने भी न पाई थी कि झट उन ईश्वरों (महापुरुषों) का ध्यान भी आगया जो परमेश्वर के समान संसार का उद्धार करते हैं और जिन में परमेश्वर के सारे गुण यहाँ तक समा जाते हैं कि वह अपने को परमेश्वर से भिन्न न समझ कर श्रीमद्भगवद्गीता में यह कहते हैं कि:—

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

स्वामीजी ने अब निश्चय कर लिया कि परमेश्वर की कल्पित वेद विरुद्ध मूर्ति बनाने से तो यही अधिक अच्छा होगा कि उन महापुरुषों की मूर्तियाँ बनाई जावें। पर ऐसे महापुरुष जिनके साथ उनकी श्री (स्त्री) भी थी दो ही थे एक रामचन्द्र, दूसरे कृष्ण, बस अब स्वामीजी ने इन्हीं उभय दम्पति की मूर्तियों की पूजा अपने मत में रक्खी। और यह सिद्धान्त रक्खा कि ईश्वर निराकार भी है और साकार भी वह संसार के उद्धार के लिये अवतार भी धारण करता है। इस विषय को और भी मनोहर और प्यारा रूप देने के लिये वैष्णव विद्वानों ने परमेश्वर और ईश्वर दोनों पर घटने वाली बहुत सी गाथायें इन महापुरुषों की मूल गाथाओं के आधार पर बनाई। इन से दो लाभ थे, प्रथम तो परमेश्वर के प्रति भक्ति भाव बढ़ता था, दूसरे वैदिक महापुरुषों के आचरण की शिक्षा भी मिलती थी।

इस विषय में वैष्णव लोग पिछले सब मतों से बाज़ी ले गये।

देश, काल और पात्र, का ध्यान न रखने वाले सबको एक ही डंडे से हाँकने वाले भाई इस पर यह आक्षेप कर सकते

है कि इस प्रकार परमेश्वर का रूप तो एक झमेले में पड़ गया, बात बिल्कुल ठीक है पर समय के चक्र को क्या किया जावे। यदि इसी अकड़ में ब्राह्मण लोग बैठे रहते तो एक भी गो माता का भक्त संसार में दिखाई न देता। चाहे वे कुछ ही समझे बैठे हों पर इसी की कृपा से आज २२ करोड़ मनुष्य वेद और ईश्वर के नाम पर जान देने को तैयार हैं। किसी भी मत में सारे तत्ववेत्ता नहीं हुआ करते। परमेश्वर के सत्य स्वरूप को तो योगी लोग भी बड़े परिश्रम के पश्चात् जानते हैं। मित्रो? यह संसार ज़ाहिर परस्त है, तत्ववेत्ता लोग तो दाल में नमक के बराबर होते हैं। ऐसी ही युक्तियों से महापुरुषों ने आज भी ७७ करोड़ मनुष्य अहिंसा धर्म को मानने वाले हमको दिखा दिये हैं, नहीं तो इस स्वार्थ में डूबे हुए संसार में अहिंसा का नाम कहाँ।

## मूर्त्ति पूजन की मीमांसा

यह भी अच्छा होता कि हम मूर्त्ति पूजन के विषय में तीसरे अध्याय ही में लिख देते पर वहाँ पर इसका वैदिक धर्म से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था, निस्सन्देह धर्म से अवश्य सम्बन्ध था। दूसरे कई बातें ऐसी थीं जिनको वहाँ पर प्रकट करना बड़ा कठिन कार्य्य था इसीलिये वहाँ पर लेखनी रोकनी पड़ी।

मूर्त्ति पूजा के विषय में जिन वरों ने तो कुछ भी आज्ञा नहीं दी थी, पर जैन भक्तों ने उन के निर्वाण के पश्चात् उनकी प्रतिमा बनाकर उनका पूजन आरम्भ कर दिया। मूर्त्ति-पूजन के विषय में बौद्ध-काल से कुछ झगड़ा चला आता है, इससे पूर्व यह विषय इतना गम्भीर न था। बौद्ध मत के दो बड़े सम्प्रदाय थे, जिन के अन्तर सभी सम्प्रदाय आ जाते हैं, पहिला और सबसे पुराना सम्प्रदाय हीनयान था, जो कि मूर्त्ति-

पूजन को अच्छा नहीं समझता था, राजा अशोक इसी मत को मानता था, क्या आश्चर्य है कि जैन मत से बुद्ध मत के मतभेद के जहाँ और कारण हों उनमें से एक यह भी कारण अलग होने का हो। बात भी यही समझ में आती है, क्योंकि बौद्ध मत की इच्छा वैदिक-धर्म से अलग मत चलाने की न थी इसी से वह जैन मत की इस नवीनता को अच्छा नहीं समझता था।

बौद्ध मत का दूसरा सम्प्रदाय महायान था जिसमें मूर्त्ति-पूजा होती थी. राजा कनष्क इसी मत को मानता था, १४० ई० से पूर्व यह लोगों की इच्छा पर था पर इस सन में कनष्क ने बौद्ध साधुओं से इसके लिये नियमानुसार धर्म व्यवस्था भी दिला दी।

इतिहास से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यूनानी लोग अपने देवताओं की मूर्त्तियाँ बनाने में संसार की सभी जातियों से बढ़े चढ़े थे, सब से पहिले उन्हीं लोगों ने मूर्त्ति पूजन आरम्भ किया, कोशन (शक) राजाओं के समय में चीन, यूनान, और भारत के विद्वानों और शिल्पकारों का जमघटा लगा रहता था बुद्धजी की मूर्त्ति इन्हीं के समय में बनाई गई। ७ वीं शताब्दी में हर्ष ने हीवानचांग के उपदेश से महायान मत स्वीकार किया, हर्ष का प्रेम बहुत सी बातों के कारण हिन्दू मत से भी था, इसलिये उसने शिव और सूर्य्य की मूर्त्तियाँ भी बनवाई थीं। ६ वीं शताब्दी से शैव मत की आड़ में बहुदेव वाद फैला, जिस में असंख्य देवताओं की मूर्त्तियाँ बना डालीं। रामानुजजी ने इसे ईश्वरोपासना का एक अंग ठहराया।

## मूर्त्ति पूजा और संसार का इतिहास

सूचक-इतिहास की जिन २ घटनाओं को हम नीचे लिखेंगे वे सब अलबेरुनी के भारत से ली गई हैं।

(१) मूर्खों के हृदय में मूर्त्ति के प्रति बड़ी ही श्रद्धा होती है, यदि किसी अरबी मुसलमान को भी ह० मुहम्मद की मूर्त्ति दिखा दी जावे तो वह अपनी सारी श्रद्धा, भक्ति समाप्त कर देगा। इस बात का उस समय वह कुछ भी विचार नहीं करता कि मेरा यह कार्य्य उनके उद्देश्य के विरुद्ध है। छोटे २ बच्चे भी अपने खिलोनों को बिल्कुल जीवधारी समझते हैं, ज्यों २ मनुष्य का ज्ञान वृक्ष बढ़ता जाता है यह प्रतिमा प्रेम भी घटता जाता है। हमारा इसके साथ यह भी निश्चय है कि उन मूर्खों को भी प्रतिमा से अश्रद्धा होती है जो पापी ढीठ और अश्रद्धालु होते हैं।

(२) जिस प्रकार प्राचीन यूनानी विद्वान् स्वयं मूर्त्ति नहीं पूजते थे पर जन साधारण को इस से रोकते भी न थे। यही बात ठीक २ भारतवर्ष में भी देखी जाती है।

(३) भारतवर्ष में एक बात सब से अच्छी यह है कि वे लोग ईश्वर के समान उसकी प्रशंसा करते हुये भी उन मूर्त्तियों और उनके देवताओं को ईश नहीं मानते। अलबेरूनी की यह बात १० वीं शताब्दी के आस पास की लिखी हुई है जब कि न तो वैष्णव मत ने अपना वर्त्तमान रूप ही धारण किया था, न उसका कुछ अधिक प्रचार ही था।

(४) जिस प्रकार यूनानी लोग पूर्वकाल में मूर्त्ति नहीं पूजते थे, पर आगे चलकर वे पूजने लगे, यही बात भारत में भी है।

## मूर्त्ति पूजन किस प्रकार चला

(१) यह मूर्त्ति पूजा किस प्रकार चली इसके विषय में भिन्न २ मूर्त्ति पूजक भिन्न २ कथा सुनाते हैं। हिन्दुओं में प्राचीन काल में मूर्त्तियाँ बनाने का अधिक प्रचार न था, जब राम बन

को गये तो उनके भाई ने अपने को अधिकारी न जानकर मूर्त्ति के स्थान पर उनकी खड़ाऊँ ही रखदी थीं।

पर जिस समय सीताजी को फिर बनवास दिया गया तो अश्वमेध के समय राम ने सहधर्मिणी के स्थान पर सीता जी की प्रतिमा ही रक्खी थी।

महाभारत में भी लिखा है कि व्याध ने द्रोण की मूर्त्ति को गुरु मानकर अभ्यास किया था।

ऐसी ही एक कथा यह भी सुनी जाती है, कि शौनक ने राजा परीक्षित से कहा था कि अम्बरीष नामक राजा ने बहुत तप किया सारे देवता बारी २ से बरदान के लिये आये पर राजा ने किसी का बरदान स्वीकार नहीं किया, अन्त में विष्णु भगवान् आये और राजा की प्रार्थना पर विष्णु भगवान ने अपनी मूर्त्ति राजा को दी।

(२) यूनानी विद्वान् जालीनूस लिखता है कि सम्राट कुमोदस के समय ईसा से ८०० वर्ष पूर्व बाज़ार में एक अच्छी मूर्त्ति के दो लेने वाले थे, एक अपने पिता की स्मृत्ति में क़ब्र पर लगाने के लिये लेता था, दूसरा हरीमोस (बुद्ध) देवता की स्थापना के लिये लेता था। इस से सिद्ध हुआ कि यूनान में उस समय यह प्रथा थी। सम्भव था कि जैनियों ने जो यूनानादि से अपना व्यापार करते थे, यह बात सीखी हो, और भारत के किसी संगतराश से अपने तीर्थङ्करों की उल्टी सीधी मूर्त्तियाँ बनवा ली हों, और क्योंकि भारतीय शिल्पकार उस समय इस कला में अधिक कुशल न थे, इसलिये उनसे मूर्त्तियों की मुखाकृत्ति ठीक न बनी हो।

(३) तौरेत के अनुयायी कहते हैं कि रोमूलस और रोमानस नाम के दो भाई थे, जिन्होंने रोम नगर बसाया था। राज्य के लोभ से रोमूलस ने रोमानस बड़े भाई को मार डाला,

इससे प्रजा में उपद्रव के लक्षण दिखाई देने लगे तो रोमूलस ने गद्दी पर अपने भाई की प्रतिमा रखकर कहा कि मैं राजा नहीं हूँ राजा तो मेरा भाई ही रहेगा, मैं तो यथा पूर्व प्रबन्धक ही रहूँगा, ऐसी मुझे देवताओं ने स्वप्न में आज्ञा दी है। सम्भव है यह कहानी रामचन्द्रजी की कहानी से बिगड़ कर बनी हो।

## हिन्दुओं में मूर्ति-पूजन की दशा

(१) अलबेरूनी लिखता है कि खलीफा मुआबिया ने सिसली की सोने की मूर्तियाँ सिन्ध के राजाओं के हाथ बड़े मूल्य पर बेची थीं, हिन्दू लोगों ने उनको अपने देवताओं की मूर्तियाँ मान लिया था। पर इस समय (१० वीं शताब्दी) में मूर्ति बनाने के बड़े कठोर नियम हैं, यदि छोटी बन जावे तो राजा को दुःखदाई हो जाती है और यदि बड़ी बन जावे तो शिल्पकार को दुःखदाई कही जाती है।

हमारे विचार में इसलाम और वैष्णव मत के प्रचार ने लोगों के मन में इन देवताओं की श्रद्धा कम कर दी होगी, जब लोगों ने आक्षेप किये होंगे कि तुम्हारी मूर्ति पर क्या विश्वास तुम तो मनमानी गढ़ लेते हो हम कैसे जानें कि यह उसी देवता की मूर्ति है, इसी आक्षेप से बचने के लिये यह कठोर नियम बना डाले थे। एक मूर्ति के बराबर ठीक दूसरी मूर्ति बनाना बहुत ही कठिन कार्य्य है इसलिये पुजारियों ने यह नियम बनाया कि शिल्पकार ठीक २ मूर्ति बनावें, छोटी मूर्ति बनने में पुजारी की हानि थी, इसलिये उसके साथ में राज-दंड का भय लगा दिया, और बड़ी मूर्ति बनने में लोगों के आक्षेप मात्र का भय था, पर मूर्खों से धन बटोरने में बड़ी मूर्ति से ही सहायता मिलती थी, इसलिये उसके साथ में

शिल्पकार को ही दुःखदाई बना डाला। शिल्पकार मूर्ति के बिगड़ने के भय से हार झकमार कर बड़ा ही आकार रखता था, और देवता के कोप को सहता था।

(२) अपने २ जाल में फँसाने के लिये पुजारी बड़ी २ मायां रचते थे, सन् १०२ में जब महमूद ने सोमनाथ पर आक्रमण किया तो देखा कि सोमनाथजी निराधार आकाश में लटक रहे हैं, महमूद ने जब पुजारियों से इसका कारण पूछा तो कहा महाराज यह देवता का चमत्कार है, पर महमूद जैसे ईश्वर प्रेमी को इस बात पर कब विश्वास हो सकता था, उसने इसकी खोज की तो पता चला कि मन्दिर के चारों कोनों में चकमक पत्थर लगे हुये हैं और यह मूर्त्ति पोली लोहे की बनी हुई है। फिर तो महमूद को इतना क्रोध इनकी धूर्तता पर आया कि सारी मूर्तियां तोड़ डालीं और उनके पेट में जितने रत्न थ सब उठाकर ले गया और साथ ही इन धूर्त्तों को भी पकड़कर ले गया। इस समय यहाँ पर जैनियों का राज्य था।

(३) मुहम्मद इब्न क़ासिम ने मुलतान की मूर्तियों के गले में गोमांस लटका दिया था, उनको तोड़ा इसलिये न था कि ऐसा करने से आय मारी जावेगी।

(४) चाणक्य ने भी अपने अर्थ शास्त्र में आय के अन्य उपायों के साथ चढ़ावे की आय में भी राजा का पूरा भाग लिखा है। यदि उस समय के विद्वान् मूर्ति-पूजन को महाधर्म जानते तो उसकी आय में से उसी प्रकार भाग न लिखते जिस प्रकार संस्कारों से होने वाली आय में कोई भाग नहीं लिखा।

## अलबेरूनी का निश्चय

आदि में मूर्ति पूजा न थी. प्रथम देवताओं और महापुरुषों की स्मृति में मूर्तियाँ बनीं। फिर वे मनुष्य और परमेश्वर के बीच वकील बनीं फिर वे परमेश्वर ही बन बैठीं।

## मूर्ति पूजा और उपासना

हमारे कुछ विद्वानों का कथन है कि जिस प्रकार भूमिति (ज्योमेटरी) में बिन्दु की कोई आकृति नहीं पर तो भी बालकों को समझाने के लिये बिन्दु की आकृति श्याम पट पर बना ही लेते हैं। इसी प्रकार महान पुरुषों ने परमेश्वर की कुछ भी मूर्त्ति न होने पर समझाने के लिये उसकी मूर्त्ति बना डाली। इसी के द्वारा मनुष्य धीरे २ परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।

बात में कुछ सार अवश्य है पर बात सर्वथा ऐसी नहीं है। बिन्दु ऐसा हो ही नहीं सकता जिसकी कुछ आकृति न हो, भला जिसके लिये स्थान नियत कर दिया हो उस नियत स्थान में रहने वाले की आकृति आप कैसे न मानेंगे. बिन्दु कोई चेतन पदार्थ नहीं जिसकी आकृति कुछ न हो, विद्वानों ने जो बिन्दु की परिभाषा में उसकी आकृति नहीं मानी, उसका कारण यह है कि कहीं लोग बिन्दु की लम्बाई चौड़ाई के झगड़े में पड़कर मूल साध्यों के समझने से वंचित न रह जावें। समझने के लिये यह बिन्दु कपिल का परिमाणु है।

परन्तु परमेश्वर को निराकार कहना यह कोई परिभाषा नहीं है, यह तो मूल सिद्धान्त है क्योंकि परमेश्वर वास्तव में वैसा ही है। परिभाषा और मूल सिद्धान्त में समता करके दिखाना अनवस्था दोष है।

मान लो बिन्दु और परमेश्वर दोनों निराकृति में समान ही हैं तो भी यह बात नहीं घट सकती। अध्यापक वा बालक बिन्दु को सूक्ष्म से सूक्ष्म बनाने पर ही अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। यदि अध्यापक बिन्दु को सूक्ष्म बनाने के स्थान पर कोई फूल बना डाले तो वह इस विद्या से बालकों को सदा दूर ही रक्खेगा। इन पूज्य पुरुषों से हमारी यह विन्ती है कि वे कृपा पूर्वक क्या यह सिद्ध कर सके हैं कि यह मूर्त्तियाँ परमेश्वर के किसी भी विशेषण को बतलाती हैं। वरन उल्टी उसके विशेषणों को अत्यन्त ही बुरे और परिमित रूप में जा झोंकती हैं। निस्सन्देह यदि उपनिषदों की भांति परमेश्वर की सर्व व्यापकता को समझाने के लिये आकाश और उसकी महानता प्रकट करने के लिये समुद्रादि के उदाहरण लिये जाते तो बात कुछ लग्गा भी खाती थी। जो मनुष्य इन मोटी बातों को भी नहीं समझ सकता वह परमेश्वर को क्या जान सकता है। हमारे दूसरे भाई कहते हैं कि जैसी मूर्त्ति को देखते हैं वैसे ही भाव हृदय में जाग्रत होते हैं। यदि मूर्त्ति नग्न है तो भी काम और निर्लज्जता के भावों को जाग्रत करेगी। और यदि वस्त्र धारण किये हुये है तो केवल काम और मोह को उत्पन्न करेगी। अब रही ज्ञानी लोगों की बात वे तो बिना मूर्त्ति के भी उसी का पाठ पढ़ते हैं, हाँ मूर्ति से उनके विचारों के परिमित होने का भय लगा रहेगा।

हमने बड़े २ समझदार मनुष्यों को यह भी कहते सुना है कि जिस प्रकार मदारी लोग मैस्मरेज़म की विद्या में किसी विशेष भौतिक पदार्थ पर ध्यान जमाकर अथवा अभ्यास करके बड़े २ चमत्कार सिद्ध कर लेता है, इसी प्रकार मूर्ति का ध्यान करने से भी अपार लाभ होता है। इस में भी वही अनवस्था दोष है, इस में भी व्यर्थ ही झूठी साइंस झाड़ी है।

यदि हमारे पूज्य विद्वान उपासना और मैस्मरेज़म के मूल सिद्धान्त को समझ लेते तो ऐसा कभी न करते। मैस्मरेज़म की विद्या में चक्षु त्वचा और श्रवणादि भौतिक शक्तियों का विकास अभ्यास के द्वारा किया जाता है, और उपासना अर्थात् योग विद्या में अभ्यास के द्वारा आत्मिक शक्तियों का विकास किया जाता है। मैस्मरेज़म प्रकृति मार्ग है और उपासना आत्म मार्ग है जो बिल्कुल उसके विरुद्ध है। योगदर्शन में योगी को बार २ इस मदारीपन से बचने की चेतावनी दी है। पर भाइयो! यह मदारीपन वैसा सुगम नहीं है जैसा कि मूर्तियों के सामने वेश्या नृत्य कराना, पुष्पादि चढ़ाना अथवा दस, पाँच मिनट उनके सामने नाच कूदकर सिर झुका देना। यदि हमारे विद्वान् मदारी को उपासक की पदवी देते हैं तो वे उस विषयी गुलाम को जो वेश्या के नाच में अपने को भी भूला हुआ है अवश्य ही योगीराज की पदवी देंगे।

जब देश के ब्राह्मणों की बुद्धि का भी ऐसा दिवाला निकल गया हो, तो संसार में अधर्म क्यों न फैले, गौ माता की गर्दन क्यों न कटे। ब्राह्मणों की दुर्दशा क्यों न हो।

## मूर्ति पूजा के जानी दुश्मन

इन सब लोगों के विरुद्ध अन्य मनुष्य भी हैं जो संसार में मूर्तियों का चिन्ह ही मेटना चाहते हैं। इन में एक मनुष्य तो वह हैं जो परमेश्वर को छोड़ किसी की भी पूजा को अच्छा नहीं समझते। इन में एक तो परम जिज्ञासु हैं पर यह लोग थोड़े ही हैं। दूसरे वे दंभी अधर्मशील, और ढीठ मनुष्य हैं जो कुछ करना धरना नहीं चाहते। तीसरे अन्ध विश्वासी लोग हैं जो मृतक, कब्र, मकान, पुस्तक, पत्थर, मिट्टी, पानी को पूजते हैं पर मूर्ति के नाम से अकारण ही चिढ़ते हैं।

दूसरी कोटि के मनुष्य हैं जो महापुरुषों की मूर्तियों के आदर सत्कार को तो बुरा नहीं समझते पर पुजारियों के पापों को भी नहीं देखना चाहते।

## सिद्धान्त का सार

(१) निर्गुण की उपासना उत्तम है पर उस से लाभ भी उत्तम कोटि के मनुष्य ही उठा सकते हैं।

(२) सन्ध्यादि के द्वारा सगुण उपासना करना सर्व-साधारण को लाभदायक है यह दूसरी कोटि की उपासना है।

(३) मूर्ति पूजन निकृष्ट श्रेणी की उपासना है। अर्थात् कुछ न करने वालों से वह भी अच्छी है, जैसे कि अपढ़ शिवाजी, राना प्रतापादि ने इस से भी लाभ उठाया था।

(४) महापुरुषों की मूर्तियाँ रखने में कुछ भी पाप नहीं है। जिन भाइयों को मूर्तियों के रहने से यह भय है कि लोग फिर गढ़े में जा पड़ेंगे उनकी सेवा में यही प्रार्थना है कि ये तो पापी मनुष्यों ने वेदों से भी पाप सिद्ध कर लिये हैं। तो क्या वेदों को भी त्याग देना चाहिये।

(५) जो लोग किसी महापुरुष की मूर्ति पर वा देवता की मूर्ति पर धन बटोरते अथवा दान करते हैं. वे दोनों बुरा करते हैं। हमारे इस निश्चय का समर्थन श्रीमद्भगवत पुराण से भी होता है। रामानुजजी भागवत से बाहर नहीं जा सकते।

## प्रमाण

उत्तमं ब्रह्म सद्भावो, मध्यमं ध्यान धारणा।
स्तुति प्रार्थना धमाया बाह्य पूजा धमा धमा॥

भावार्थ

ब्रह्म का सद्भाव यह उत्तम उपासना, ध्यान धारणा मध्यम उपासना, स्तुति प्रार्थना अधमोपासना और बाह्य पदार्थ, मूर्ति, सूर्य्यादि की उपासना महा नीच है।

## पांचवां सिद्धान्त

छूत छात के विषय में हम यह भली प्रकार लिख चुके हैं कि इस सिद्धान्त ने किन योनियों में चक्र काटा है। इसी अध्याय में हम यह भी दिखा चुके हैं कि पहिले वैष्णव मत छूत छात के विरुद्ध भी था, स्वामीजी ने छूत छात शैवों की हट पर उसी प्रकार नहीं बनाई थी जिस प्रकार शीया मुसलमानों ने हिन्दुओं के विरुद्ध खड़ी कर दी है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान दशा में यह छूत छात हमारे गले का हार होकर हम को मेटने के सामान कर रही है पर इस ने रक्षा भी इस काल में बड़ी की थी। हिन्दू लोग मुसलमानों के प्रति इतनी घृणा कूट २ कर भर देते थे कि वे सिर कट जाने पर भी इसलाम स्वीकार नहीं करते थे। हिंदुओं की मनोहर रीतियों, प्रथाओं और त्यौहारों ने भी जाति रक्षा में बड़ी सहायता दी थी। मुसलमान जिस देश में गये वहाँ सारे देश को मुसलमान बना डाला पर भारत में उनको अधिक सफलता नहीं हुई।

# स्वामीजी की कृति

(१) शारीरिक सूत्र भाष्य (२) उपनिषद भाष्य (३) अन्य वैष्णव मत के श्लोक बद्ध ग्रन्थ।

# विशेष

स्वामीजी के नाम से लोगों ने ग्रन्थों में बड़ी गड़ बड़ मचा डाली है।

## सिन्ध पार मत जाओ

काबुल देश के इतिहास और अलबेरुनी की पुस्तक से ज्ञात होता है कि महमूद के दर्बार में भारतवर्ष के बहुत से हिन्दू दुभाषिये, वैद्य, ज्योतिषी रहते थे, बहुत से गुप्तचर का कार्य्य देते थे। इनमें से कुछ तो वन्दी थे, कुछ वेतन पाते थे, महमूद ग़ज़नवी की सरकार में हिन्दुओं की एक बड़ी सेना थी, बुख़ारे के प्रबल अमीर को ( जिससे महमूद कांपा करता था ) इसी सेना ने परास्त किया था, यही सेना अलबेरुनी को बुख़ारे से वन्दी करके ग़ज़नी में लाई थी इससे ज्ञात पड़ता है कि महमूद जो भारत में जहाँ तहाँ छापे मारता था उनमें इन्हीं हिन्दू लोगों का अधिक हाथ था इन हिन्दू लोगों में वैदिक-धर्म के शत्रु बौद्ध और वामी भी अवश्य होंगे। अफ़गानिस्तान के पश्चिमोत्तर भाग काफ़रिस्तान में अभी तक ऐसे हिन्दू पाये जाते हैं जिनका मत वाम मार्ग और बौद्धमत का मिश्रण है। मुसलमान लोग पहिले तो किसी वस्तु का प्रलोभन देकर बुला लेते थे पर कुछ दिनों पीछे उनको मुसलमान बनने पर विवश करते थे। ऐसे मनुष्यों में एक तो: जयसेन का पुत्र तिलक था, दूसरे इन हिन्दुओं को भला मुसलमान अछूता कैसे छोड़ देते जब भारत में ही बलात्कार धर्म भ्रष्ट करते थे।

अलबेरूनी अपनी पुस्तक में लिखता है, कि मुझे हिन्दुओं के धर्म की बातें जानने में दो कारणों से अधिक कठिनाई हुई प्रथम यह कि वह हमसे मिलना अच्छा नहीं समझते दूसरे विद्वान् लोग मुसलमानों से पकड़े जाने के भय से दूर भाग गये। विद्वान् लोगों के भागने का कारण यह ज्ञात पड़ता है कि ग़ज़नी और बग़दाद में जो अनुवाद का कार्य्य हो रहा था मुसलमान लोग वहाँ के लिये विद्वानों को प्रलोभन देकर ले जाना

चाहते होंगे पर लोग प्रायः धर्माज्ञा से डरकर ऐसा नहीं करते थे अतः महमूद की सेना इन लोगों को बलात्कार पकड़कर ले जाती थी। मुहम्मद इब्नक़ासिम ने भी बहुत से विद्वान् बलात्कार बग़दाद में भेज दिये थे। यद्यपि विदेश में जाने की आज्ञा पहिले से थी, पर फिर भी व्यापारी, नौकरी और धन के लालची चले ही जाते थे, इसलिये विद्वानों ने आज्ञा निकाल दी कि सिन्ध पार हो कोई न जावे। व्यापारी लोग तो न रुके पर क्षत्रियों को इस आज्ञा ने बड़ी हानि पहुँचाई क्योंकि सिन्ध पार न जाने से खैबरघाटी पर यवनों का अधिकार हो गया, जिससे वे अवसर पाकर बड़ा उपद्रव मचाते थे।

## शुद्धि क्यों रोकी गई थी

अब तक विद्वानों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य था कि संसार को धर्मोपदेश देने वाले ब्राह्मणों ने शुद्धि को रोक कर अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी क्यों मारली। यह बात समझ में भी नहीं आती कि जिस हिन्दू धर्म ने वामियों, कापालिकों और संसार की बड़ी २ भयङ्कर जातियों को निगलकर डकार भी न ली उसने शुद्धि को अकारण ही क्यों रोक दिया।

मौ० अबदुल कादिर बदायूनी और फ़रिश्ते ने अपने २ इतिहास में लिखा है कि किसी समय ६० करोड़ हिन्दू थे, जिस समय भारत की बागडोर, यवनों मराठों सिक्खों और जाटों से अंगरेजों ने ली तो कुल १८ करोड़ मनुष्य थे अर्थात् १४ करोड़ के लगभग हिन्दू थे। इन्हीं ग्रंथोंमें लिखा है कि १००१ ई० में सिन्ध देश का राजा सुखपाल जब अबूअली सजूरी ने पेशावर में घेर लिया तो मुसलमान बन गया पर छूटने पर फिर ब्राह्मणों ने मुरतिद (शुद्ध) कर लिया। महमूद ने दोबारा

धावा करके इसको पकड़ लिया, वह बन्दी घर ही में मर गया। इसलिये सिद्ध हुआ कि इस समय तक शुद्धि होती थी।

शुद्धि को रोकने का नियम विद्वानों ने उस समय बनाया जब मुसलमानों का राज्य उत्तरीभारत में फैलने लगा था। देखने में तो मूर्खता जान पड़ती है पर बड़ी ही रहस्य पूर्ण बात थी। यदि यह नियम न बनाया जाता तो हिंदुओं का खोज भी न मिलता। साधारण बुद्धि के मनुष्य वैसे ही आक्षेप करने लगते हैं।

विद्वानों ने देखा कि बहुत से आदमी थोड़े से ही दवाव से अथवा प्रलोभन से मुसलमान होते जाते हैं। जब लोग इनसे कहते हैं कि भाई तुमको इस प्रकार विधर्मी बनना ठीक नहीं था, तो ये उत्तर देते हैं कि क्या करें विवश होकर ऐसा करना पड़ा, पर हम लोग उनकी थोड़ी सी बातें ही मानते हैं. विद्वानों ने यह भी देखा कि बहुत से लालची तो यह भी कहते हैं कि मुसलमानों का ही मत सर्व श्रेष्ठ है क्योंकि वे एक ईश्वर को पूजते हैं, यदि उनका मत हिन्दू मत से अच्छा न होता तो वे यहाँ के राजा ही कैसे बनते, देखो मुसलमानों में कैसा प्रेम है कि वे नीच से नीच अपने भाई के साथ बड़े ही प्रेम से भोजन कर लेते हैं देखिये उनका मत ऐसा बढ़िया है कि उसके सामने हिन्दुओं के देवता भी डरकर अपना चमत्कार नहीं दिखाते। विद्वानों ने सोचा कि यदि यही दशा रही तो सारा देश विधर्मी बन जावेगा. फिर जब थोड़े से विद्वान् और धर्मात्मा रह जावेंगे वे आप ही मुसलमान, बन जावेंगे अथवा बना लिये जावेंगे। उन्होंने यह भी देखा कि यवन मत में निरंकुशता बहुत है, भला यह स्वच्छन्दता प्रेमी मनुष्य इस हिन्दू मत में क्या आवेंगे, जो कुछ थोड़ा बहुत मोह अब है वह भी समयान्तर में जाता रहेगा। मनुष्य यदि अपने मत में लौटना भी चाहेंगे तो यह यवन सम्राट और कटमुल्ले ऐसा क्यों करने

देंगे। इसलिये अब किसी ऐसी विधि से काम लिया जावे कि जिससे यह लोग हिन्दू मत को सर्वश्रेष्ठ जानकर यवन मत में जाना ही पाप समझें, इसका एक उपाय तो वही छूत छात थी। अब दूसरा उपाय यह निकाला कि देश के बड़े २ विद्वानों ने यह व्यवस्था देदी कि हमारे धर्म में कोई अन्य मत का मनुष्य, वा धर्म भ्रष्ट मनुष्य कभी नहीं आसकता। हमारा धर्म एक ऊंचा पर्वत है, जिससे गिरा हुआ मनुष्य कभी नहीं चढ़ सकता, हमारा धर्म स्वच्छ गंगा जल के समान है जो एक बार कीचड़ की नाली में जाने से कभी फिर गंगाजल नहीं कहा जा सकता।

सर्व साधारण का धर्माधर्म उनके आवेशों पर निर्भर होता है, वह बात की तह में नहीं पहुँचते वे केवल दिखावट ढोंग और ठाट बाट पर प्राण देते हैं वे प्रत्यक्ष बात को छोड़ अप्रत्यक्ष बातों के झमेले में पड़ना पसन्द नहीं करते, इस व्यवस्था का फल यह हुआ कि हिन्दुओं के हृदय में धर्म का प्रेम तथा उसकी सर्वश्रेष्ठता और यवन मत से घृणा का भाव कूट २ कर भर गया। वह कौन सी बात थी जिसने गुरुगोविंद सिंह के छोटे २ बच्चों और हक़ीकतराय के हृदय में यवन मत से घृणा उत्पन्न करदी थी, वह क्या बात थी जिससे प्रेरित होकर अपढ़ राजपूत और उनकी स्त्रियाँ जोहार करके नष्ट हो जाती थीं पर यवन मत की आधीनता कभी स्वीकार नहीं करती थीं। वह यही अपने २ धर्म की श्रेष्ठता और यवन मत की नीचता का भाव था। यदि कोई विद्वान् उस समय के हिन्दू धर्म की तुलना न्यायपूर्वक यवन मत से करे तो वह अन्त में इसी निश्चय पर पहुंचेगा कि उस समय यवन मत के सामने हिन्दू मत एक सड़ी हुई नाली के समान था, उस समय के यवन मत में कोई भी बुराई इसके सिवा न थी कि वे स्त्रियें

के सतीत्व की कुछ परवा नहीं करते थे, मुसलमानों की इस कुप्रवृत्ति ने भी हिन्दुओं में एक आग लगा रक्खी थी। यही एक भाव था जिसके कारण मलकाने राजपूतों ने दार्शनिक प्रचारक आर्य्यसमाजियों से अपनी शुद्धि नहीं कराई वरन् सनातनी लोगों से शुद्धि कराई। यही भाव है कि आज भी जिस के कारण करोड़ों बलात्कार बनाये हुये मुसलमान हिंदुओं की ओर नदी देपन से देख रहे हैं।

मुसलमान लोगों ने जब इस व्यवस्था को सुना तो बहुत हँसे, और कहा इन काफ़िरों की बुद्धि को तो मूर्तियों ने अपने समान पत्थर बना दिया। उनको यह ज्ञान नहीं था कि इसलाम की नदी को रोकने के लिये, यह एक पर्वत खड़ा कर दिया। इसलाम के प्रचार पर इस व्यवस्था के दो प्रभाव पड़े प्रथम तो मुसलमान बनने में रुकावट पड़ गई, मुसलमानों ने सोचा कि अब यह लोग जज़िया देने में कुछ आना कानी नहीं करते उपद्रव नहीं करते तो फिर इनको मुसलमान बनने पर विवश करके अपने राज्य रूपी पैरों में कुल्हाड़ी मारना ठीक नहीं है। यदि किसी ने इसलाम का भारतीय इतिहास देखा है तो वह जानता होगा कि मुसलमान बादशाहों ने एक दो को छोड़कर शेष बादशाहों ने अपने राजनैतिक कार्य्यों के कारण अथवा मुल्ला लोगों के भड़काने से ही कभी २ बलात्कार मुसलमान बनाया था यदि वे लोग निरन्तर इस कार्य्य को करते तो हिन्दुओं का खोज भी न मिलता बहुत से बादशाहों के राज्य कार्य्यों में हिंदू ही नौकर थे। फीरोज़ तुग़लक और मुहम्मद तुग़लक तो ब्राह्मणों को धन भी देते थे। एक दिन अलाउद्दीन जैसे कट्टर सम्राट ने अपने मुल्ला से पूछा कि मुल्लाजी सच कहना क्या कुरान में हिंदुओं के साथ ऐसा ही अत्याचार लिखा है, मुल्ला ने कहा हजूर चाहे फाँसी दे दीजिये मैं तो सच ही

कहूँगा, कुरान में तो ऐसा ही लिखा है मुसलमान बादशाह अपने धर्म की आज्ञा से अवश्य लाचार थे पर वे कुछ बुद्धि भी रखते थे, वे कुछ नीति से भी काम लेना जानते थे, नहीं तो भारतवर्ष में लूट मार करने के अतिरिक्त राज्य कभी नहीं कर सकते थे।

दूसरा प्रभाव इस व्यवस्था का यह पड़ा कि मुसलमानों ने नौमुसलिमों को यह समझकर कट्टर मुसलमान बनाने का यत्न नहीं किया कि अब तो यह लोग हिंदू बन ही नहीं सकते। इस व्यवस्था से हानि तो अवश्य हुई पर लाभ उससे भी अधिक हुआ। मानलो शुद्धि का नियम ही होता तो क्या वह इसे हिंदू उनके राज्य में शुद्ध कर सकते थे सम्राट औरङ्गजेब के समय में काशी के कुछ ब्राह्मणों ने प्रचार और शुद्धि का साहस किया था, जिसका फल इतिहास में भली प्रकार लिखा है।

## परदे की प्रथा

मुसलमान लोग जब किसी कुलीन और सुंदर कन्या को देख पाते तो झट छीनकर ले जाते, उसी समय से परदे की प्रथा चल पड़ी। अबूजैद ६१६ ई० में लिखता है कि भारत में रानियाँ भी परदा नहीं करती थीं।

## बाल-विवाह

उसी समय से बाल विवाह की प्रथा चली, यद्यपि पापी यवन लोग विवाह के पश्चात् भी छीन सकते थे पर विवाह के पश्चात स्त्रियाँ परदे में रहने लगती थीं। इस दशा में जो बहुत ही सुन्दर होती थीं, उसी पर नम्बर आता होगा।

## दिशाशूल

यवन काल के आरम्भ से ही राज्य प्रबन्ध बिगड़ गया था, डाकू और लुटेरों से देश भर गया था, इनमें कुछ तो पक्के ह

डाकू थे कुछ मुसलमानों के भय से भागे हुये लोग थे। इस विचार से कि एक ही दिशा को जाने वाले बहुत से मनुष्य एक साथ हो जावें यह दिशाशूल बनाये गये। विवाह में दिशा-शूल नहीं माना जाता क्योंकि उसमें तो बरात की बरात आप ही साथ होती है।

## कन्या-विक्रय

इस यवनों के समय में कन्या की रक्षा के लिये बहुत से मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती थी। मनुष्यों को एकत्र करने के लिये धन की आवश्यकता होती, धनी लोग तो अधिक व्यय कर सकते थे, अब विचारे दीनों को आपत्ति थी, बस उन्होंने इसका यही उपाय निकाला कि अपनी कन्या को बूढ़े लंगड़े, लूले और अंधे के हाथ बेचने लगे।

## कन्या-वध

जाट, गूजर, अहीर, और राजपूतादि क्षत्रियों ने कुछ तो झगड़ों के भय से कुछ व्यय के भय से अपनी कन्याओं को मार डालना ही आरम्भ कर दिया।

## बहु विवाह

जिन जातियों में कन्या अधिक थीं और लड़के थोड़े थे उनमें बहु विवाह की भी आज्ञा दे दी। इस बात के लिये उनके पास प्रमाण भी थे।

## विवाह सुझाना

प्राचीन काल में माता, पिता, गुरू, वर, कन्या अथवा केवल वर कन्या की प्रसन्नता से विवाह होते थे, पर इस समय कुप्रबन्ध के कारण यह भार नाई ब्राह्मण पर डाल दिया। विद्वान् लोग ही तीर्थ यात्रा वा मेलों में जाते रहने के कारण

देश की दशा से परिचित रहते थे इसलिये विवाह सुझाये आने लगे फिर यह सुझाना कौड़ियों का खेल बन गया यह कृपा स्वार्थ की हुई।

## सती होना

धर्म-शास्त्र में द्विजों का पुनर्विवाह नहीं लिखा, उधर मनुष्यों के मारे जाने से कन्याओं के बढ़ने और जाति बन्धन के नियम ने यही सती की प्रथा चलादी इनमें अपनी प्रसन्नता से तो थोड़ी ही जलती थीं पर अधिक तो लोगों के धिक्कार और डर से ही मारी जाती थीं।

## विशेष

यह सारे अनर्थ हिन्दुओं के असंघटन ने आपतकाल में उसी प्रकार कराये जिस प्रकार कोई मनुष्य घर में आग लगी देखकर घबराकर एक कोने में छिप जावे और दैव योग से यह बच भी जावे।

## प्रणाम का महत्व

प्रणाम का आशय केवल यह है कि छोटे मनुष्य अपने बड़ों के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति और नम्रता का भाव प्रकट करें, और इसी प्रकार करते २ वे सच्चे श्रद्धालु और नम्र बन जावें। उनके हृदय में अपने बड़ों के विरुद्ध धृष्टता का ध्यान भी कभी न आवे। प्रायः यही देखने में आया है कि जिन बच्चों को बचपन ही से प्रणाम की टेव नहीं डाली जाती वे बड़े होकर बड़े ही धृष्ट होते हैं। यद्यपि बालक इसके महत्व को नहीं समझ सकता पर जब इसकी टेव पड़ जाती है तो फिर अपना प्रभाव डालता ही रहता है। प्राचीन काल में नम धातु से निकलने वाले शब्दों का प्रयोग होता था, पर वैष्णव विद्वानों ने इसके स्थान पर राम और कृष्ण के नाम रख दिये

बार२ किसी नाम के लेने से उसके गुण हृदय में बैठते आते हैं। दूसरे यह भी नियम है कि जब किसी मनुष्य के सामने उसके अभीष्ट का नाम लिया जाता है तो वह बड़ा ही प्रसन्न होता है। वैष्णव को इस नवीनता ने वास्तव में बड़ा लाभ पहुँचाया होगा, पर जिस समय यह बात पुरानी हो गई तो इसमें कुछ भी सार न रहा, यहाँ तक कि लोग राम और कृष्ण के नाम पर ही मरने कटने लगे।

## जैन मत का पुनरुद्धार

बहुत से लोग कहते हैं कि आजकल जितने जैनी हैं यह सब के सब चोर हैं, जो पहिले तो चोटी, जनेऊ और संस्कारादि ग्रहण करके ब्राह्मणों के मत में आ गये थे, और फिर जब अवसर पाया तो निकल भागे और जैनी बन गये यह उनका अज्ञान केवल द्वेष, और धार्मिक इतिहास की अनभिज्ञता के कारण है। यदि वे जैनियों के ग्रन्थों को पढ़ते तो ऐसा प्रलाप कभी न करते। वैष्णव मत के आदिम भाग में हम यह प्रकट कर चुके हैं कि शैव मत के पापाचार, बहुदेव वाद से तंग आकर वैष्णवों ने इस मत का खंडन करना आरम्भ कर दिया, जैनियों ने जब देखा कि जिन बातों के आधार पर शंकरस्वामी ने हमारे मत को परास्त किया था उनकी काट तो वैष्णव ही कर रहे हैं, इसलिये अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने का इससे अच्छा अवसर न मिलेगा। उस समय के शैव लोगों और उनके सिद्धान्तों की बुराई दिखाकर जैन विद्वान् हेमाचार्य्य आदि ने अपने मत को ११०० ई० के आगे पीछे फैलाना आरम्भ कर दिया गुजरात की ओर कुमारपाल (सिद्धपुरपट्टन) के राजा लोगों को अपने मत में कर लिया। चोला के राजाओं को वे पहिले ही अपने मत में ला चुके थे। ११ वीं शताब्दी का

इतिहास वेत्ता इद्रीस राजा के ऐश्वर्य्य और पट्टन की बड़ी प्रशंसा करता है। वह यह भी लिखता है कि लोग बड़े ही दयालु, और धर्मात्मा हैं। अलबेरूनी भी इद्रीस की भाँति १०वीं शताब्दी में इन राजाओं को बौद्ध ही (जैन) लिखता है। सोमनाथ की रक्षा के लिये जैनियों की सेना आई थी जो पराजित हो कर फिर गई थी। १२३४ ई० में अनहलवाड़े के सेठ विमलसहाय, और चन्द्रावती के श्रीमाल दो भाई तेजपाल, और वसन्तपाल के बनवाये हुये आबू पर्वत पर जो प्रसिद्ध और अद्वितीय संगमरमर के मन्दिर अब तक वर्त्तमान हैं, उनकी टाड साहब ने बड़ी ही प्रशंसा की है। इस समय जैनियों के सिद्धान्तों में पहिले से कुछ थोड़ा सा परिवर्त्तन हो गया था। प्रसिद्ध आचार्य्य हेमाचार्य्य का बनाया हुआ हेमकोश अब भी मिलता है। जैन ग्रन्थों में जो परस्पर विरुद्ध बातें लिखी हैं उनमें से बहुत सी इसी समय ठूंसी गई थीं, यह विद्या उन्होंने ब्राह्मणों से सीखी थी।

## स्वामीजी के पीछे देश की दशा

### वेदान्त-भेद

जिस प्रकार जैनियों ने अपने मत को आक्षेपों से बचाने के लिये परस्पर विरुद्ध बातें भर डाली थीं इसी प्रकार शैवों ने मूल बात को न जानकर जैनियों और वैष्णवों की चोटों से बचने के लिये अपने नवीन वेदान्त के कई भेद बना डाले। समयान्तर में लोगों के विचारों के गड़बड़ हो जाने से वेदान्त के द्वैत-अद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत और विशिष्टाद्वैत नामक भेद बन गये यह सब भ्रम में डालने की बातें हैं मूल तत्त्व वही है जिससे सारे आर्ष ग्रन्थ एक स्वर हो जाते हैं।

---

## पारस्परिक मत भेद

स्वामीजी की मृत्यु के पश्चात आपके १७ शिष्यों ने अपने २ नाम का झंडा ऊंचा करने के लिये वैष्णव मत के १७ सम्प्रदाय बना डाले राधा-कृष्ण के उपासक सीता राम के नाम से जलने लगे और सीता राम के उपासक राधा-कृष्ण को बुरा समझने लगे। जो तिलकादि बातें गौण थीं वे ही प्रधान धर्म बन बैठीं और प्रधान धर्म भक्ति मार्ग केवल राधाकृष्ण और सीताराम के जपने में बन्द होगया। जिन शैव लोगों के कल्याण के लिये स्वामीजी ने अपने जीवन को भी संकट में व्यतीत किया था, उनको यह लोग अपना शत्रु समझने लगे। शैवों के विरुद्ध इन लोगों ने बड़ा ही विष उगलना आरम्भ कर दिया, सब बातों में शैवों का विरोध किया, सन्ध्या जुदी और त्यौहार जुदे गढ़ मारे, यह लोग अपने को तो ईश्वर भक्ति का ठेकेदार समझते थे, और शैवों को जिन्होंने स्वामीजी के प्रचार से अपनी बहुत सी बुराइयाँ छांटकर फेंक दी थी। नास्तिक बताते थे स्वामीजी के ५० वर्ष पीछे ईश्वर वाद के केवल क्रियात्मक जीवन में वैष्णव लोग, जैनियों के तद्रूप हो गये। वैष्णव लोग क्योंकि जीते ज्वारी के समान थे, इसलिये यह लोग शैवों को चिढ़ाने में ही अपना धर्म समझते थे। सारा देश और धर्म लूटा जा रहा था, स्त्रियों के सतीत्व नष्ट हो रहे थे पर यह लोग अपने झगड़ों में मस्त थे। शैव लोग भी इन से कम न थे उन्होंने भी वैष्णवों के विरुद्ध बहुतेरा विष उगला जैनियों ने अपहिंसा का राग अलाप २ कर इनकी भी चुटिया पर हाथ फेर दिया।

## ग्रन्थों की दुर्दशा

जो दुर्गत ग्रन्थों की पहिले से होती आई थी वही अब भी होने लगी, शैवों ने वैष्णवों के विरुद्ध और वैष्णवों ने शैवों के विरुद्ध ग्रंथों में खूब लेखनी घिसी। वैष्णवों ने अपने मत को सनातन सिद्ध करने के लिये बड़े २ प्रक्षेप किये। वही शुकदेव जो व्यासजी के सामने युवावस्था में सद्गति को प्राप्त हो गये थे, वैष्णवों के चरणामृत को पान करके बहुत ही पीछे होने वाले परीक्षित को मृत्यु समय वे सिर पैर की गाथायें सुना रहे हैं। पुराणों में जहां विष्णु शब्द पाया उसके ऊपर एक लम्बा लेख लिखकर और जोड़ दिया और इस बात का कुछ भी विचार न किया कि हम स्वामीजी के विरुद्ध क्या प्रलाप कर रहे हैं, उनकी आत्मा को क्यों दुःख दे रहे हैं।

## ज्ञानाभाव-दृश्य

लोग इतने संकीर्ण हृदय होगये थे कि अन्य जाति तो दूर एक वंश का क्षत्री दूसरे वंश का जानी दुश्मन बन गया। इन लोगों ने बस इसी बात में धर्म समझ लिया कि युद्ध में मरने से ही हम को स्वर्ग मिलता है, इस भाव से प्रेरित होकर वे अकारण ही युद्ध का बहाना ढूंढा करते थे। इतिहास में एक घटना इस प्रकार लिखा है कि जब जैसलमेर का रावल आयु भर युद्ध करने पर भी न मरा तो उसने अपने हारे हुये शत्रु मुलतानाधीश को लिखा कि अब की बार तुम मुझसे लड़ो तो अवश्य विजय पाओगे, मैं केवल थोड़े से अपने साथी लेकर तुम से लड़ने आऊंगा। वह भी इसको मारना चाहता था इसलिये पूरी तैयारी करके नियत रण में आ गया। सारे दिन युद्ध होता रहा यहाँ तक कि ५०० राजपूतों में से एक भी न बचा युद्ध के पश्चात् जो मुसलमानों ने अपनी सेना की गिन्ती की

तो ज्ञात हुआ कि ५००० से ऊपर ही यवन मारे गये हैं। दूसरा अज्ञान इन लोगों में यह घुसा हुआ था कि छोटे से छोटा जागीरदार दूसरे की मदद माँगने में अपनी नककटी समझता था। तीसरा अवगुण इन लोगों में यह समा गया था कि वे नीति कुछ भी नहीं जानते थे वे विचारे क्या जानते जब उनके गुरु घंटालों की बुद्धि का ही दिवाला निकल चुका था।

चौथा अवगुण राजपूतों में यह था कि वे धर्म के तत्त्व को कुछ नहीं समझते थे। जब मुसलमान आगे २ गौ करके लड़ते तो कोई गोवध होने के भय से न लड़ता। अथवा मुसलमान कूपों, तालावों और बावड़ियों में थूक देते तो भूखे प्यासे ही मर मिटते। शत्रु लोग इनकी रसद बन्द कर देते पर वे ऐसा करने में पाप जानते थे।

## पापी गुरु घंटाल देखो

और तो और पापियों ने यवनों से घूस खाकर पुराणों में यह भविष्य बाणी भी झाड़ दी कि कितने ही उपाय करो यवन राज्य तो शास्त्र में ही लिखा हुआ है। जिसका फल यह हुआ कि बिचारे राजपूतों का रहा सहा साहस भी जाता रहा अब विचारों ने प्राण देने ही में भला समझ लिया। ऐसा जान पड़ता है कि ऐसी बातें लिखने वाले वेद विरोधी स्वार्थी वामी थे। ब्राह्मण तो वह होते हैं जो देश और जाति के नाम पर मिट जाते हैं।

॥ ओ३म् ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## पांचवां-अध्याय

## यवन-काल

सन् १२०० ई० से १७०० ई० तक

### अत्याचार-दृश्य

भारतवर्ष में मुसलमानों के आक्रमण ८ वीं शताब्दी से ही आरम्भ हो गये थे। ५०० वर्ष तक इन लोगों को छोटे २ मंडलेश्वरों ने ही आगे न बढ़ने दिया। पर इस ५०० वर्ष में जैसे २ अत्याचार किये उनके सामने पीछे के अत्याचारों को दयालुता ही कहा जा सकता है। कुछ दिनों तक इन्होंने एक चालाकी से काम लिया कि एक राजा को अपना मित्र बनाकर उसकी सहायता से दूसरे लोगों के राज्यों को लूटा करते और पीछे से उसकी भी सुध लेते, सो सिन्ध देश में ऐसा ही किया था। जब लोगों को इनकी इस धूर्त्तता का ज्ञान हुआ तो फिर सब चौकन्ने होगये। मुसलमानों ने अब यह जानकर कि राजपूतों की वीर जाति को युद्ध में परास्त करना तो बहुत टेढ़ी खीर है, इस लिये अब दूसरी चाल चला। आर्य्य-जाति के सभ्यता पूर्ण युद्ध

नियमों से इन लोगों ने अनुचित लाभ उठाया। भारतवर्ष के लोगों को आज तक हूणों को छोड़ किसी ऐसी जाति से युद्ध करने का अवसर नहीं मिला था, जो इन लोगों की भाँति युद्ध नियमों का उल्लंघन करती हो। सम्पूर्ण मुसलमानों के इतिहास में हुमायूं और अकबर को छोड़ कोई भी बादशाह ऐसा न मिलेगा जिसने युद्ध के नियमों का उलंघन न किया हो।

इनके विरुद्ध राजपूतों में यह मर्यादा थी कि चाहे सर्वस्व नष्ट हो जावे, पर धर्म उलंघन कभी नहीं हो सकता। राजपूतों में एक नियम अब तक पाया जाता है कि यदि कोई उनको लड़ने की सूचना न दे तो वे हथियार कभी नहीं उठाते। उनका यह प्रण था और अब भी है कि गौ, ब्राह्मण के बध से यदि त्रिलोकी का राज्य भी मिले तो वे कभी ग्रहण नहीं करते।

मुसलमानों ने इन बातों से बहुत ही घृणित लाभ उठाया। वे जहाँ कहीं किसी धनी नगर अथवा मन्दिर का नाम गुप्तचरों से सुन पाते तो राज्यों की सीमा २ चल पड़ते, यदि इसमें भी कुछ भय प्रतीत होता तो बहुत सी गौ आगे कर लेते और जा लूटते। मूर्तियाँ तोड़ते मन्दिरों में गो बध करते, पुजारियों के मुख में गो माँस ठूसते। बहू बेटियों के सतीत्व को उनके पुरुषों के सामने नष्ट करते। इन में जो लोग गैरतमन्द होते वे तो इस पापियों को मारते और आप भी मर जाते। पर जो लोग निर्लज्ज, पापी, अधर्मी और कायर थे वे अपने गुप्त धन के भोग की लालसा में सब कुछ देखते रहते। इन में से बहुत से तो धनवानों और सुन्दर कन्याओं का पता बताते थे। मुसलमान लोग जब चलते तो अपने साथ धन माल के साथ २ बड़े २ उच्च कुलों की बहू बेटियाँ और सुन्दर लड़के लौंडी गुलाम बनाकर ले जाते और उनके साथ पाशविक कर्म करते। इन अत्याचारी लोगों का पहिला सेनापति मुहम्मद इब्नकासिम

अरब देश निवासी, और दूसरा महमूदग़ज़नवी और उसका सरदार मसऊद सालार था, इसकी क़ब्र पर आज भी निर्लज्ज, हिन्दू चढ़ावा चढ़ाते और सिर दे दे कर मारते हैं।

क्षत्री लोग ग्रह युद्ध में, ब्राह्मण, मतभेद में और वैश्य दूसरों का ख़ून चूसने में निमग्न थे जब अत्याचारों की कुछ सीमा न रही तो पंजाब का राजा खड़ा हुआ पर किसी ने उसका साथ न दिया और मारा गया। उसके मरने के पश्चात जब पंजाब यवनों के अधिकार में आगया तो राजपूतों की कुछ आंखें खुलीं और उन्होंने गृह युद्ध कम कर दिया और पापी मुसलमानों को मार पीट कर सिन्ध पार भगा दिया महमूद ग़ज़नवी से १५०वर्ष पीछे अर्थात ११८० ई० के पास राजपूतों का मुखिया दिल्ली का राजा पृथ्वी राज चौहान बना हिन्दू लोग तो सिन्ध पार जाते ही न थे इसलिये मुसलमान लोग ही निश्चिन्त हो अपनी रक्षा सामग्री सिन्ध पार रखकर आक्रमण करते थे। मुहम्मदग़ोरी ने भारत पर ९ धावे किये पर सब में हार कर गया ८ वें धावे में तो पृथ्वी राज ने उसको प्रतिज्ञा भंग करने के अपराध पर बुरी भांति परास्त किया यदि इस समय सिन्ध पार जाने का बन्धन न होता तो पृथ्वी राज खैबर घाटी पर अधिकार करके मुसलमानों के धावों का सदा के लिये झगड़ा काट देता पर पक्के राजपूत के लिये यह असम्भव था कि धर्माज्ञा का उल्लंघन करे।

मुहम्मद ग़ोरी ने बार २ की हार से तंग आकर भारत पर राज्य करने का विचार त्याग दिया था। पर इधर पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द में कई कारणों से द्वेष हो गया था। अन्त में बात यहाँ तक बढ़ी कि जयचन्द ने जलकर अश्वमेध यज्ञ करके अपने को महाराजधिराज बनाना चाहा, इसी अश्वमेध यज्ञ के साथ अपनी पुत्री के स्वयंवर की सूचना

भी दे दी। इस यश में पृथ्वीराज को अपना अधीन बनाया पृथ्वीराज को जब इस अपमान की सूचना मिली तो वह कन्नौज पहुँचा और जयचन्द की लड़की को जो पृथ्वीराज से ही प्रसन्न थी लेकर भाग आया। अब जयचन्द ने पृथ्वीराज के विरुद्ध चँदेलों, बुंदेलों और बघेले राजपूतों को उभार दिया। इस युद्ध में यह वीर सरदार तो नष्ट हो ही गये थे पर पृथ्वीराज की शक्ति भी क्षीण होगई थी। यवनों के दूत ताला सैयद ने जो बड़ा ही बना हुआ था चन्देलों से कई कार्य्य ऐसे निन्द्य कराये कि उनको राजपूतों ने जाति से गिरा दिया। जयचन्द ने जब इस से भी कुछ लाभ न देखा तो मुहम्मद ग़ौरी को बहुत बड़ी सहायता देने के बचन पर धावा करने के लिये लिखा। इस पत्र को देखते ही वह तुरन्त चल पड़ा, और दिल्ली के पास थानेश्वर के मैदान में आकर डेरे डाल दिये जयचन्द भी अपनी सेना लेकर आगया। पृथ्वीराज की सेना थोड़ी होने पर भी ऐसी प्रतापी थी कि ग़ौरी का साहस लड़ने को न हुआ और सन्धि की बातें करते २ अचानक आक्रमण करके खाते, पीते राजपूतों को जा काटा और कुछ मुसल्मानों ने पृथ्वीराज को निरस्त्र दशा में जा पकड़ा। जयचन्द उसके इस निन्द्य कार्य्य में सम्मिलित न हुआ। कुछ इतिहास लेखक यह भी लिखते हैं कि ग़ौरी ने कई कोस भाग जाने का धोखा दिया और जब देखा अब चौहानों की सेना वृक्षों की आड़ में अचेत पड़ी है तो तुरन्त धावा कर दिय। इस प्रकार ११९३ ई० में दिल्ली पठानों के अधिकार में आगई। ११९४ ई० में ग़ौरी ने जयचन्द पर भी धोखा देने का अपराध लगा कर धावा कर दिया। इस बार चौहानों और उनके मित्रों ने जयचन्द का साथ न दिया और वह मारा गया। पठानों ने फिर तो कन्नौज और बनारस में बड़े २ अत्याचार किये जिनको लिखते हुये हृदय

बड़ा दुखी होता है अन्त में जब अत्याचारों से उनका पेट भर गया तो ४००० ऊँट केवल रुपये अशरफी और रत्नों से भर कर काबुल में भेज दिये। इन पठानों ने ३०० वर्ष तक राज्य किया। इन लोगों से मुग़लों ने राज्य छीन लिया। इस जाति में बौद्ध मत के भी कुछ संस्कार थे इसलिये इन लोगों ने इतने अत्याचार नहीं किये अकबर बादशाह १६ वीं शताब्दी में इसी वंश में हुआ था। इसका प्रपौत्र औरंगज़ेब जो महा अत्याचारी और धूर्त्त था। १७ वीं शताब्दी में हुआ है। मुग़लों ने २५० वर्ष राज्य किया। दिल्ली के आस पास की भूमि को छोड़ कर सारे भारतवर्ष के राजा मराठे (दक्षिणी राजपूत) बन गये और पंजाब का देश सिक्खों ने छीन लिया। यदि यह लोग प्रेम और बुद्धि से कुछ भी काम लेते तो आज जाति क्यों किसी की दास होती।

## अत्याचार देखने वाला पापी है
## और
## अत्याचार सहन करने वाला महापापी है

लोग सदा दूसरों का ही दोष बताया करते हैं, वे अपने दोषों की ओर कुछ नहीं देखते। आंखों का नियम है कि वे सदा दूसरों को तो देखा करती हैं, पर अपने आपको नहीं देख सकतीं। पर जब उनको दर्पण की सहायता मिल जाती है तो अपने को भी देख लेतीं हैं। इसी प्रकार जब मनुष्य को ज्ञान दर्पण मिल जाता है तो उसे अपने दोष भी दिखाई देने लगते हैं। मनुष्यों ने वैदिक धर्म से मुख मोड़कर इस विषय को बहुत भ्रम मूलक बना दिया है संसार में कुछ मनुष्य तो ऐसे हैं जो आपत्ति का सारा दोष दूसरों के ही सिर धरते रहते

हैं। यदि उनको और भी किसी का नाम नहीं मिलता तो भाग्य, कलियुग, शैतान अथवा परमेश्वर को ही इसका दोषी ठहरा देते हैं।

एक और महा दंभी, धूर्त और बनावटी ईश्वर भक्त, छलिया धर्मात्मा और पक्के कायर होते हैं, जो अत्याचारी से इतना डरते हैं कि ये अपने मुख से पापी का पाप कहते हुये भी डरते हैं कभी तो यह दुष्ट लोग अपने दब्बूपन के कारण शत्रु की बड़ी प्रशंसा करते हैं, उसके साथ उदारता का परिचय देते हैं। वे सारी क्रियायें खोपड़ी बचाने के डर से करते हैं पर इसका फल उलटा होता है इस से अत्याचारी का साहस और बढ़ जाता है। इन कायर लोगों की इस समय तो कुछ गिन्ती ही नहीं है पर यवन-काल में भी इन्होंने शत्रुओं का साहस बहुत बढ़ाया था।

सर हेनरी अलियट लिखते हैं हिन्दू लोगों में ऐसे २ कायर लोग हैं जो अपनी जाति को तो हिन्दू और काफिर लिखते हैं और अपने शत्रुओं को डरके मारे मोमिन लिखते हैं। यह लोग पीरों और कब्रों का बड़ा सत्कार करते हैं। अपने बच्चों के मुख में थुकवाते हैं। जब कोई हिन्दू मरता है तो लिखते हैं दाखिले फ़िन्नार हुआ अर्थात् नरक में गया और जब कोई मुसलमान मर जाता है तो लिखते हैं कि जामे शहादत नोश फ़रमाया यह लोग अपने ग्रंथों में मुहम्मद अली आदि की बड़ी प्रशंसा लिखते हैं भोजन करते समय बिसमिल्लाह कहते हैं। यह वह निर्लज्ज थे जो यह समझते थे कि मुसलमानों की भांति अपनी बोल चाल, रंग, ढंग और स्वभाव बनाकर हम भी बड़ी गिन्ती में गिने जावेंगे। यह वह मूढ़ थे जो बाह्य बातों पर जान देकर संसार की लहर में बहकर अपने

भाइयों को नीच समझने लगते हैं। यह वह पापी मनुष्य थे जिनमें देश जाति और धर्म के प्रति कुछ श्रद्धा नहीं थी।

तीसरी कोटि के मनुष्य वे हैं जो आपत्ति अथवा अत्याचार को देखकर अपनी निर्बलता को दूर करके फिर अत्याचारी को पूरा २ दंड देते हैं।

संसार में यही मनुष्य जीवित रह सकते हैं यही कुछ उन्नति कर सकते हैं।

## आपत्ति क्यों आती है

आर्य्य ग्रन्थों में तीन प्रकार के दुःख बताये हैं और तीन ही उनके कारण बताये हैं।

(१) अध्यात्मिक दुःख—वे दुःख हैं जो अपने असंयम से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् जो मनुष्य की ही भूल से सम्बन्ध रखते हैं।

(२) आधिभौतिक दुःख—वे दुःख हैं जो कि संसार के दूसरे प्राणियों से सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् जिन दुःखों का कारण दूसरे ही प्राणी होते हैं।

(३) आधिदैविक दुःख—वे दुःख जिनमें न स्वयं मनुष्य की भूल कही जा सकती है न जो दूसरे ही प्राणियों से सम्बन्ध रखते हैं।

अर्थात् अचानक किसी आपत्ति का आ जाना यह चक्र बड़ा विकट है। आपत्ति सदा एक ही कारण से नहीं आती, कभी इनमें से तीनों और कभी कोई दो कारण एकत्र हो जाते हैं। जिन दुःखों को हमने अचानक नाम दिया है वे अकारण ही नहीं आ पड़ते वरन वे भी एक नियम में बंधे हुये होते हैं। मनुष्य पर जब कोई दुःख आ पड़ता है, उसमें उसका अपराध अवश्य होता है। अध्यात्मिक और आधिदैविक दुःख तो आते

ही मनुष्य के कर्मों के कारण हैं पर आधिभौतिक दुःखों में भी उसका ही अपराध होता है। यदि वह बलहीन न होता तो अत्याचारी अत्याचार कर ही नहीं सकता था अर्थापत्ति से सुख के कारण भी यही हैं।

इसीलिये शास्त्र कहता है कि—

(१) अत्याचार को देखने वाला पापी है।

(२) अत्याचार सहने वाला महापापी है।

(३) धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

यह निश्चय रखना चाहिये कि कोई प्राणी अकर्मण्य-कायर और स्वार्थी बनकर कभी संतोष के साथ नहीं जी सकता जिस मनुष्य में ये अवगुण हैं, उनके लिये राजसभा वा जाति जितने कठिन दंड दें वे थोड़े हैं और यदि वे न दें तो स्वयं आपत्ति का मुख देखेगा। संसार में यह अनोखी बात है कि जो अपने ऊपर आपत्ति लेता है उसी को सुख मिलता है।

## देश का सत्यानाश कर्त्ता कौन

लोगों में एक कुपत्ति का प्रचार बहुत हो गया है कि वे किसी व्यक्ति के दोष को सम्पूर्ण समाज के सिर मँढ़ देते हैं, यह जहाँ अन्याय की बात है वहाँ साथ ही परस्पर द्रोह भी उत्पन्न करती है। यदि एक ब्राह्मण ने यवनों से मिलकर जाति को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाई तो इससे सारे ब्राह्मणों को कहना ठीक नहीं है। यदि एक जयचन्द ने यवनों को सहायता दी तो इस से सारे राठौर वंश को अपमानित करना मूर्खता है। यदि एक जैनी ने शंकर स्वामी को विष दे दिया तो इससे सारे जैनियों को पापी कहना महापाप है। किसी विशेष जाति को बुरा कहने में मूर्ख लोग नेताओं की होड़ करने लगते हैं। पर उनको यह समझ नहीं कि उन्होंने उस जाति के लिये अपने प्राण भी तो अर्पण करदिये थे।

# यवन काल के महापुरुष

## पतित पावन के प्रिय पुत्र परम पूज्य स्वामी रामानन्दजी महाराज

जब यवनों के अत्याचार बहुत ही बढ़ने लगे और आर्य्य जाति दिन पर दिन घटने लगी तो वैष्णव मत में एक महा-विद्वान् और तत्वज्ञानी महापुरुष इनके रोकने को खड़े हुए। उनका शुभ नाम स्वामी रामानन्द है, आप १३४० ई० के आस पास उत्तरी भारत में हुये हैं, काशी में आपका आश्रम था, आपने सोचा कि जो नियम धर्म के लिये बनाये थे, वे रक्षा के लिये पूर्ण पर्याप्त नहीं हैं। उन्होंने इस बात को भी ताड़ लिया कि उन सब बन्धनों का तोड़ना भी ठीक नहीं है। इसलिये स्वामीजी ने बड़ी जातियों से तो कुछ नहीं कहा, पर आपने उच्च कुलीन वैष्णव ब्राह्मण होते हुये भी अछूतों और यवनों को हृदय से लगाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने घोषणा कर दी कि जिस मनुष्य में धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा देखी जावेगी उसी को हम लोग अपने मत में मिला सकते हैं। मूर्खों ने इसका बड़ा विरोध किया, पर स्वामीजी ने उनकी एक न सुनी और बराबर प्रचार करते रहे। इन अज्ञानियों ने स्वामीजी का नाम वामानन्द रख दिया। सन्यासी ने इस अपमान को बड़े ही हर्ष के साथ सहन किया। मुसलमान तो खुदा से चाहते थे कि किसी प्रकार यह छूत टरे, पर स्वामीजी ने इस युक्ति से प्रचार किया कि जिस से उनकी बात न चली। जब छोटी और पद दलित जातियों ने धर्म द्वार खुला देखा तो वे लगातार आने लगीं। स्वामीजी ने धर्म प्रचार के लिये अपने १२ चेले बनाये जिनमें से ६ प्रसिद्ध चेले यह हैं।

(१) कबीर जुलाहा (२) रैदास चमार (३) धन्ना जाट (४) सैना नाई (५) जैदेव (६) नाभादासजी। स्वामीजी अपने समय में संस्कृत के एकही पंडित थे पर सर्व साधारण के लाभ के लिये अपने ग्रन्थ भाषा में ही लिखे थे। स्वामीजी के प्रचार का देश पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सारे देश में किसी न किसी रूप में यही मत फैल गया। स्वामीजी ने जिस युक्ति से प्रचार किया वह उस समय के लिये सर्वथा उचित था। स्वामीजी वैसे तो बहुत ही आचार विचार से रहते थे पर मनुष्य से बचाव करने को वे बहुत ही बुरा समझते थे अपने शिष्य रैदास के पास बैठे रहते थे, और वह जूते बनाता रहता था।

## स्वामीजी के सिद्धान्त

(१) ईश्वर भक्ति के द्वारा सब जाति के मनुष्यों का कल्याण होता है।

(२) मूर्ति पूजा कोई आवश्यक नहीं है।

(३) ईश्वर एक और सर्व व्यापक है।

(४) जाति भेद और छूत छात का धर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह केवल सामाजिक बातें हैं, जिनको तोड़ा भी जा सकता है।

(५) मनुष्य चाहे कुछ व्यवसाय करता रहे कुछ बुराई नहीं, बुराई केवल अधर्म से धन जोड़ने में है। जो मनुष्य अपने पेशों को त्यागकर दूसरों के पेशों को ग्रहण करता है, वह पापी है। इस से असंतोषाग्नि फैलती है।

## महात्मा कबीरदासजी

यह महात्मा १३८० में एक विधवा ब्राह्मणी के पेट से काशी जी में पैदा हुये, दुखिया माता ने जाति के भय से जंगल में

रख दिया। नूरी नाम के जुलाहे ने उठाकर इनका पालन किया बचपन ही से बड़े धर्मात्मा, दयालु, सच्चे और सर्व प्रिय थे।

महात्माजी ने हिन्दू मुसलमानों के मत की बुरी बातों का बड़े तीखे शब्दों में खंडन किया है। कबीर अपना प्रचार गीत और भजनों में गा २ कर किया करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके चेलों ने उनको एकत्र करके ग्रन्थ का रूप दे दिया उनके १२ चेलों ने कबीर मत के १२ सम्प्रदाय बनाकर कबीरजी के नाम से कई ग्रन्थ भाषा में रच मारे।

पौराणिक मत को मानने वाले कहा करते थे कि काशी में मरने से स्वर्ग और मगहर में मरने से नरक मिलता है। कबीरदास लोगों के इस भ्रम को दूर करने के लिये अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मगहर चले गये थे। कहते हैं कि १४२० ई० में उनकी मृत्यु पर हिन्दू मुसलमानों में बड़ा झगड़ा हुआ। पर चादर उठाकर जो देखा तो वहाँ मृतक शरीर का पता भी न था। कुछ थोड़े से फूल रक्खे हुये मिले। दोनों पक्षों ने उन फूलों को परस्पर बांट कर अपने २ मतानुसार अन्त्येष्टि संस्कार किया।

कबीरदासजी को धर्म के प्रचार के लिये धर्म दास नाम के सेठ ने बहुत सा धन दिया था। महात्माजी ने हिन्दू मुसलमानों को एक करने का बहुत यत्न किया पर इस में वे सफल नहीं हुये।

## महात्माजी के सिद्धान्त

(१) ईश्वर सब जगह रहता है, वह किसी विशेष स्थान मन्दिर अथवा मसजिद में नहीं रहता। उसकी भक्ति परम धर्म है।

(२) जो जैसा करेगा उसको आवागमन में आकर फल आ कर भोगना पड़ेगा।

(३) अहिंसा परम धर्म है, पशु वध पाप है।

(४) ईश्वर या किसी देवता की मूर्ति का पूजना महा पाप है।

(५) ज्ञाति भेद और छूत छात बिल्कुल व्यर्थ है।

## योगीराज गुरू जम्भदेवजी

आपका जन्म १४५१ई० में जोधपुर राज्य में नागोर से १६ कोस उत्तर पीपासार ग्राम के पंवार वंशीय क्षत्री लोहटजी के घर में हुआ। इनकी माता का नाम हंसा था। बचपन ही से आपका स्वभाव महापुरुषों का सा था ३४ वर्ष तक आपने विद्याध्यन किया। इसके पीछे अपना सारा जीवन ब्रह्मचर्य्य योगाभ्यास और धर्म प्रचार में व्यतीत किया। आप के समय में महानिर्दयी बादशाह सिकन्दर लोदी राज्य करता था। इस ने एक ब्राह्मण को केवल इसी अपराध पर प्राण दंड दिया था कि उसने हिन्दुओं के और मुसलमानों के दोनों के मतों को अच्छा कह दिया था। जब इस पापी ने सुना कि जम्भदेव नाम के योगी, मुसलमानों को अपने मत में मिला लेते हैं तो इनको बन्दी करके नाना प्रकार के कष्ट दिये पर महात्माजी ने योग बल के द्वारा सब निष्फल कर दिया। इस चमत्कार को देखकर यह पापी भयभीत हुआ। और बहुत ही अपने अपराध की क्षमा मांगी। दिल्ली में जब जब वह दर्बार के सामने वाले उस भवन को देखता जिस में गुरुजी को बन्दी कर रक्खा था तो वह आप से आप कांपा करता था, इसलिये इसने अपनी राजधानी दिल्ली से उठाकर आगरे में बनाई। और अपने अत्याचार भी कम कर दिये।

आपका चलाया मत विश्नोई पन्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यह मत बहुत सी बातों में आर्य्यसमाज से बहुत मिलता जुलता है पर बहुत सी बातें देश, काल के भेद से नवीन भी रखनी पड़ी थीं। पर वे बातें गौण हैं। इस मत के २६ नियम हैं जो सब के सब मनुस्मृति से लिये गये हैं। यह मत पञ्जाब राजस्थान और संयुक्त प्रांत में जहाँ तहाँ पाया जाता है। भारतवर्ष के सम्पूर्ण मतों में जितना यम, नियम का पालन इस मत में होता है, उतना किसी मत में नहीं होता। पर अब कुछ बुराइयाँ भी आने लगीं हैं। इस मत के संस्कार बाल ब्रह्मचारी, साधु, महन्त और ब्राह्मण दोनों ही कहाते हैं। गुरूजी ने धर्म प्रचार के लिये मारवाड़ी भाषा में जम्भसागर नाम का एक बड़ा ग्रंथ लिखा था। इस मत में दूसरे मत के हिन्दुओं से तो छूत छात है पर परस्पर नहीं हैं हाँ जाति भेद अवश्य है।

यह भारतवर्ष के सम्पूर्ण मतों में आर्य्य समाज को अधिक आदर देते हैं।

## विश्नोई मत के सिद्धान्त

( १ ) पञ्चमहायज्ञ करना ही परम धर्म है।

( २ ) मूर्तियों, क़ब्रों, पत्थरों और मकामों का पूजन महा पाप है।

( ३ ) जाति भेद में कुछ हानि नहीं, परस्पर छूत छात को मत मानो।

( ४ ) यम, नियमों का पालन करो।

( ५ ) प्रत्येक मनुष्य को हमारे मत में आने का अधिकार है।

## विशेष

जाति भेद के कारण दूसरे मत के लोग इस मत में नहीं आसकते।

# महाराज चेतन्न गुरूजी

आपका जन्म १४८६ ई० में बंगाल देश के प्रसिद्ध नगर नदियाशान्तपुर में एक कुलीन ब्राह्मण के घर में हुआ था। दया के सिद्धान्त में आपको दूसरा बुद्ध कहा जाता है।

बंगाल के सूबेदार सैयद हुसेन के दो नाती आपके उपदेश से प्रभावित होकर इनके शिष्य होगये। उनका नाम गुरूजी ने रूप और सनातन रक्खा। पाँच पठान डाकू जो गुरूजी को लूटने और मारने के विचार से आये थे, इनके उपदेश से शिष्य बन गये। अपने अन्तिम जीवन में गुरूजी धर्म प्रचार का भार अपने प्रधान शिष्य रूप, सनातन, नित्यानन्द और अद्वितीयाचार्य्य को सौंपकर चोला स्थान में योगाभ्यास करने लगे।

गुरूजी की मृत्यु १५२७ ई० में हुई। मरने के पश्चात् लोगों ने इनको विष्णुजी का अवतार मानकर पूजन किया।

गुरूजी का मत वैष्णव धर्म और बौद्ध धर्म का मिश्रण है। यह विष्णुजी और जगन्नाथजी दोनों की उपासना का उपदेश देते थे। ब्रह्म समाज से पहिले बंगाल में इस मत की बहुत चरचा थी। यह मत, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और संयुक्त प्रान्त में फैला हुआ है। अपने समय में गुरूजी ने धर्म की बड़ी रक्षा की। आप आदर्श प्रचारक थे।

महात्मा गाँधी के जीवन की बहुत सी बातें गुरूजी के जीवन से मिलती हैं।

## गुरूजी के सिद्धान्त

(१) ईश्वर भक्ति से सद्गति मिलती है।

(२) अहिंसा ही परम धर्म है।

(३) परमेश्वर अवतार लेता है, विष्णु भगवान् और जगन्नाथजी की उपासना करनी चाहिये।

(४) जाति भेद और छूत छात का धर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है।

(५) सदाचार से मनुष्य ऊंचा और दुराचार से नीच बनता है।

## वल्लभस्वामीजी

स्वामीजी का जन्म १५३५ ई० में हुआ था, आप बड़े ही तत्व ज्ञानी महापुरुष थे। आपने देखा कि बहुत से मनुष्य यवन-काल के अहित्त झगड़ों के भय के मारे मूड मुंडाकर साधु बन जाते हैं, जिसका यह दुष्परिणाम होता है कि उनके बाल बच्चे मारे २ फिरते हैं दूसरे यह कि पुरुषों की कमी से एक तो बहुत सी जातियों में स्त्रियों की वैसे ही बहुतायत है, यदि पुरुष इस प्रकार गृहस्थ से बचने लगे तो और भी बड़ा अनर्थ होगा।

इस बात को हम पीछे प्रकट कर चुके हैं कि शंकरस्वामी के निवृत्ति मार्ग ने भिखमंगों की संख्या वृद्धि की जड़ किस प्रकार जमा दी थी। ७०० वर्ष के पश्चात् यह हुआ कि देश में इन लोगों की बहुत बड़ी संख्या हो गयी। स्वामीजी ने इस बुराई को दूर करने के लिये यह उपदेश दिया कि भगवान् कृष्ण त्यागी लोगों से बहुत ही अप्रसन्न होते हैं, वे तो बस उन्हीं लोगों से प्रसन्न होते हैं जो संसार के पदार्थों को प्रेम पूर्वक भोगते हैं। स्वामीजी के पश्चात् लोगों में विषय भोग और व्यभिचार की मात्रा खूब बढ़ गई। भोले लोगों ने रास लीला देखने और गृहस्थ में सड़कर मरने को ही मुक्ति का मूल कारण समझ लिया। सच बात है, मूर्खों के लिये संसार के सम्पूर्ण पदार्थ दुखदाई हैं और ज्ञानियों के लिये सम्पूर्ण पदार्थ सुखदाई हैं। जो भोले भाई स्वामीजी की शिक्षा को बुरा

कहते हैं वे अच्छा नहीं करते। कहा जाता है कि विजयनगर के प्रसिद्ध राजा कृष्ण की राजसभा में शैवों और वैष्णवों में एक भारी शास्त्रार्थ हो रहा था उसमें वल्लभस्वामी ने ऐसा कार्य्य किया कि वैष्णवों ने उनको आचार्य्य की पदवी देकर विष्णु स्वामी की गद्दी का उद्धार कर्तव्य-भार उनको सौंपदिया। स्वामीजी ने अपनी गद्दी गोकुल में रक्खी उनका दार्शनिक सिद्धान्त रामानुज से भिन्न और विष्णु स्वामी से मिलता हुआ था। १५८७ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है।

## सिक्ख-मत

सम्राट बाबर के समय में १६ वीं शताब्दी में गुरू नानकदेव नाम के एक महात्मा हुये आपने रोड़ी साहब ज़ि० गुजरानवाला पंजाब प्रान्त में अपनी प्रतिष्ठित सरकारी नौकरी को त्याग कर योगाभ्यास किया, और फिर लोगों में ईश्वर के प्रति अश्रद्धा देखकर भक्ति मार्ग का प्रचार किया। इसी शुभ कार्य्य के लिये, पंजाबी भाषा में एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा, जिसको ग्रन्थ साहब कहते हैं। इस ग्रन्थ में कबीर मत और विश्नोई मत की बातें लिखी हुई हैं। गुरूजी का अभिप्राय यह न था कि वे अपने नाम से कोई नवीन मत चलावें, इसी लिये उन्होंने अपने मत को मानने वाले लोगों का नाम पंजाबी भाषा में सिक्ख (शिष्य) रक्खा।

गुरूजी ने इस उद्देश्य से कि यह प्रचार कार्य्य बराबर होता रहे, एक योग्य महात्मा को अपना उत्तराधिकारी बनाया और गुरु की पदवी दी। इसी प्रकार उत्तरोत्तर ८ गुरू और बनाये गये। दसवें गुरूगोविन्द्सिंहजी ने इस विचार से कि आगे चलकर लोग स्वावलम्बी विचारवान् और तत्ववेत्ता बनें, वे अपनी बुद्धि को किसी एक मनुष्य के अर्पण करके

गुरु गोविंदसिंह

पृष्ठ २५२

SHUKLA PRESS, LUCKNOW.

अन्य मतों की भाँति गढ़े में न जा पड़े। अपना कोई भी उत्तराधिकारी न बनाया। वरन् ग्रन्थ साहब को ही गुरू की पदवी दी। और इसके साथ ही योग्य मनुष्यों की एक समिति इसीलिये बनाई कि जिसके निश्चय करने पर सारे कार्य्य चलें इस समिति को गुरुमाता के नाम से पुकारा जाता है। यदि हम भूल नहीं करते तो यह बात ठीक है कि संसार में गुरू-गोविन्दसिंहजी ही सब से पहिले महापुरुष हुये हैं कि जिन्होंने अपने मत वालों को अन्धविश्वास और गुरू उभय परस्ती से बचाने का प्रयत्न किया था जिनको इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि मनुष्य चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो वह भूल अवश्य कर सकता है। उन्होंने संसार को अवैदिक अवस्था में इस बात का उपदेश दिया कि वही बात मानने योग्य है जिसको धर्म पुस्तक और बुद्धि दोनों स्वीकार करें गुरुजी बहुत ही योग्य होते हुये भी बिना सम्मति लिये किसी कार्य्य को नहीं करते थे। तत्त्वज्ञान सहित क्षात्र धर्म की पूर्णता रामचन्द्र और कृष्ण भगवान के पश्चात् इस संसार में यदि कुछ देखी जाती है तो वह गुरूगोविन्दसिंह के पवित्र जीवन में ही दिखाई देती है। गुरूजी के जीवन की एक २ घटना मनुष्य के जीवन को पलट देने वाली है।

## सिक्ख मत के सिद्धान्त

(१) ईश्वर भक्ति ही परम धर्म है।

(२) यम नियम का पालन करो।

(३) परस्पर छूत छात ठीक नहीं है।

(४) मूर्त्ति और क़ब्रादि जड़ पदार्थों का पूजन महापाप है।

(५) ईश्वर किसी विशेष स्थान पर नहीं रहता वह सर्व व्यापक है और सब मनुष्य उसकी उपासना से उच्च बन सकते हैं।

# सिक्ख से किस प्रकार सिंह बने

## उबलते हुये जीवित रक्त की तरंगें

१७ वीं शताब्दी में जब महापापी औरंगज़ेब अपने पिता को कैदकर, भाई, भतीजों को मारकर बादशाह हुआ तो उसने अपने बाप, दादों के विरुद्ध हिन्दुओं के साथ बहुत अत्याचार किये। कायर दब्बू और निर्लज्ज हिन्दू अपने भाग्य का खोट अलापते हुये यह सब पाप अपनी आंखों से देखते रहे। पर अपने हृदय में उबलते हुये जीवित खून को रखने वाले सपूतों ने पापियों को दंड देने की जी में ठान ली।

इन सपूतों में राजर्षि गुरु गोविन्दसिंहजी का पवित्र नाम विश्वास के सुवर्ण जल से हृदय पट पर मोटे २ अक्षरों में लिखने योग्य है। यह एक नियम है कि पापी मनुष्य का हृदय चैन से कभी नहीं रहता। उसको तो निर्भयता में भय और सुख में दुःख दिखाई देता है। इसी नियम के अनुसार औरंगज़ेब ने जब देखा कि इन सिक्खों में बड़ा धार्मिक उत्साह है तो उसको भोले भाले ईश्वर भक्त सिक्खों से भी विद्रोह की गन्ध आने लगी। उसने अकारण ही आज्ञा दी कि भविष्य में तुम लोग एकत्र होकर कोई ऐसा कार्य्य मत करो जिससे ज्ञात हो कि तुम अपना एक संघ बनाते हो।

इस समय के गुरु श्री तेगबहादुरजी थे। उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग अपने धार्मिक कृत्यों को कदापि नहीं रोक सकते इस उत्तर के पाते ही पापी ने गुरुजी को बन्दी करके पकड़ मंगवाया और अंत में जब उन्होंने उसकी बात को न माना तो उनको मरवा डाला। उनके उत्तराधिकारी गुरुगोविन्द हुये। उन्होंने गद्दी पर बैठते ही सम्पूर्ण सिक्खों को बुलाकर कहा, कि प्यारे पुत्रो! इस समय तुम्हारे सामने दो ही प्रश्न हैं चाहे

तो तुम डर के मारे घरों में घुस जाओ और चाहे अपने धर्म की रक्षा के लिये खड़े हो जाओ। इस पर सिक्खों ने कहा महाराज इन बहुत ही भयङ्कर मुसलमानों से हम कैसे लड़ सकते हैं। युद्ध में यह लोग यदि हमारा धर्म बिगाड़ देंगे तो हम किसी भी दीन के न रहेंगे। महाराजजी ने जब शास्त्र में यवनों के अत्याचार और उनका राज्य ही लिखा है तो हमको उसमें बाधक होकर पापी बनना ही ठीक नहीं है।

गुरुजी ने कहा प्यारे पुत्रो तुम बहुत ही भोले हो, तुम उस सिंह के बच्चे समान अपने आपको नहीं समझते जो बचपन ही से भेड़ों में रहने के कारण अपने आपको भेड़ ही समझता है। निश्चय रक्खो जो मनुष्य देखने में वीर जान पड़ता है वह वीर नहीं होता, वह एक ऐसे मनुष्य के समान है जो क्रोध में भरकर लाल चेहरा किये काँप रहा है पर वैसे वह थोड़े से धक्के से परे जा पड़ता है। पापी में बल कहाँ उसको तो पाप ही भून खाता है। वह तो दीनों के साथ अत्याचार दिखाकर ही अपनी वीरता दिखाया करता है।

धर्म किसी दूसरे के बिगाड़ने से नहीं बिगड़ा करता है वह तो अपने आप बिगाड़ने से बिगड़ा करता है धर्म का इन बातों से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह तो मूर्खों की मूर्खता है।

शास्त्रों में ऐसी बातें लालची ब्राह्मणों ने मुसलमानों से घूस खाकर लिख दी हैं इन बातों पर विश्वास करना ही पाप है।

## गुरुजी की नवीन आज्ञा

(१) आज से हम आज्ञा देते हैं कि सम्पूर्ण सिक्ख लोग पञ्च ककार अर्थात् केश, कंघा, कच्छ, कड़ा और कृपाण धारण किया करो।

(२) अपने वीर्य्य की रक्षा और व्यायाम करो और पुष्ट पदार्थों का भोजन करो॥

(३) अपने साथ वाराह का दांत रक्खो तुम इसे जिस पदार्थ पर फेर दोगे वही पवित्र होजावेगा।

(४) यदि तुम्हारा जी चाहे तो मांस भी खा सकते हो पर माँस का अधिक सेवन मत करो नहीं तो इससे बहुत हानि होगी।

(५) नित्य प्रति गुरुद्वारों में जाकर ईश्वर की उपासना करो और अपने पूर्वजों की जीवनी का उपदेश लिया करो।

## पञ्चाज्ञा-रहस्य

### प्रथम-आज्ञा

(१) केशों के रखने से पहिला लाभ तो यह है कि वे ईश्वर ने ही किसी विशेष उद्देश्य से बनाये हैं। जो लोग खोपरी को आये दिन घुटवाते रहते हैं, उनके सिर में फोड़े फुंसी भी बहुत निकला करते है। दूसरा लाभ केशों से यह है कि वे जहाँ मास्तिष्क की सरदी गर्मी से रक्षा करते हैं, वहां केशों में यह भी विशेषता है कि उन पर किसी हथियार की चोट भी सहज में नहीं लगती। तीसरा लाभ इनसे यह है कि युद्ध में बाल बनवाने का अवसर भी नहीं मिलता, जिन लोगों को केवल तीसरे दिन दाढ़ी खुरचने की बान होती है, यदि वह ठीक समय पर न खुचें तो खुजली उठने लगती है, किसी काम में जी नहीं लगता, मनुष्य अपने आपको स्वयं घृणित समझने लगता है और यदि कभी खड़े हुये नवीन बालों पर पसीना लग जाता है तो उनमें आग सी लग जाती है। भला युद्ध में जिस मनुष्य का चित्त इस प्रकार अशान्त हो वह क्या कर सकता है। वहाँ तो एक ही हाथ के चूकने से सिर धड़ से अलग होजाता है।

प्राचीन क्षत्रियों में भी यही नियम था पर बौद्ध काल में इस घुटाई ने घर घेरा है। आर्ष ग्रंथों में इस घुटाई के ऊपर कुछ भी जोर नहीं दिया यह बात देश काल और पात्र के ऊपर

छोड़ दी हैं। ऋषियों ने जो मुंडन संस्कार रक्खा है उसका उद्देश्य यह नहीं है कि अब सदा मुंडन ही होता रहे। बच्चे के गर्भ के बालों के मूंडने में एक बहुत बड़ा लाभ है। बालों में यह गुण होता है कि वे मूंडने से कुछ बलवान हो जाते हैं। इस बात का अनुभव तो सभी सज्जनों ने किया है कि गुप्त स्थानों का मुंडन करने से काम शक्ति बढ़ जाती है। वीर मनुष्यों का सब से बड़ा चिह्न यह है कि उनमें फैशन नहीं होना चाहिये जो मनुष्य बहुत फैशन से रहते हैं वह प्रायः कायर और व्यभिचारी होते हैं।

(२) कंघा बालों की रक्षा के लिये आवश्यक वस्तु है नहीं तो जूंव पड़ने का भय लगा रहता है।

(३) कच्छ से काम-शक्ति दबती और शरीर चुस्त रहता है।

(४) कड़े से हाथ की रक्षा होती है, उसको कुछ ऊपर चढ़ा लेने से हाथ तन जाता है।

(५) कृपाण मनुष्य की रक्षा के लिये एक आवश्यक वस्तु है। मनुष्य के हाथ में रहने मात्र से शत्रु काँपते हैं। जिस समय सब लोगों पर हथियार रहते थे, उन दिनों आज की भांति बात-२ में युद्ध नहीं होते थे। लोग प्रत्येक कार्य बहुत सोच समझकर करते थे। जहाँ लड़ाई के भयङ्कर परिणाम का भय नहीं होता वहाँ आये दिन परस्पर लड़ाई होती रहती हैं। रियासतों में परस्पर इतने झगड़े नहीं होते जितने बृटिश राज्य में होते हैं क्योंकि वहाँ पर सब के पास हथियार होते हैं। मनुष्यों में परस्पर प्रेम रखने के लिये यह आवश्यक है कि वे सब हथियार रक्खें।

## दूसरी आज्ञा

शरीर को पुष्ट बनाने के लिये जिन पाँच बातों की आवश्यकता है उनमें से यह ब्रह्मचर्य व्यायाम और पुष्ट भोजन बहुत ही

आवश्यक हैं। जन्म तो किसी के वस का नहीं; प्राणायाम को सब लोग ठीक २ नहीं कर सकते। इसलिये उनके रखने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

## तीसरी-आज्ञा

मुसलमान लोग सूकर को बहुत ही अपवित्र समझते थे, यदि किसी प्रकार इस जीव का कोई अंग भी छू जावे तो भोजन तो किसी योग्य ही नहीं रहता, और यदि शरीर से लग जावे तो जब तक बहुत ही कठिन प्रायश्चित न किया जावे शुद्धी ही नहीं होती। वैदिक-धर्म का यह सिद्धान्त है कि माँस मत खाओ क्योंकि मांस विना हिंसा के नहीं मिलता। उसके साथ ही यह भी आज्ञा है कि प्रजा को कष्ट देने वाले जीवों को मार सकते हो। वे पशु दो प्रकार के होते हैं, एक वह जो खेती बाड़ी को नष्ट कर देते हैं, दूसरे वे जीव जो शरीर को भी हानि पहुँचाते हैं। शरीर को हानि पहुँचाने वाले जीवों को मारना प्रधान है और खेती को नष्ट करने वाले जीवों को मारना इतना आवश्यक नहीं है। हाँ यदि उन से पूरा २ भय हो तो कुछ हानि भी नहीं है। क्या आश्चर्य्य है कि अवैदिक काल में जहाँ सब जातियों को कर्तव्य बांटे गये वहाँ नट, कंजर, भाँत, गदिये लोगों को इन छोटे २ हानिकारक पशु साँप गीदड़ शशा आदि का मारना ही ठहरा दिया हो। वर्त्तमान मनुस्मृति में इन लोगों को व्रात्य क्षत्री ही नाम दिया है।

हरिण एक ऐसा जीव है जो खेती को भी बहुत हानि पहुँचाता है और उसके चर्म में रोगों के लिये कई गुण भी अच्छे हैं। क्या आश्चर्य्य है कि लोगों ने इसी लिये इस जीव का मारना बुरा न समझा हो और इसी लिये इसके चर्म को भी पवित्र माना हो। सारे जीवों में सूकर एक ऐसा जीव है

जो मनुष्य के शरीर को भी बहुत कष्ट पहुँचाता है और खेती को तो नष्ट ही कर डालता है इसलिये इस जीव को मारना कुछ अनुचित नहीं है।

सारे लेख का सार यह निकलता है कि सूकर को मारना और उसके किसी अंग को अपने उपयोग में लाना वैदिक-धर्म से कुछ सम्बन्ध अवश्य रखता है। इन सब बातों को विचार कर सिक्खों को पक्का बनाने और यवनों को डराने के लिये राजर्षि गुरू ने दांत को पवित्र ठहराया। इसी से यवन लोग सिक्खों के सामने चूं नहीं करते थे।

## चौथी-आज्ञा

किसी भी मत ने माँस भक्षण को आवश्यक नहीं बतलाया, जहाँ कहीं लिख भी दिया है तो उसे आपद्धर्म के रूप में ही लिखा है पर इस पर भी संसार में माँस का इतना प्रचार है कि कुछ ठिकाना नहीं। कुछ देश तो ऐसे हैं कि वहाँ के मनुष्यों को और कुछ भोजन ही नहीं मिलता यदि वे माँस न खावें तो जीना दुर्लभ हो जावे। उत्तरी एशिया में जब सामोयडी जाति के मनुष्य बर्फ की आँधी के चलने से आखेट स्थानों पर नहीं जा सकते तो वे भूख से व्याकुल होकर इसी प्रकार मर जाते हैं जिस प्रकार अन्य देशों के लोग अकाल से पीड़ित होकर मर जाते हैं। आज कल जितनी जातियाँ मांस खाती हैं, सभी इस प्रकार विवश नहीं हैं। जो मनुष्य विवश हैं उनके लिये कुछ भी पाप नहीं होता। माता, पिता, गुरू और ब्राह्मण को मारना महा पाप है, पर जब इन लोगों से, किसी बड़े भारी अनर्थ के होने का भय होता है तो उन्हें मारना ही महा धर्म हो जाता है गुरूजी ने ऐसे ही अवसरों के लिये माँस खाने की आज्ञा दी थी। भूख ऐसी वस्तु है जिस के कारण मनुष्य जो कर डाले सो थोड़ा है। यहां तक देखा गया है कि मनुष्य भूख में अपने प्यारे बालकों को भी खा

जाते हैं। संसार में यह जो कुछ पाप, पुण्य, युद्ध और प्रेम आदि कार्य्य हैं सब के मूल में यही भूख लगी हुई है, इस भूख को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। हम ने ऐसे मनुष्य देखे हैं कि जो मांस को देखते ही वमन करने लगते हैं, चाहे उनके प्राण निकल जावें वे मांस नहीं खा सकते। गुरु नानक देव के समय से सिक्ख लोग बिल्कुल मांस नहीं खाते थे। पंजाब देश में उस समय यदि मांस के नाम से वमन करने वाली कोई जाति थी तो वह सिक्खों की थी। भला जिस युद्ध में मांस, हाड़, रक्त और घायलों की हाय २ का ही दृश्य देखना पड़ता है, वहां यह लोग क्या कर सकते थे। युद्ध और भूख मरने का तो साथ ही होता है। जब कभी शत्रु सारी भोजन-सामग्री को नष्ट कर देता है तो उस समय पशुओं को मारकर ही प्राण रक्षा की जाती है। और यदि ऐसा नहीं करते तो शत्रु की आधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। इन्हीं बातों को विचार कर राजर्षि ने लोगों को मांस खाने की आज्ञा दी थी, जिस से वे लोग पहिले ही से सब बातों के लिये तैयार रहें। संसार में जिस प्राणी के जीने से संसार को अधिक लाभ हो, उसके प्राणों की रक्षा के लिये यदि उस से न्यून श्रेणी के प्राणी अपने प्राण अर्पण करदें तो जहाँ इस से संसार का कल्याण होगा वहाँ उस प्राणी का भी कल्याण होगा। इस अखिल ब्रह्मांड में ईश्वरीय नियम भी इसी बात का समर्थन करते हैं, आप देखते हैं कि छोटे २ जीव बड़े २ जीवों के भोजन हैं। मगर का भोजन बड़ी मछलियाँ हैं, बड़ी २ मछलियों का भोजन छोटी २ मछलियाँ हैं। इन छोटी २ मछलियों का भोजन बड़े २ कीड़े हैं और इन कीड़ों का भोजन उनसे भी छोटे २ कीड़े हैं। सर्वत्र यही नियम कार्य्य कर रहा है। साधारणतः लोग मनुष्य को सृष्टि का राजा कहते हैं।

उसका कारण वे यह बतलाते हैं कि परमेश्वर ने उसको बुद्धि दी है। यदि यह बुद्धि केवल भोजन प्राप्त करने के लिये दी जाती तो संसार में यह सम्पूर्ण पशु और जीव जन्तु भूखों मर जाते थोड़ी बुद्धि के मनुष्यों को अन्न भी न मिलता। भोजन के विषय में यह आश्चर्य्य जनक बात देखी जाती है कि जो जीव जितना अज्ञानी है, उसे उतना ही थोड़ा परिश्रम करने से भोजन मिल जाता है। इसलिये सिद्ध हुआ कि केवल भोजन के लिये ही मनुष्य को यह बुद्धि नहीं दी। जब भोजन के लिये ही बुद्धि नहीं दी गई तो यह आवश्यक है कि वह किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिये दी गई है यदि हम प्रकृति पर और गहरी दृष्टि डालें तो हमको ज्ञात होगा कि प्रत्येक जीव को जहाँ अपने कल्याण के योग्य पूरी शक्तियाँ दी गई हैं वहां उसे दूसरों के कल्याण और लाभ के योग्य भी बनाया गया है। जिस जीव में जैसी शक्ति है वह उसी के द्वारा अपना और दूसरों का कल्याण कर सकता है मनुष्य से भिन्न प्राणियों के पास प्राकृत्तिक शक्तियाँ हैं इस लिये वे उन्हीं के द्वारा अपना और दूसरों का कल्याण कर सकते हैं। मनुष्य के पास आत्मिक शक्तियाँ दी हुई हैं इसलिये उसके जीवन का उद्देश्य इनके द्वारा अपना और दूसरों का कल्याण करना हुआ। ज्ञान शक्ति का दूसरा नाम आत्मा है अर्थात् मनुष्य के जीवन का उद्देश्य ज्ञान के द्वारा अपना और दूसरों का कल्याण करना हुआ। ज्ञान और धर्म दोनों मूल में एक ही हैं अर्थात् जहाँ ज्ञान है वहाँ धर्म अवश्य है। जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ धर्म नहीं हो सकता। धर्म शब्द बड़ा ही व्यापक है पर थोड़े से शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परोपकार ही धर्म का मूल मंत्र है। मनुष्य के पास केवल आत्मा ही नहीं है वरन् प्राकृतिक शक्तियाँ भी हैं। इसलिये उनके द्वारा भी अपना और दूसरों का कल्याण करना आवश्यक है

वह महान शक्ति जिसने इस अखिल ब्रह्मांड को रचा है, अन्य जीवों से तो बलात्कार यह दोनों कार्य्य लेती है। क्यों कि उनमें वह बुद्धि नहीं है जिससे वह इस उत्तरदायित्व को अपने ऊपर ले सकें पर मनुष्य के पास वह बुद्धि है, इसलिये उसके सारे कर्म उसके उत्तरदायित्व पर छोड़ दिये हैं यदि वह इस कर्त्तव्य को भली प्रकार करेगा तो अच्छा रहेगा नहीं तो उसको भी बलात्कार यह कार्य करना पड़ेगा। जो जातियाँ अथवा जो मनुष्य अपने इस उत्तरदायित्व को नहीं समझता उनको विवश होकर वे कार्य्य करने पड़ते हैं। मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह अपने इस कर्त्तव्य को भली प्रकार पूरा करे इस प्राकृतिक-कर्त्तव्य पथ की पगडंडी पर चढ़कर जीवनोद्देश्य पूर्त्ति का नाम ही अभ्युदय वा लौकिक धर्म है। और आत्मिक कर्त्तव्य पंथ को पगडंडी पर चढ़कर जीवनोद्देश्य पूर्त्ति करने का नाम पारलौकिक धर्म है। इसीलिये कणाद ने धर्म की परिभाषा एक सूत्र में इस प्रकार की है।

यतोऽभ्युदय निःश्रयस सिद्धि स धर्मः

संसार में मनुष्य से अधिक कोई भी धर्म अर्थात् परोपकार नहीं कर सकता। क्योंकि उसको दोनों प्रकार की शक्तियाँ मिली हैं। पर ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े होते हैं। जो इस उद्देश्य को समझते हैं। इसलिये बहुधा मनुष्य पाप ही करते रहते हैं। अन्य जीव तो बन्दी हैं वे पुण्य करते हैं न पाप करते हैं। साधारण मनुष्यों से तो अन्य जीवधारी ही अधिक परोपकार करते हैं और उनमें गौ का नम्बर सब से उच्च है। इसलिये जन साधारण का यह कर्तव्य है कि इन पशुओं की रक्षा के लिये अपने प्राण भी दे डालें। गुरुजी ने अनावश्यक और हानिकर पशुओं की आज्ञा देकर न जानें यवनों से कितनी गौओं की रक्षा की। जो क्षत्री दुष्टों का दमन करने के

लिये लड़ रहा है, उसको अधिकार है कि गौ को छोड़कर आपतकाल में अन्य पशुओं का भी मांस खाले। एक गौ जितना उपकार कर सकती उतना एक मनुष्य कई जन्मों में भी नहीं कर सकता। इस बात का निश्चय ऋषियों ने भली प्रकार कर लिया है।

पश्चिमी विद्वानों ने भी मनुष्यों के दाँत मुख, जीभ, अन्तड़ी और आंख की बनावट से यह सिद्ध कर लिया है कि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन माँस नहीं है वरन् फल बीज और दूध है। माँस खाने वाले मनुष्यों का माँस गोबर की भांति फूल जाता है रक्त में रोग हो जाते हैं, पाचन शक्ति मन्द पड़ जाती है, बुद्धि बिगड़ जाती है, क्रोध बढ़ जाता है माँस खान से कोई भी लाभ नहीं है। जो शक्ति पाव भर उड़द वा चने में है वह पाँच सेर माँस में भी नहीं है।

जिस प्रकार खटाई और मिर्च में कुछ भी लाभ नहीं इसी प्रकार मांस में स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त कुछ लाभ नहीं और स्वाद भी उसमें घी और मसाले का होता है यदि यह दोनों पदार्थ न हों तो बिल्कुल गधे की लीद रह जाता है। जिस प्रकार वृक्ष की छाल और गुठली मनुष्य का भोजन नहीं पर अकाल पड़ने पर मनुष्य इनको खाकर भी प्राण रक्षा करते हैं, इसी प्रकार माँस को समझना चाहिये। मनुष्य यदि मनुष्यता चाहता है तो वह मांस का त्याग करता रहे उसका दास न बने उसको बहुत ही बेबसी में काम लावे। स्वास्थ्य का मूल मंत्र यह है कि मनुष्य इसका त्याग करता रहे।

## पाचवीं-आज्ञा

यदि मनुष्य में शिक्षा न हो तो वह न खा सकता है, न बोल सकता है, शिक्षा में ऐसा अनुपम प्रभाव है कि वह मूढ़ को ज्ञानी, कायर को वीरवर, कंगाल को धनी, रोगी को

स्वस्थ और निर्बल को बलवान बना देती है। संसार में आज तक जिसने उन्नति की है वह शिक्षा के ही द्वारा की है। हमारी जाति से जब से शिक्षा चली गई तभी से बराबर धक्के खा रही है मनुष्य को वीर बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसको वीर लोगों के जीवन सुनाये जावें। उपासना में शिक्षा से भी अधिक शक्ति है। उपासक सदैव सिंह बना रहता है। वह आपत्ति में धैर्य्यवान रहता है।

## गुरूजी का सर्वमेध यज्ञ

कुछ दिनों के पीछे जब सिक्ख लोग सब प्रकार से कट्टर बन गये तो गुरूजी ने घोषणा करदी कि सारे सिक्ख अमुक तिथि पर एकत्र हो जावें। जब सम्पूर्ण लोग आगये तो पूरे सिक्ख बाने के साथ सब को पंक्तियों में खड़ा किया सामने एक ऊंचे चबूतरे पर गुरूजी ने खड़े होकर कहा, मेरे प्यारे पुत्रो! तुम लोगों में अब क्या कमी रह गई है? सब ने एक स्वर होकर कहा महाराज केवल युद्ध की कमी है। गुरुजी ने कहा कि आर्य्य जाति में जब तक देवीजी का यज्ञ नहीं कर लिया जाता तब तक युद्ध नहीं करते हैं। सिक्खों ने कहा तो महाराज जो आज्ञा हो वही सामग्री सेवा में भेंट करें। इस बात को सुनकर गुरूजी डेरे में गये, और लौटकर कहा, देवीजी की आज्ञा है कि मुझे एक सिक्ख का सिर भेंट करो। इस बात को सुनकर सब लोग एक दूसरे का मुख देखने लगे। इस दशा को देखकर भाई दयासिंह नामक एक खत्री युवक आगे बढ़ा, गुरूजी ने उसे डेरे में ले जाकर बिठा दिया, और तलवार से एक बकरे को मारकर, रक्त में सना हुआ खांडा लेकर बाहर आये और फिर आकर कहा देवीजी के लिये एक भेंट और चाहिये, इस पर एक दूसरा युवक आगे बढ़ा। गुरु

जों ने उसको भी बिठाकर वही क्रिया की। इसी प्रकार पाँच बार यही क्रिया की इन पाँचों वीरों का नाम पंचप्यारे रक्खा और उनकी एक समिति बनाई इनके द्वारा एक शुद्ध पंथ बन गया। सिक्खों का दूसरा नाम सिंह रक्खा। जिस प्रकार कृष्णजी ने अर्जुन को उपदेश दिया था उसी प्रकार गुरूजी ने सिंहों को उपदेश दिया। हमारे हृदय में न वह भाव है, न हमारी जिह्वा में वह शक्ति है जो राजर्षि में थी। पर तो भी उनके उपदेश के सारांश को अपनी शक्ति के अनुसार नीचे लिखते हैं ईश्वर हमें शक्ति दें।

## राजर्षि गुरुगोविन्दसिंह का उपदेश

वीर सिंहो! धर्म वीरो! और मेरे धर्म के पुत्रो! आज जो मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, उसका आशय यह न था कि मैं तुमको यवनों से किसी प्रकार कम समझता था, मैंने यह कार्य भी तुमको उपदेश देने के लिये किया था। वीरो तुमने इस बात पर भी विचार किया कि यह कौन सी बात थी जिसने इन पंच प्यारों के सिवा किसी को भी आगे बढ़ने का अवसर न दिया। वह कौन सा विचार था जिसने इतने २ भयङ्कर डील डौल वाले सिंहों को कंपा दिया। प्यारे पुत्रो! वह तुम्हारी आत्मिक निर्बलता थी। वह क्या बात थी जिसकी प्रेरणा से इन पांचों पुत्रों की गर्दनें मेरे भयङ्कर खांडे के सामने झुक गईं। वह इनका आत्मिक बल था। यह वह शक्ति है जिसके कारण हाथी जैसा बड़ा पशु भी मनुष्य से डरता है। सिंह जैसा भयङ्कर पशु खेलों में नाचता फिरता है। यह तो मैं जानता हूँ कि अब तुमको प्राणों का मोह बिल्कुल नहीं है। पर अज्ञान के कारण जहाँ तुमने एक स्वार्थ को छोड़ा वहाँ दूसरे स्वार्थ में लिप्त हो गये। तुम लोग यह विचार रहे थे कि हम तो यवनों को मारकर

मरेंगे और इस से हमको वीर गति प्राप्त होगी। देवी माता खून की प्यासी नहीं है यह तो प्रेम की प्यासी है। यदि यही बात होती तो मैं तुरन्त इनको भेंट चढ़ा देता।

धर्म वीरो! तुम संसार में जितनी प्यारी वस्तु चाहोगे तुम को उसके मूल्य में उतनी ही बढ़िया और प्यारी वस्तु देनी पड़ेगी। जिसने अपने सब से प्यारे प्राणों को देवी माता के अर्पण कर दिया उसने अमृत पा लिया। एक अनजान मनुष्य बाज़ार में कुछ पदार्थ लेने गया उसने जैसे ही सामने खिली हुई महंकदार फूट देखी झट उछल पड़ा और बिना पूछे गछे झट एक रुपया देकर एक बड़ी फूट ले ली आगे चलकर क्या देखता है कि हलवाई की थाली में गुलाबजामुन रक्खी हैं, उसने हलवाई को कुछ पैसे देकर सारी थाली मांगी हलवाई ने उसे फटकारा तो वह लड़ने को खड़ा होगया, परस्पर की धक्कापेल में फूट भी हाथ से गिर कर नाली में जा पड़ी इसी बीच दो सिपाही आ गये और उसे पकड़कर थाने में ले गये। इस संसार रूपी बाज़ार में यही दशा मूर्ख मनुष्यों की है। उनको वस्तु अर्थात् फल और मूल्य अर्थात् कर्म का ठीक २ ज्ञान नहीं है। हम लोग कभी तो अपने महा परिश्रम का फल थोड़ा चाहते हैं और कभी थोड़े से कर्म का बहुत फल चाहने लगते हैं। प्यारे पुत्रो! जिस प्यारे पिता ने तुम्हारे जन्म से पूर्व ही, तुम्हारे भोगने के लिये नाना प्रकार के पदार्थ बना दिये थे जिसने उस समय भी तुम्हारे पालन का प्रबन्ध किया जब कि तुम किसी भी योग्य न थे, वह भला तुम्हारे साथ अन्याय कर सकता है। हाय! तुम अपने पिता का इतना भी विश्वास नहीं करते। भला ऐसे मनुष्यों को कोई मनुष्य भी कह सकता है, हमको चाहिये कि हम से जहाँ तक हो सके परिश्रम करें और उसको परमेश्वर के अर्पण कर दें। जो पुत्र ऐसा करता है उसका पिता उससे और भी प्रसन्न होता है।

वीर सिंहो! संसार में मनुष्य इतना अधिक परिश्रम करते हैं, पर उनको सफलता प्राप्त नहीं होती। उसका कारण यही है कि वह फल को सामने रखकर कर्म करते हैं, इस फल के मोह में वे कर्म को ठीक २ नहीं कर सकते क्योंकि उनका ध्यान केवल फल में पड़ा रहता है। संसार में कर्म का फल नहीं मिलता, फल तो केवल प्रेम का मिलता है कर्म तो प्रेम का एक कार्य्य है। प्रेम का अर्थ वह नहीं है जो कि साधारण मनुष्य समझे बैठे हैं। प्रेम का अर्थ ही स्वार्थ-त्याग है। जहाँ स्वार्थ-त्याग नहीं वहाँ प्रेम कभी नहीं हो सकता, और जहाँ प्रेम नहीं वहाँ लाभ कुछ नहीं। एक मज़दूर चाहे एक रुपया दैनिक भी प्राप्त कर ले वह कभी चैन से नहीं रह सकता क्यों कि उसे अपने कर्म से प्रेम नहीं है। यदि वही मज़दूर प्रेम पूर्वक कर्म करे तो वह अपने स्वामी से भी अधिक आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। जो व्यापारी केवल इस लिये अपने धन को जोखम में डाल देते हैं कि इस से हम दूसरों का धन हड़प जावेंगे वे अन्त में रोते फिरते हैं और जो व्यापारी निष्काम भाव से इसलिये धन लगाते हैं कि इससे हमको और हमारे देशवासियों को लाभ हो चाहे मत हो हम को इसका कुछ भी पछतावा न होगा वे सदा सफल मनोरथ रहते हैं। युद्ध में जो क्षत्री केवल इस उद्देश्य को सामने रखते हैं कि विजय के पश्चात् हम राज्य भोगेंगे, वे इसी लालच में ठीक २ नहीं लड़ते, जहां तक हो सकता है वे जान छिपाते हैं और जब अपनी शक्ति को कुछ निर्बल देखते हैं तो भाग निकलते हैं। इसका परिणाम और भी भयङ्कर होता है। प्रथम अपयश, दूसरे पराजय, तीसरे शत्रु का साहस बढ़ता है, चौथे भावी सन्तान कायर बन जाती है पाँचवें जब पकड़े जाते हैं तो बड़े ही कष्ट के साथ मारे जाते हैं। इसके विरुद्ध

जो प्रसन्नता पूर्वक युद्ध में लड़ते हुये मारे जाते हैं उनको सब प्रकार के लाभ उठाने पड़ते हैं। यह एक नियम है कि जब एक बार हानि होती है तो फिर वह पहिये की भांति रोके से भी रोकनी कठिन हो जाती है। तुम देखते हो कि दरिद्र में दरिद्र दौड़कर आता है। घाव में चोट और लगेगी। इसलिये मनुष्य कभी स्वार्थ में फँसकर हानि न उठावें देखो यह खारी समुद्र पृथ्वी भर की नदियों के जल को हड़प जाता है और अपने में से दान करना कुछ नहीं जानता पर ईश्वर के न्यायानुसार फिर वह दंडित होकर सूर्य्य की भट्टी पर रक्खा जाता है और भाप बनाकर उसी बर्फ के ग्लेशियर को दी जाती है जिससे नदियाँ निकलती हैं इस समुद्र ने इतनी जल की नदियों को हड़पा पर अंत में खारी पन के सिवा कुछ नहीं रहा। इस इतने बड़े समुद के विरुद्ध जिन झीलों में नदियाँ गिरती भी हैं और निकलती भी हैं। वह सदैव मीठी बनी रहती हैं।

पुत्रो! यह स्वार्थ आत्मा के ऊपर एक प्रकार की पट्टी है। देखो जिस घाव के ऊपर पट्टी बंधी हुई है उस पर मनों मरहम भी व्यर्थ हो जावेगा। यह भाव अपने हृदय से निकाल दो कि अमुक कर्म से कुछ लाभ नहीं हम क्यों करें। पुत्रो! यह जड़ प्रकृति भी ईश्वर के नियम के आधीन होकर गले हुये दाने से एक पौधा खड़ा कर देती है। यदि तुम इन पड़े हुये पत्थरों में भी दूसरों के कल्याण के लिये सिर देकर फोड़ दो तो इन से भी तुम्हारे लिये कल्याण ही की ध्वनि निकलेगी।

## वीरो! यह सदा याद रक्खो

यज्ञ में पड़ा हुआ दाना भस्म होकर भी अपने और दूसरों के घरों की दुर्गंध दूर करता है और स्वार्थ की नाली में पड़ा हुआ दाना फूलकर भी अनर्थ करता है।

इच्छा करने में लिप्त होने से हमारी सर्वथा हानि है यदि फल मिलता है तो अवश्य ही मिलेगा यदि नहीं मिलता तो क्लेश होगा और भविष्य में हमको उत्साहहीन कर देगा। पुत्रो धर्म युद्ध और पाप युद्ध में यही बड़ा अन्तर होता है। धर्म युद्ध में वीर पाप का नाश करने के लिये पहिले मरना और पीछे मारना समझ लेता है। और पाप युद्ध में केवल मारने की ही इच्छा मन में घुसी रहती है। वीर सिंहो! हम अपने प्राणों की रक्षा के लिये नहीं लड़ते इस छोटी सी बात के लिये लड़ने की क्या आवश्यकता। हम लोग तो अपने धर्म, अपने पंथ और अपनी आर्य्य जाति के गौरव के लिये मिटना चाहते हैं। हमारा प्रेम अब आज्ञा नहीं देता कि हमारे यवन भाई संसार में पाप करके अपने जीवन को नष्ट करें। यदि औरंगजेब हम को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दे तो मैं अभी अपनी तलवार को म्यान कर सकता हूँ मैं कोई पिताजी का बदला लेने के लिये युद्ध नहीं करता, यदि मैं ऐसी इच्छा भी करूं तो इस से मेरे पिताजी की आत्मा को दुःख होगा। वे तो दिल्ली में गये ही धर्म के लिये सिर देने को थे। हमारी भी अब यही इच्छा है कि हम भी उसी प्रेम के प्याले को पीकर अपने जन्म को सफल करें। सांसारिक मनुष्य नित्य प्रति कुत्तों की मौत मरते हैं। मरते समय वे रोते हैं, चिल्लाते हैं, किसी पीड़ा से दुखी होकर डकराते हैं। हम नहीं चाहते कि इस प्रकार तड़प २ कर अपने कर्मों पर खेद करते हुये मरें। हम तो प्रसन्नता पूर्वक

युद्ध करके मरना चाहते हैं। यदि हमारे जीवन का उद्देश्य केवल पेट भरना होता तो मनुष्य बनाने की क्या बड़ी आवश्यकता थी। यह शरीर प्रभु ने हम को धर्म के लिये दिया है। इसलिये उसको धर्म में ही व्यय करना चाहते हैं। भला सोचो तो सही जो मंगनई की वस्तु हमको एक दिन देनी ही पड़ेगी तो उस से व्यर्थ मोह करना कब ठीक है। यदि हमने अपनी प्रसन्नता से देदी तो कैसी अच्छी बात होगी और यदि हम से बलात्कार छीनी गई तो हम को क्यों न कष्ट होगा।

वास्तव में दुःख और कुछ भी नहीं है। केवल इच्छा के विरुद्ध कार्य्य होने का नाम ही दुःख है। जब हम स्वयं मरने जा रहे हैं तो दुःख कैसा।

संग्राम सिंह का शत्रु बाबर अपनी तुज़क बाबरी नाम पुस्तक में लिखता है कि एक दिन सांगा के शरीर में नीचे से ऊपर तक ८० घाव थे, एक आँख बिल्कुल नेजे की चोट से फूट गई। एक टांग कट गई वाम भुजा भी कट गई, सारा शरीर रक्त में सना हुआ था। उसके सरदार उसको लड़ने से रोक रहे थे पर इस दशा में भी उसको कुछ ध्यान नहीं था। वह अपने पूर्वजों की वीरता के करखे गाता हुआ, बराबर लड़ रहा था, करखे की अन्तिम टेक पर जो जोश में आकर तलवार फेंकता था तो खून के स्रोत चलने लगते थे। इस दृश्य को देख कर कर शत्रुओं के मुख से भी वाह २ का शब्द निकल पड़ा। इसी दृश्य को देखकर बाबर का साहस राजपूताने में घुसने के लिये न हुआ।

अकबर सम्राट के सामने दो राजपूत नौकरी के लिये गये। दैवयोग से उस के मुख से निकल पड़ा कि तुम युद्ध में क्या करके दिखलाओगे। उसी समय तुरन्त दोनों ने आगे

नेज़े उठा लिये और एक दूसरे के पेट में मार कर कहा हम यह करके दिखा देंगे। क्या तुमने राना प्रताप के कामता सिपाही का नाम सुना है जिसने यवनों के एक गढ़ को लेने के लिये अपने सीने को फाटक के भालों पर रख दिया था, और हाथीवान को आज्ञा दी कि मेरी पीठ पर हाथी से टक्कर लगवाओ। वह माता का सपूत भालों में छिधा हुआ भी हँस २ कर बातें कर रहा था।

कदाचित् तुम में से किसी २ को यह भी ध्यान होगा कि हमारे बाल बच्चे क्या करेंगे। भला तुम आज ही मर गये अथवा बादशाह ने मार डाले तो क्या करोगे। यदि तुम जान के भय से मुसलमान भी हो गये तो क्या तुम अमर हो जावोगे जिसने अपने भाइयों को मार डाला वह तुम्हारे साथ क्या उपकार करेगा। क्या मुसलमान होकर तुम नहीं मारे जासकते भला गोर के पठानों ने ग़ज़नी के पठानों के ख़ून से क्यों दीवार चिनवाई। तातारियों ने तुर्कों के ख़ून से क्यों नदियाँ बहाई। यजीद ने हसन और हुसैन अपने पूज्य सैयदों को क्यों मारा। क्या तुम उन्हीं के मोह में फंस कर धर्म करने से डरते हो जो न जाने कल तुम्हारा क्या अपकीर्त्ति करावे। क्या हमारा एक ईश्वरवादी सिक्ख होने पर भी यह विश्वास नहीं है कि वही सबका पालन करता है।

क्या जिस हिंदू जाति की रक्षा के लिये हम लोग प्राण दे रहे हैं क्या वह इतना भार भी अपने ऊपर नहीं ले सकती मृत्यु भय से कोई कार्य्य नहीं रुक सकता अभी यह मकान गिर पड़े तो हम मर जावें। अभी भूचाल से भूमि फट जावे। क्या यवनों के १०० हाथ हैं अकेले अमरसिंह राठौर ने सारे दर्बार के यवनों को घर में घुसा दिया था। फिर याद रक्खो जो कृषक थोड़ा सा कष्ट उठाकर वर्षा का जल खेत से निकालने

नहीं जाता वह सारे वर्ष भूखा मरेगा अथवा मजदूरी करता फिरेगा।

इस उपदेश की समाप्ति पर सारे सिक्ख नृसिंह रूप होकर एक साथ भयङ्कर और गम्भीर स्वर से बोल उठे।

सत्य श्री अकाल की जय। गुरुगोविन्दसिंह की जय॥

इसके पश्चात् राजर्षि ने सिक्खों को अमृत (चरणामृत) पिलाकर आशीर्वाद दिया कि जाओ संसार तुम्हारा लोहा मानेगा।

## युद्ध की तैयारी

कुछ दिनों पश्चात् जब सिक्खों ने धर्म युद्ध की पूरी २ तैयारी करली तो वे लोग गुरुजी की सेवा में उपस्थित हुये इन लोगों ने परस्पर सम्मति करके राजर्षि से विनय पूर्वक कहा महाराज हमारी यह इच्छा है कि आप हमारे सेनापति और बादशाह हों। गुरुजी ने कहा पुत्रो! मुझ में इतनी शक्ति नहीं है कि अकेला तीन बातों का भार उठा सकूं पर जब तुम सब ने परस्पर सम्मति करके ही मुझसे कहा है तो यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं तुम्हारी बात का पालन करूं। क्योंकि सम्पूर्ण सेना की जो इच्छा हो उसके विरुद्ध कोई मनुष्य भी कुछ कार्य्य न करे। यद्यपि मैं सर्व सम्मति से गुरु बनाया गया हूँ और फिर तुम मुझे अपना सम्राट और सेनापति बनाते हो इस दशा में मेरे ऊपर भार तो आ ही पड़ा पर तुम्हारे ऊपर बहुत बोझ आ पड़ा।

धर्म वीरो! यह क्षात्र धर्म तलवार की धार है इसका मूल मन्त्र आज्ञा पालन है। युद्ध धर्म में आज्ञा के सामने विजय भी कुछ मूल्य नहीं रखती। एक समय घोर युद्ध हो रहा था। एक सेनापति अपनी सेना सहित शत्रु से घिर गया।

एक नायक यह देख अपने कुछ कट्टर योद्धाओं को साथ ले शत्रु के दल में कूद पड़ा। शत्रु इस अचानक चोट को न संभाल सका और भाग निकला। सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे सेनापति ने अपने मस्तक को उसके पैरों में रख दिया उसे हृदय से लगाकर बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। उसे बहुत सी सम्पत्ति देदी। पर अन्त में उस नायक से कहा कि भाई तुमने अपने देश की लज्जा बचाने के लिये जो वीरता दिखाई है वह प्रशंसा के योग्य है। पर तुमने जो अपने स्थान को छोड़कर मेरी आज्ञा भंग की, वह उस से भी भारी पाप है। अतः मैं तुम्हारी गर्दन मारने के लिये विवश हूँ। उस नायक ने बड़े हर्ष के साथ अपने अपराध को स्वीकार किया, और कहा कि मैं स्वयं जानता था कि यह बात कर्तव्य के विरुद्ध करने जा रहा हूँ। पर मैंने यह भी ठान लिया था कि इसके दंड को तो मैं सहन कर सकता हूँ पर उस पाप का फल मुझ से नहीं भोगा जा सकता जो स्वामी के अपने सामने मारे जाने से लगेगा। यह कहकर नायक ने अपनी गर्दन झुका दी और सेनापति ने रोते हुये उसकी गर्दन मार दी।

जब सेना पति की आज्ञा इतनी टेढ़ी है तो फिर तुमने मुझे बादशाह और गुरु भी क्यों बना दिया?

सिक्खों ने कहा महाराज फिर इस में कौन सी बात है हम तो आपत्तियों को स्वयं बुला रहे हैं। गुरुजी हम को तो अब सुख में दुःख और दुःख में सुख दिखाई देता है। हमारा तो जीवन ही तभी सफल होगा जब हम युद्ध में प्राण देंगे। हमको यवनों से कुछ द्वेष नहीं पर उनके पाप से द्वेष है।

---

# सिंहों की वीरता के कुछ दृश्य

## प्रथम-घटना

गुरु गोविन्दसिंह और कुछ सिक्ख चमकौर के क़िले में घिर गये। जब बहुत से सिक्ख मारे गये तो गुरुजी ने अपने बड़े पुत्र को अकेला ही युद्ध करने भेज दिया। जब वह मारा गया तो दूसरे को भेजा। चलते समय वह एक सिक्ख से जल माँगने लगा। गुरुजी ने कहा वत्स तुम्हारी प्यास इस भौतिक जल से नहीं बुझ सकती। जाओ अपने भाई के पास जाकर स्वर्ग के अमृत से अपनी प्यास बुझाओ। यह बच्चा भी घोर युद्ध करने के पश्चात् मारा गया।

## दूसरी-घटना

दो पुत्र तो गत युद्ध में मारे गये शेष दो पुत्र सरहिन्द के सूबेदार ने पकड़ लिये मुसलमानों ने उनसे कहा कि मुसलमान बन जाओ। नहीं तो दीवार में चुन दिये जाओगे। छोटे २ बच्चों ने ललकार कर कहा कि हम अपना शुद्ध धर्म नहीं त्याग सकते। इन दुष्टों ने दीवार में चुनने की आज्ञा दे दी। थोड़ी २ देर में उनसे धर्म भ्रष्ट करने को कहा गया। उन्होंने बार २ यही उत्तर दिया। जब बड़े पुत्र के सामने छोटा चुना गया तो वह रोने लगा। दुष्टों ने और नमक पर मिर्च लगाने के रूप में कहा 'तू तो बड़ा बहादुर बनता था अब रोता है'। लड़के ने उत्तर दिया मैं तो इस लिये रोता हूँ कि इससे प्रथम मैं क्यों नहीं मरा।

## तीसरी-घटना

एक दिन यवनों से लड़ते २ सिक्ख लोग थक कर पीछे हटने लगे, तो एक सरदार ने अपना सिर कृपाण से काट कर हाथ में ले लिया और दूसरे हाथ में कृपाण लेकर युद्ध

करने लगा। इस अनुपम दृश्य को देखकर सिक्खों में नवीन शक्ति का संचार हो गया वे लोग कट २ कर लड़ने लगे। इस नवीन घटना को देखकर शत्रुओं के मुख से भी वाह २ निकल पड़ी और शत्रु सेना भाग खड़ी हुई।

## परिणाम

गुरुजी ने इसी प्रकार ४५ युद्ध किये जिन में एक से बढ़कर एक वीरता प्रकट की। इन सब बलिदानों का यह फल हुआ कि सिक्ख लोग संसार में सर्वश्रेष्ठ वीर बन गये। और थोड़े ही दिन पीछे वीर वर राजा रणजीतसिंहजी ने यवनों से सारा पञ्जाब, काश्मीर और सीमा प्रान्त ले लिया और काबुल के पठानों को कई बार परास्त किया। उनसे कोहनूर हीरा भी ले लिया।

## नवीन-कार्य्य

सिक्खों ने सिन्ध पार जाने के बन्धन को तोड़कर खैबर घाटी पर अधिकार किया।

## दूसरा नवीन कार्य्य

सिक्खों के प्रसिद्ध सेनापति हरीसिंह नलवे ने पठानों का एक गढ़ छीना। सिक्ख योद्धा भूखे थे और पठानों का भोजन तैयार था। सिक्खों ने भोजन के प्रबन्ध की प्रार्थना की तो वीर सेनापति ने कहा कि भोजन तय्यार है गुरुजी का फतह बोलकर और ऊपर से वाराह का दांत फेरकर खा आओ। जब पठानों ने यह बात सुनी तो बड़े चकित हुए। इसी सेनापति ने राजा मानसिंह की भाँति सीमा प्रान्त की जातियों का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। आज तक यह

अत्याचारी जातियाँ अपने बच्चों को हरिया के नाम से डराती हैं।

## सिक्खों की वीरता के प्रमाण

(१) जापानियों ने सिक्खों की प्रशंसा की।

(२) मैसूपोटामिया में तुर्कों की एक छुट्टा सेनको परास्तकिया।

(३ स्वयं अंगरेज़ों ने भारत इतिहास में सिक्खोंकी प्रशंसा लिखी है।

(४) गत योरोपियन महायुद्ध में जब जर्मनी के कट्टर योद्धाओं ने संगीनों से धावा किया तो सब उखड़ खड़े हुये पर वीर सिक्खों ने उनको रुई की भांति धुनकर फेंक दिया। फ्रेंच लोग तो इतने प्रसन्न हुये कि उन्होंने तार में लिखे हुये सिक्खों के लिये २००० गोट्स (बकरा) के गल्स (लड़की) पढ़कर २००० लड़कियाँ भेजदीं पर सिक्ख लोग इससे बड़े अप्रसन्न हुये

## एक-भूल

जब शाहशुजा राजा रणजीतसिंह की शरण में आगया तो उन्होंने उसकी अनिच्छा से कोहनूर हीरा ले लिया था। पर जब हम यवनों के उपकारों को याद करते हैं तो यह बात बिल्कुल उचित भी ज्ञात पड़ती है।

## सिक्खों की अवनति क्यों हुई

(१) मद्य माँस का सेवन बहुत बढ़ गया।

(२) थोड़ा सा राज्य पाकर अभिमानी हो गये।

(३) आपस में फूट पड़ गई।

(४) धर्म का वह प्रेम जो पहिले था फ्रेंच लोगों की सैन्य शिक्षाने ढीला कर दिया।

## सिक्ख लोग विधर्मी नहीं हैं

कुछ प्रमाण

(१) गुरू नानक देवजी ने जो किसी नवीन अवैदिक बात का प्रचार किया, न उन्होंने अपने मत का कुछ नाम रक्खा।

(२) उन्होंने जो बात जिस महात्मा की पोथी से ली उसे उन्हीं के नाम से रक्खा।

(३) उन्होंने हिन्दुओं से भिन्न सामाजिक नियम नहीं बनाये।

(४) ग्रन्थ साहब में स्पष्ट लिखा है कि वेद, पुराण झूठे नहीं हैं उनके समझने वाले ही झूठे हैं। सिक्ख लोग ग्रन्थ साहब को ईश्वर ज्ञान नहीं मानते।

(५) सिक्खों के सम्बन्ध अन्य हिन्दुओं से भी हो जाते हैं। अन्तिम गुरू गोविन्दसिंहजी के समय तक देवी का आदर था।

## समर्थ गुरू रामदास और वीर मराठे

गुरू रामदास और तुकारामजी ने सारे दक्षिण देश में और विशेष कर महाराष्ट्र देश में अपने मनोहर उपदेशों से हिंदुओं में नवीन जीवन का संचार कर दिया। मैं मराठों उन के उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने आपस के सब भेद भाव और जाति पांति के झगड़ों को दूर करके बड़ा ही अटूट संघटन बना लिया। इनके सरदार शिवाजी ने अपनी वीरता और नीति कुशलता से दक्षिण के यवन बादशाह और पापी औरंगजेब को कई बार लगातार परास्त किया। औरंगजेब के जीवन में ही वह दक्षिण का स्वतंत्र राजा बन गया। और जब वह अत्याचारी कायर सम्राट मर गया तो वीर मराठों ने सारे भारत से कर लिया।

वर्तमान ग्वालियर नरेश के पूर्वज क्षत्रिय कुल भूषण महाराजाधिराज महदजी संधिया ने दिल्ली के नाममात्र सम्राट शाह आलम के नाम परवाना लिखा कि तुम गो बध बन्द करने की आज्ञा अपने राज्य भर में निकाल दो बिचारे सम्राट को विवश होकर ऐसा करना पड़ा। सच है भय बिना प्रीति नहीं होती। हमारी जाति में बल है, बुद्धि है धन भी कुछ है, पर यदि किसी वस्तुका अभावहै तो वह केवल संघटन है। संघटन का मूल मन्त्र प्रेम और शिक्षा है। प्रेम स्वार्थ त्याग से हुआ करता है और शिक्षा ब्राह्मणों से मिलती है। जिस देश के ब्राह्मणों में ही शिक्षा न हो वह दूसरों को क्या शिक्षा देंगे। परमेश्वर जगाने के लिये आपत्ति पर आपत्ति भेजता है पर उनको कुछ सुध नहीं।

## क्या शिवाजी ने पाप किया था

कुछ भोले भाले विद्वान् शिवाजी पर धोखा देने का दोष लगाते हैं यह उनकी भूल है। शिवाजी ने यदि अत्याचारी औरंगजेब को स्त्रियों का अनादर करनेवाले पापी शाइस्ताखां को और उनके सिर काटकर लाने की प्रतिज्ञा करने वाले अफ़ज़लखां को अपनी चतुराई से परास्त किया तो क्या बुरा कर दिया। शिवाजी बड़े ही बुद्धिमान् और धर्मात्मा थे, वे सदा इस बात का ध्यान रक्खा करते थे जिस का पाप हो उसी को दंड मिले इसलिये वे व्यर्थ ही सैनिकों का रक्त नहीं बहाते थे। श्रीमान्‌जी पाप तो इस समय होता जब शिवाजी इन पापियों को दंड नहीं देते।

अरे धर्म के ठेकेदारो कुछ न्याय से भी काम लेते हो अथवा नहीं तुम किस धोखे में पड़कर धर्म को कलंकित कर रहे हो।

कोई भी क्रिया जो अत्याचार को रोकने के लिये की जावे, वही परम धर्म है। संसार के सारे धर्म कृत्यों का सार यही है कि पाप का नाश किया जावे। अत्याचार को हर प्रकार से दबाया जावे जिससे मनुष्यों को अपने जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिये अवसर मिले।

# दुष्टों के साथ छल ही परम धर्म है

## अकाट्य-प्रमाण

जब भगवान् रामचन्द्रजी ने बाली को युद्ध नियम के विरुद्ध मार दिया तो बाली ने भगवान् से कहा कि महाराज तुम ने तो धर्मोद्धार के लिये अवतार धारण किया था तुम्हारे लिये तो हम दोनों भाई समान थे फिर तुम ने मुझे युद्ध नियम के विरुद्ध आड़ में होकर क्यों मारा। यह कोई धर्म की बात है। भगवान् बाली को इस प्रकार उत्तर देते हैं कि अरे मूर्ख सुन।

अनुज बधू भगिनी सुत नारी,
सुन सठ यह कन्या सम चारी।
तिनहिं कुदृष्टि बिलोके जोही।
ताहि हने कछु पाप न होई॥

अर्थात् पापियों को किसी प्रकार मार दो उनके साथ सब धर्म हैं। युद्ध नियम तो जन साधारण में होने वाले युद्धों के लिये बनाये गये हैं। जो नियम के विरुद्ध, पाप करता है। उसके लिये यह नहीं हैं।

## दूसरा-प्रमाण

भगवान् कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में जब कई बार युद्ध नियम और प्रतिज्ञा के विरुद्ध कार्य्य किये तो लोगों ने उन पर बड़े आक्षेप किये भगवानजी ने उनको यही उत्तर दिया कि

छल से दूसरों की सम्पत्ति छीनने वाले द्रौपदी का अनादर करने वाले और छल से पांडवों को आग लगा कर मारने की चेष्टा करने वाले दुर्योधन और उसके साथियों को किसी प्रकार मार देना ही परम धर्म है। नहीं तो आगे चलकर लोग भी उसी की भांति पाप करने का साहस करेंगे। धर्म वह है जिससे लोगों को पाप करने का थोड़ा सा भी सहारा न मिले हमारे ऐसा करने से पापी सदा डरते रहेंगे कि कहीं हम छल से न मारे जावें।

### तीसरा-प्रमाण

महाभारत में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को इस प्रकार उपदेश देते हैं।

> यो यथा वर्त्तते यस्मिन् तस्मिन्नेवप्रवर्त्तयन्।
> नाधर्म संवाप्नोति न श्रेयश्च विन्दति ॥

भावार्थ—जो जैसा वर्त्ताव करे उसके साथ वैसा वर्त्ताव करना ही ठीक है।

### चौथा-प्रमाण

भगवान् मनु भी राज धर्म में दुष्टों के लिये यही आज्ञा देते हैं।

## शिवाजी की धर्म परायणता

शिवाजी सच्चे मनुष्यों के साथ कभी चतुराई से काम नहीं लेते थे। औरङ्गज़ेब की पुत्री की प्रतिष्ठा बचाने के लिये उन्होंने अपने सब से प्यारे, सब से अधिक वीर सेनापति को भी मार कर पहाड़ी से नीचे फेंक दिया था। सद्रमंडल के गढ़पति रहमतखाँ के साथ जिस उदारता का परिचय दिया उसके उदाहरण संसार में बहुत ही थोड़े मिलेंगे। जब औरङ्-

ज़ेब की सम्पूर्ण शक्ति शिवाजी ने व्यर्थ सिद्ध करदी तो उसने धर्म-वीर राजा सवाई जयसिंह को शिवाजी से लड़ने को भेजा। शिवाजी में इन से लड़ने की शक्ति भी न थी न वे हिंदू से लड़ना अच्छा समझते थे, इसलिये शिवाजी सन्धि करने के लिये स्वयं अकेले ही मिलने चले गये। दोनों में जो संवाद हुआ वह आगे लिखते हैं।

## सवाई जयसिंह और शिवाजी का सम्वाद

### अर्थात्

### धर्म और नीति के अनुपम दृश्य

जयसिंह—महाराज आपने मुझ शत्रु पर विश्वास करके आने की कृपा क्यों की है?

शिवाजी—क्षत्री लोग सदैव विश्वास के योग्य हैं।

जयसिंह—मैं ऐसे अनेक प्रमाण दे सकता हूं कि क्षत्रियों ने भी विश्वास-घात किया था।

शिवाजी—वे क्षत्री न होंगे।

जयसिंह—क्या आप के विषय में भी यह अनुचित शब्द कहे जा सकते हैं?

शिवाजी—(हँसकर) मुझसे तो कभी यह पाप नहीं हुआ होगा

जयसिंह—आपने तो यवनों के साथ अनेक बार चतुराई की थी।

शिवाजी—वे तो दुष्ट हैं।

जयसिंह—क्या वे मनुष्य नहीं हैं?

शिवाजी—जिस में मनुष्यता नहीं वह कैसे मनुष्य कहा जा सकता है।

जयसिंह—धर्म तो सदैव पालनीय हैं।

शिवाजी—गुरुजी की आज्ञा है कि देश, काल और पात्र का विचार विना किये धर्मकृत्य भी अधर्म बन जाते हैं।

जयसिंह—यदि भोजन से एक मनुष्य को लाभ होता है तो दूसरे को हानि क्यों होगी।

शिवाजी—पेट रोगी के लिये तो वह साक्षात् मृत्यु बन जाता है।

जयसिंह—राजपूतों में तो धर्म के लिये अपना सर्वस्व खो दिया पर कभी धोखे से काम नहीं लिया।

शिवाजी—वे धन्य हैं, पर यदि वे लोग धर्म के शत्रुओं का नाश करके गौ, ब्राह्मण की रक्षा करते तो और भी अच्छा था।

जयसिंह—तो क्या उन्होंने पाप किया ?

शिवाजी—पाप तो मैं नहीं कह सकता। पर उन्होंने अपनी सद्गति के लोभ में धर्म रक्षा का कुछ ध्यान नहीं किया।

जयसिंह—इन दोनों बातों में कौन सी बात अच्छी है।

शिवाजी—जिस से धर्म की रक्षा हो, जिस में अधिक स्वार्थ त्याग हो।

जयसिंह—क्या मुझ से सन्धि करने से धर्म रक्षा होगी ?

शिवाजी—इस में कम से कम हिन्दू तो कट कर न मरेंगे।

जयसिंह—अब तो बादशाह को तुम्हारा कुछ भय भी है फिर तो निश्चिन्त हो अत्याचार करेगा।

शिवाजी—जब तुम से वीर धर्मात्मा भी उसके सहायक हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ।

जयसिंह—आप स्वतन्त्र हैं धर्म रक्षा करें मैं परतन्त्र हूँ, अतः नहीं करता।

शिवाजी—जिस कारण से आप नहीं कर सकते मेरे लिये तो वह कारण और भी अधिक कठिन हो गये हैं।

जयसिंह—मुझ में तो सम्राट से लड़ने की शक्ति नहीं है दूसरे मेरे पूर्वजों ने वचन दे दिया था।

शिवाजी—मुझ में भी न तो शक्ति है, न हिन्दुओं को मार कर पाप कर सकता हूँ।

जयसिंह—क्या आपने किसी हिन्दू को नहीं मारा ?

शिवाजी—दुष्ट हिन्दू को अवश्य मारा है।

जयसिंह—तो फिर हिन्दू मुसलमान की क्या बात रही ? क्या यवनों में धर्मात्मा नहीं होते ?

शिवाजी—गुरुजी कहते थे कि कुरान की शिक्षा ही पापों की आज्ञा देती है। इसलिये उनमें कोई विरलाही मनुष्य धर्मात्मा बनता है। सच्चे यवन फ़क़ीर कुरान के विरोधी होते हैं।

जयसिंह—यदि आप से मुग़ल ही लड़ने भेजे जाते तो ?

शिवाजी—प्रथम तो नीति से ही त्रिस्त करता, दूसरे अन्य स्थान में चला जाता, तीसरे लड़ता हुआ मर जाता।

जयसिंह—आप थोड़े से हिन्दुओं के मोह में धर्म रक्षा क्यों नहीं करते ?

शिवाजी—जब शक्ति ही नहीं तो यह पाप भी क्यों करूँ। हाँ यदि आप भी भविष्य में राजा यशवंतसिंह की भाँति मुझ से न लड़ने की प्रतिज्ञा करें तो फिर देखिये क्या क्या गुल खिलाता हूँ।

जयसिंह—वे तो बादशाह से द्वेष रखते हैं।

शिवाजी—क्या आप अत्याचारी स्वामी की आज्ञा का पालन भी धर्म समझते हैं।

जयसिंह—हरिश्चन्द्र ने तो चांडाल का भी कर्म किया था।

शिवाजी—चांडाल का कर्म अधर्म नहीं है उन्होंने तो आपद्-काल में ऐसा किया था। गुरुजी कहा करते हैं कि चांडाल की भी निष्काम सेवा से सद्गति होती है। चांडाल राजा से केवल अपना कर्महीकरा सकताथा

उनसे किसी पाप के करने के लिये नहीं कह सकता था। यदि वह ऐसा कहता तो हरिश्चन्द्र कदापि ऐसा न करते। पर महाराज बादशाह तो दुष्ट है वह आप से ब्रह्म हत्या भी करने के लिये कह सकता है।

जयसिंह—आप तो बड़े ज्ञानी हैं हम ने सुना था कि आप कुछ भी नहीं पढ़े हैं और पढ़कर क्या? दीन यवनों को नष्ट ही करते।

शिवाजी—(हंसकर) यह सब गुरुजी की कृपा है।

जयसिंह—आपकी बात तो ठीक जान पड़ती है पर कभी किसी क्षत्री ने ऐसा किया नहीं है।

शिवाजी—रामचन्द्रजी ने बाली का और कृष्ण भगवान ने कौरवों का इसी प्रकार नाश किया था।

जयसिंह— वे तो अवतार थे उनका क्या दोष?

शिवाजी—हमारे तो वे आदर्श हैं। यदि उनको पाप ही नहीं लगता था तो रामचन्द्रजी ने अपने पिताजी की आज्ञा क्यों मानी कृष्णजीने द्रौपदीकी रक्षा क्यों की।

जयसिंह—भाई तुम्हारी बात तो बिल्कुल ठीक है पर शास्त्रों में यवनों का राज्य भी तो लिखा है। इसलिये मैं प्रतिज्ञा भंग करके अपने पूर्वजों की बात को क्यों बट्टा लगाऊं?

शिवाजी—यह बात सुनी तो हमने भी है पर गुरुजी ने कभी नहीं सुनाई। अच्छा तो अब मैं भी वही करूंगा जो आपकी सम्मत्ति होगी। इतना कहकर शिवाजी कुछ उदासीन होकर नेत्रों में आँसू भर लाये।

जयसिंह—यदि मुझ से सन्धि करके आपको दुःख होता है तो आप अपने गढ़ में बेखटके जा सकते हैं।

शिवाजी—मुझे किसी भी मुसलमान पर विश्वास नहीं है। दुःख मुझे केवल इस बात का है कि न जाने गौ, ब्राह्मण की क्या दुर्दशा हो।

जयसिंह—यदि बादशाह ने कुछ भी तुम्हारे साथ बुरा बर्त्ताव किया तो मैं तुम्हारे साथ होकर यवनों से युद्ध करके मारा जाऊंगा।

शिवाजी—अब मुझे कुछ पश्चाताप नहीं मुझे जो सेवा बादशाह देवेगा उसे भली प्रकार करूंगा।

## शिवाजी की दूर दर्शिता

अन्त में वही हुआ जो शिवाजी ने कहा था। औरङ्गज़ेब ने शिवाजी को बन्दी कर दिया पर राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह और अपनी प्रिया जेबुलनिसाँ की सहायता तथा अपनी ईश्वर दत्त चतुराई और वीर मराठों के भक्ति भाव की सहायता से शिवाजी तो निकलकर महाराजा बने पर जयसिंह के साथ इसी बीच जो औरङ्गज़ेब ने छल किया था उसके अपमानके दुःख से जयसिंह भी इसी बीच मरगये।

सच बात है दुष्ट से किसी को भी लाभ नहीं पहुँच सकता। उसका तो इस संसार से नष्ट होना ही सर्वथा ठीक है।

## मराठों की अनुपम वीरता

जब हम मराठों की वीरता को याद करते हैं तो सिक्खों की वीरता को भी भूल जाते हैं। एक दिन शिवाजी अपने मित्रों के साथ एक ऐसे पहाड़ी गढ़ में घिर गये जिसके चारों ओर बन और बाँसी थी। यवनों ने उस में किसी प्रकार आग लगादी। गढ़से भाग निकलने का केवल एक ही मार्ग था और वह जलती हुई अग्नि की ओर था शिवाजी के मित्रों ने कहा

कि महाराज हम लोग लगातार अग्नि पर लेटे जाते हैं आप कृपा करके ऊपर से निकल जाइये शिवाजी ने इस बात को पहिले तो स्वीकार न किया पर हट करने से निकल गये।

## शिवाजी दिल्ली क्यों गये थे

(१) इस विषय में कई विचार उठते हैं प्रथम यह कि वे घिर गये थे।

(२) जयसिंह से वे न लड़ सकते थे न- वे चतुराई से ही काम ले सकते थे।

(३) हिन्दुओं से लड़ना वे पाप समझते थे।

(४) जयसिंह की प्रतिष्ठा उनको अभीष्ट थी।

(५) अपनी स्त्री से मिलने का विचार।

(६ औरङ्गजेब अपने पुत्रों से बहुत अप्रसन्न रहा करता था। उसकी इच्छा कदाचित् जेबुलानसा अपनी प्यारी पुत्री को राज्य देने की थी। शिवाजी इसी प्रलोभन में मुगल साम्राज्य को हड़पने के विचार से गये हों।

## मराठों को अवनति के कारण

(१) सरदारों की परस्पर लड़ाई।

(२) जाति भेद और छूत छात आगई थी।

(३) केवल चतुराई का आश्रय लेना।

(४ देशों का प्रबन्ध न करके केवल चौथ ही लेकर छोड़ देना।

(५) प्रजा को भी लूटना खसोटना।

(६) अनावश्यक ठाट बाट।

(७) विषय भोग में फंसना।

(८) मुसलमानों और अंग्रेजों को सैनिक अधिकार देकर अपना जातीय और धार्मिक गौरव खो देना।

(९) सिन्ध पार जाकर खैबर घाटी पर अधिकार न करना जिस से पानीपत के युद्ध में उनका सर्वनाश होगया।

## यवन मत का प्रभाव

(१) हिन्दुओं की छूत-छात ने मुसलमानी मत के प्रभाव को बहुत रोका, पर सत्य की तो सदा विजय होती है। इसलाम के सच्चे सिद्धान्त ईश्वर-वाद ने हिन्दुओं के बहुदेव वाद और उनके मूर्ति पूजन की प्रतिष्ठा भंग करदी क्योंकि यह स्वभाविक बात है कि सूर्य्य के सामने दीपक मन्द ही पड़ जाते हैं। सच्चा विद्वान् अबुलरैहान अलबेरूनी ठीक ही लिखता है कि हिन्दुओं के अनुपम सिद्धान्त रत्न इस बहुदेवावाद के गोबर में दब पड़े हैं। इसी बात का अनुभव करते हुये यवन काल के प्रत्येक महापुरुष ने एकेश्वर वाद का उपदेश और मूर्ति पूजा का खंडन किया था। क्या आश्चर्य्य है कि परमात्मा ने यवनों को इसी लिये भेजा हो।

(२) दूसरा प्रभाव साहित्य पर पड़ा, लोगों ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये मुहम्मद साहब का अवतार लिखा। महाबली (अकबर) की प्रशंसा लिख मारी यवनों का अटल राज्य लिख दिया। क्या अच्छा होता कि यह लोग गुरु गोविंद सिंह, राणा प्रताप और शिवाजी का ही अवतार लिख देते। इन देश के शत्रुओं ने यह न सोचा कि जब २४ अवतारों की लिस्ट पहिले ही तैयार हो गई तो फिर नवीन अवतार कहाँ से आगया।

(३) भाषा पर जो कुछ प्रभाव पड़ा वह तो आज भी प्रकट है। बिलकुल अपढ़ भी फारसी और अरबी के बहुत से शब्द प्रयोग करते हैं।

(४) स्त्रियों को परदे में रखना, मृतक गाड़ना क़ब्रों का पूजन, फातिहा दिलाना, भंगियों में सूकर पालना, भिन्न २ प्रथाओं का बढ़ जाना इत्यादि बातें इसी काल से सम्बन्ध रखती हैं बड़े दुःख की बात है कि हमारे बड़े बूढ़े कहानेवाले इन बातों को सनातन धर्म कहते हैं।

(५) बौद्ध काल के अन्त में भी हिन्दुओं का सदाचार बहुत बढ़ा हुआ था। पर इसलामने यदि सबसे अधिक किसी बात को हानि पहुंचाई है तो वह हमारा आचार था। मुहम्मद साहब ने अरबों के दुराचार को बहुत दूर किया पर फिर भी उनको लोगों को अपनी ओर खींचने के लिये कुरान में हूरों और गिलमानों का प्रलोभन देना ही पड़ा। यद्यपि यह प्रलोभन किसी बुरे उद्देश्य से नहीं दिया गया था, पर मनुष्यों की कुप्रवृत्ति को उकसानने के लिये थोड़ी सी बात भी बहुत होती है। इसका प्रभाव यह हुआ कि नमाज़ पढ़ते हुये भी मुसलमानों की दृष्टि अपसराओं पर ही लगी रहती है मुसलमानों में स्त्रियों के सतीत्व और सदाचार का कुछ मान नहीं था. यथा राजा तथा प्रजा की बात सदा सत्य है इसलिये हिन्दुओं में भी यह बातें अपना घर करती गईं हमें यह कहते हुये भी कुछ लज्जा नहीं है कि स्वयं हमारा पिछला साहित्य भी इसी दुर्गन्ध से भरा पड़ा है।

(६) कुछ व्यय तो पहिले ही बढ़ गये थे. कुछ यवन काल में बढ़ गये इसका फल यह हुआ कि संस्कार धीरे २ नष्ट ही होगये जिस से द्विज लोग शूद्रवत् होगये।

## छूत छात और जाति भेद पर प्रभाव

यवन काल में आकर हमारी छूत छात और जाति भेद और भी बढ़ गया। जो जातियां मुसलमानों से कुछ सम्बन्ध

रखती थी लोग उनसे बचाव करने लगे, कुछ लोग उनके साथी बनगये। इस काल में लोग छिपे छिपाये जहाँ के तहाँ पड़े रहते थे उनको इधर उधर का कुछ भी ज्ञान न था इस देश काल के भेद ने रहन-सहन प्रथा और छूत छात पर विचित्र प्रभाव डाला। आज जिन भांतू, हबूड़ो और कंजर आदि को ईसाई लोग कोले, द्राविड़ बताकर हिन्दू जाति का अङ्ग भंग कर रहे हैं वे दीन कभी प्राण रक्षा के लिये जंगलों में भाग गये थे उस दशा में पापी पेट को भरने के लिये उन लोगों ने अन छुये कर्म भी करने आरम्भ कर दिये थे। आज भी इन लोगों में लोधे पँवार, राठौर, चौहान आदि वंश के लोग मौजूद हैं। उन लोगों में खान-पान के विषय में कुछ भेद नहीं है पर विवाह आदि में उनमें कुछ ऐसी बातें पाई जाती हैं जिन से उनका बिल्कुल शुद्ध हिन्दू होना सिद्ध होता है।

बहुत सी जातियां जिन्होंने आपतकाल में यवनों की कुछ बातें मानकर उनकी शक्ति को आगे बढ़ने से रोक दिया था, अलग करदीं।

कुछ राजपूतों ने युद्ध में धोखे से यवनों के थूक पड़े हुये अथवा गौ का अंग पड़े हुये कूपों का जल पी लिया था वे अलग कर दी, जब ब्राह्मण लोगों ने उनके संस्कार न किये तो मुसलमानों से कराने लगीं।

कुछ जातियों ने अपने पुरोहितों की सम्मति से ही कुछ यवनों की बातें मान ली थीं इसलिये उनके यहाँ ब्राह्मण लोग बराबर संस्कार कराते रहे।

बहुत से राजपूत जब युद्ध में पकड़े गये तो उन्होंने वहाँ यवनों के हाथ का भोजन खा लिया इसलिये वे अलग कर दिये गये।

बहुत सी जातियों ने जब किसी आपत में फंसकर मिलन के विरुद्ध कुछ कर्म कर लिया तो उनके पिछड़े विरोधी हिन्दुओं ने उनको जाति से बहिष्कृत करा दिया तो वे कट्टर मुसलमान बनकर उनसे बदला लेने लगे।

मूर्ख लोग परस्पर तो भेद बढ़ाते रहे पर गौ माँस खाने वाले यवनों के हाथ की मिठाई, उनके पात्रों का दूध, उनके घर घर का तेल, घी और तम्बाकू लिये बिना न बचे।

वजू का जल भी छिड़कवाया, बच्चों के मुख में थुकवाया। पर वाहरे हमारे विलक्षण धर्म आगे तू बिलकुल नहीं टूटा। दिमाग की गुलामी तो देखो एक काश्मीरी दूसरी जाति के हिन्दू के हाथ का तो कभी नहीं खावेगा पर मुसलमान के हाथ का भोजन खा सकता है।

जिस जाति में ऐसे मनुष्य जन्म लेते हो वह न मिटे तो कौन मिटेगा।

## नवीन प्रथा कैसे चली

( १ ) यवन काल में किसी वैश्य के यहां बरात आई थी, बूढ़े पुरोहित विवाह संस्कार की तैयारी कर रहे थे, लड़का जनवासे से आ रहा था लालाजी की पालतू बिल्ली बार २ हवन सामग्री को आकर अशुद्ध करना चाहती थी, पुरोहितजी ने कहा जल्दी से एक रस्सी तो लाओ लड़का द्वार पर आ गया, झट एक बालक ने रस्सी लादी पुरोहितजी ने उसे मंडप के खंभे से बाँधकर डाल दिया। कुछ दिनों पीछे बूढ़े ब्राह्मण तो मर गये इसलिये लालाजी की दूसरी कन्या के विवाह में उनके पुत्र आये। जब सब प्रबन्ध ठीक होगया तो लालाजी की चतुर लालायन ब्राह्मण से तड़क कर बोली महाराज कुछ पढ़े भी हो अथवा नहीं, ऐसा ही आता है।

झोली भरनी ही आती है। तुम्हारे पिता तो मंठ से बिल्ली बांधा करते थे। ब्राह्मण ने कहा सेठानीजी शास्त्र में तो ऐसा नहीं लिखा। फिर आप बोलीं वाह महाराज तुम्हारा शास्त्र ठीक मानूं वा आखों देखी बात ठीक मानूं। इतने में लालाजी भी नाक पै दीया जला के आ पहुँचे और बोले वाह महाराज जभी कहते हो मैं काशीजी से पढ़कर आया हूं। बिल्ली तो हमारे कुल में सदा से बंधती चली आई है। हारकर बिल्ली भी पकड़कर आई, उसे बांधा और तब कहीं पाणि ग्रहण हुआ इसी प्रकार बहुत सी प्रथा आजकल ऐसी ही चली आती हैं। जो केवल लकीर के फ़कीर पने को प्रकट करती हैं।

(२) १८ वीं शताब्दी में औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह का एक सिपाही दिल्ली से राजपूताने में जा रहा था। मार्ग के एक ग्राम में वह क्या देखता है कि एक १६ वर्ष का लड़का जटा-जूट साम ने खड़ा है, लड़का देखने में बड़ा प्रतापी जान पड़ता था, उसे देखकर सिपाही को यह भय हुआ कि कहीं राजपूताने में तो सिक्ख मत नहीं फैल रहा है; लोगों से उस लड़के के पिता का नाम और मत पूछा, लोगों ने कहा साहब! एक विधवा का लड़का है. इसके पास इतना धन नहीं है कि अपनी बिरादरी को भोज देकर मुण्डन करा सके इसीलिये यह लड़का जटाजूट है उसको अब भी निश्चय न हुआ इसलिये इसने तुरन्त उसकी बिरादरी के लोगों को बुलाया और उनसे कहा कि अभी नाऊ को बुलाकर इसे मुण्डाओ भोज के लिये मूंछें मुड़ाने वाले दुष्टों ने कुछ आना कानी की इस पर उस मुग़ल सिपाही ने तलवार म्यान से बाहर करली और ऊंट पर चढ़े २ ही उस का मुण्डन कराया। आज तक उस वंश के लोगों में यही प्रथा चली आती है कि एक मुसलमान को ऊंट पर चढ़ाकर नंगी तलवार हाथ में दे देते हैं और सामने नापित

उस्तरा लेकर फैल पड़ता है। यह दो उदाहरण हमने दिये हैं यदि सब प्रथाओं के विषय में लिखें तो बहुत काग़ज़ ख़राब हो सकता है।

## यवन काल के पीछे देश की दशा

यवन काल के अन्तिम दिनों में जब देश फिर हिन्दुओं के अधिकार में आगया तो किसी का भय न रहने से, जाति भेद, छूत छात, बहुदेववाद, दुराचार, गृहयुद्ध ने फिर अपना भयङ्कर रूप धारण कर लिया। महात्माओं ने तो लोगों को शिक्षा दी थी अब वे परस्पर कटने मरने लगे नेताओं ने धर्मगृह को शुद्ध स्वच्छ करने के लिये जिन सींकों को एकत्र किया था, लोगों ने उनको तोड़ मरोड़ कर कूड़े का एक ढेर बना कर एकत्र डाल दिया। इन मतों में से कोई २ तो अपने महापुरुषों को सत्युग में हुआ बतलाते हैं। वे दीन क्या करें सब अज्ञान का दोष है।

## यवन काल से हमको क्या उपदेश मिला

(१) मनुष्य में चाहे अनेक गुण हों, वे सब व्यर्थ हैं यदि उसमें एक ईश्वर से श्रेय नहीं है।

(२) किसी जाति में चाहे संसार के सभी गुण हों, पर यदि उसमें संघटन शक्ति नहीं है तो वह सदा ठोकरें खाती रहेगी।

(३) दुष्ट अर्थात् दूसरों को हानि पहुँचाने वाले, स्त्रियों का सतीत्व भंग करने वाले लोगों के साथ, क्षमा, दया, प्रेम, न्याय, पुण्य आदि सब बातों का प्रयोग करना महा अधर्म का मूल है; जिसका प्रायश्चित्त ही नहीं है।

॥ ओ३म् ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## छठा-अध्याय

## ईसाई-काल

१७०० ई० से अज्ञात समय तक

### ईसाइयों का आगमन और प्रचार

ईसाइयों ने योरोप महाद्वीप से भारतवर्ष में व्यापार के लिये १५ वीं शताब्दी में आना आरम्भ कर दिया था, सब से पहिले इस देश में पुर्त्तगाल देश के निवासी आये थे, यह लोग बड़े ही कट्टर ईसाई थे, इसलिये आते ही धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया, इनकी स्पर्धा से अन्य जातियाँ भी आईं १०० वर्ष पीछे सामुद्रिक व्यापार की सारी शक्ति डच जाति के लोगों के हाथ में आगई इन से १०० वर्ष पीछे फ्रैंचों और अंगरेज़ों ने यह अधिकार छीन लिया। अन्त में अंगरेज़ों ने अपनी चतुराई से सब को ही निकाल बाहर किया, अब उन जातियों का भारतवर्ष में नाम मात्र अधिकार रह गया है। ईसाई मत की प्रचार विधि किसी समय तो यवनों के समान ही थी। पर जिस समय इन लोगों में शिक्षा फैल गई तो उस समय से प्रचार

नीति बदल गई। किसी समय में योरोप में भी भारत के समान ही मठों और महन्तों के द्वारा प्रचार हुआ करता था, पर बहुत दिनों से उस प्रथा को त्याग दिया है जिस समय अंगरेज़ और फ्रेंच भारत में आये उस समय उनकी प्रचार विधि शिक्षा, सेवाभाव, प्रलोभन और कुटना पर निर्भर थी। इसलिये इन लोगों ने शिफाखाने अनाथालय और स्कूल खोले नौकरी और स्त्रियों के प्रलोभन देकर लोग फांसे। ईसाई मत बौद्ध मत का एक विकृत रूप था इस में सदाचार और प्रेम की शिक्षा भरी हुई थी। इसी से यह इसलाम की अपेक्षा अधिक आकर्षक था। परन्तु इस में दार्शनिक विद्वानों तत्व वेत्ताओं और जिज्ञासुओं के लिये कुछ भी मसाला न था इस मत में प्रथम तो वे लोग जाने लगे जो स्त्रियों और नौकरियों के भूखे थे।

दूसरे वे कूप मंडक थे जिनको कुछ थोड़ी सी अङ्गरेज़ी शिक्षा तो मिली थी पर अपने धर्म का कुछ भी ज्ञान न था, जब इन लोगों ने देखा कि अंगरेज़ तो सारे देश के राजा बने बैठे हैं, यह कैसी २ नई मशीनें बनानी जानते हैं, इनकी स्त्रियाँ कैसी २ सुन्दर और फैशनेबिल रहती हैं तो बिना सोचे विचारे इन लोगों ने निश्चय कर लिया कि बस इन्हीं का मत अच्छा है उन्हों ने दृष्टि उठाकर योरुप की ओर न देखा जहाँ इस मत की विद्वान् लोग दुर्गत कर रहे थे। और यदि किसी सुन्दर लेडी (स्त्री) ने ऐसे मनुष्य से हाथ मिला लिया तो रही सही बुद्धि भी उसी के अर्पण करदी।

तीसरे मनुष्य वे थे जो बुद्धि के बड़े तीव्र थे पर उनको आर्य्य ग्रन्थों की कुछ शिक्षा न मिली थी, उनका चित्त हिन्दू धर्म के बहुदेववाद, मूर्त्ति पूजा, जाति भेद छूत छात और पौराणिक बातों से ऊब गया था, जैसे नीलकंठ शास्त्री आदि अनेक मनुष्य।

बहुधा ईसाई मत में वे नीच जातियाँ चली गईं, जिनको हिन्दुओं ने निकम्मा समझकर ही पद दलित कर दिया था। जब इन जातियों ने देखा कि कल तक जिस भंगी के सिर पर मल का टोकरा रक्खा था, वह तो आज कुरसी पर अकड़ा हुआ इंजन के समान मुंह से फक २ धुआँ उड़ा रहा है तो भाई इसी मत में क्यों न जावें।

दक्षिण देश के कई स्थानों में जब अछूत लोग ईसाई होगये तो उन्होंने द्विजों को बड़ी हानि पहुँचाई।

इस पर ईसाई पादरियों ने एक और धूर्तता यह की कि ऋषि, मुनियों, महापुरुषों को कलंकित करने वाली बहुतसी पौराणिक बातें लोगों को सुना २ कर हिन्दू मत से घृणा दिलाने लगे।

इन सब से अधिक बुराई यह थी कि पादरी ब्राह्मण, सन्यासी और कभी २ तो अवतार बनकर भी सीधे सादे लोगों का धर्म भ्रष्ट कर देते थे। इन लोगों को हिन्दू धर्म में कोई स्थान न था हार कर यह भोले भाले गो रक्षक, गोभक्षक ही बन जाते थे। उनकी सन्तान तो बिल्कुल ही कट्टर गो भक्षक बन जाती थी।

इन लोगों ने अपनी नवीन परिभाषायें बना डालीं। वे ईसा मसीह को तोड़ मरोड़ कर प्रभु ईशा कहा करते थे। क्राइष्ट को कृष्ण और बाईबिल को वेद कहा करते थे। बहुत से तो गीता को हाथ में लेकर अपने को कृष्ण जी का भक्त बताकर ईसाई बना लेते थे। इन सब बातों का फल यह हुआ कि जिन लोगों पर कुछ भी नवीन शिक्षा का प्रभाव पड़ गया था वे सब हृदय से ईसाई बन चुके थे और शरीर से बनने वाले थे।

## मुसलमान भी हड़पने लगे

मुसलमानों ने जो देखा कि जिस भोजन के लिये इतने दिनों से आशा लगाये बैठे थे। वह तो वैसे ही लुट रहा है झट उन्होंने हिन्दुओं को फाँसने के लिये बड़े २ जाल फैलाये, कहीं कोई मुसलमान अवतार बना कहीं, कृष्ण बन बैठा। इन सब लोगों में दो मनुष्य हिन्दुओं के हड़पने में सफल हुये एक तो पंजाब में आगाखां दूसरे बम्बई प्रान्त में रहमान नाम का कोई मनुष्य। इन लोगों न पहिले तो हिन्दू मत की बड़ी प्रशंसा की और जब बहुत से मूर्ख हिन्दुओं को मुरीद बना लिया तो कहा कि कलियुग में चुटिया रखनी अधर्म है। यदि तुमको विश्वास न हो तो किसी साधु सन्यासी के सिर को देखना। बस फिर क्या था लोगों ने झट अपनी २ शिखा काट डाली और अपने को हिन्दू मुसलमानों से भिन्न आगाखानी और रहमानी कहने लगे। आज भी लाखों हिन्दू इन मतों के मानने वाले हैं। पर आर्य्यसमाज ने इनका सारा अवतारपना झाड़कर फेंक दिया। जिससे लोग धीरे २ आरहे हैं। ऐसे भयानक समय में धर्म की नैया को पार लगाने वाला कोई भी दिखाई नहीं देता था, ऋषि, मुनियों की आत्मा भी अपना मोक्षानन्द भूल गई होगी। इसी बीच पादरियों ने अमेरिका आदि देशों के निवासियों से इस आशा पर धन की सहायता माँगी कि ५० वर्षों मे भारतवर्ष को ईसाई बना डालेंगे। भारत माता रो रही थी कि हाय मेरी सन्तान का धर्म बचाने वाला कोई हो तो शीघ्र आ जाय परम पिता ने भारतमाता की यह दर्द भरी वाणी सुनी और दो तेजस्वी और अपूर्व विद्यासागर ब्राह्मणों को उसकी सुध लेने के लिये भेजा। पाठक इन महापुरुषों में एक तो श्रीमान महाराज राजाराममोहनरायजी थे और दूसरे स्वामी दयानन्दजी सरस्वती थे।

# ब्रह्म समाज और राजा राममोहनरायजी महाराज

अधर्म से भारत भूमि की रक्षा के लिये राजा राममोहनराय जी ने सब से प्रथम पग बढ़ाया। आपका जन्म सन् १७७४ ई० में बंगाल देश के एक ब्राह्मण वंश में हुआ राजाजी को बचपन ही से धर्म प्रेम था आपने अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और अँगरेजी की पूरी योग्यता प्राप्त करके सारे मतों के ग्रन्थों को भली प्रकार परखा। कुछ दिनों तक सरकारी नौकरी की फिर उसे छोड़कर १८३० ई० में ब्रह्म समाज स्थापित की ८ वर्ष तक इस समाज में वेदों का सब ग्रन्थों से अधिक मान रहा सन् १८३८ ई० में देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उनकी सहायता करनी आरम्भ करदी जिससे समाज का एक प्रेस और पत्र भी होगया। सच्चे धर्म की मीमांसा के लिये एक समिति बनाई जिसका नाम तत्त्व-बोधिनी सभा रक्खा गया। चार ब्राह्मण वेद पढ़ने के लिये काशी में भेजे गये। जब वे आये तो उन्होंने वेदों के विषय में ऐसी बुरी सम्मति दी जिससे लोगों की श्रद्धा बिल्कुल वेदों से हट गई। और उनकी प्रतिष्ठा अन्य मतों के ग्रन्थों के बराबर रह गई। कुछ समय के पश्चात् परस्पर के मत भेद से इसकी तीन शाखा होगई।

(१) ब्रह्म समाज (२) आदि ब्रह्म समाज (३) साधारण ब्रह्म समाज।

बाबू कश्यप चन्द्रसेन ने सारे सभ्य संसार में इस समाज की बड़ी कीर्ति फैलाई थी। बंगाल देश में इस समाज का बड़ा प्रचार है।

## ब्रह्म समाज के सिद्धान्त

(१) परमेश्वर सर्वव्यापक है उसमें कोई भी दोष नहीं है। सदाचारी रहना ही सच्ची उपासना है।

(२) कोई पुस्तक दोष रहित नहीं है।

(३) मूर्ति और क़ब्रादि की पूजा न की जावे।

(४) मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को दुःख न देना चाहिये।

(५) सब जातियों के मनुष्य इस में आ सकते हैं पर सामाजिक बातों में सब स्वतन्त्र हैं।

नोट—बम्बई प्रान्त में इन्हीं सिद्धान्तों को मानने वाली एक संस्था प्रार्थना समाज है।

# आर्य समाज के प्रवर्तक
# दया और आनन्द के सागर ब्रह्म कुल दिवाकर
# महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती

सन् १८२४ ई० में गुजरात देश के मोरवी ग्राम के एक बड़े धर्मात्मा और कुलीन उदीच्य ब्राह्मण अम्बाशंकर के घर में एक बालक हुआ, जिसका नाम मूलशंकर रक्खा गया अपने कुल की प्रथा के अनुसार बालक को शिक्षा दी गई। अपने कई प्यारे मनुष्यों की मृत्यु से दुखी होकर यह छोटा सा बालक यह चिन्ता किया करता कि इस मृत्यु के भय से किस प्रकार बच सकते हैं। एक दिन इस छोटे से बालक ने अपने घर वालों के साथ शिवरात्रि का व्रत रक्खा आधी रात के पश्चात् सब लोग सो गये पर बालक शिवजी के दर्शनों की आशा में न सोया। थोड़ी देर में क्या देखता है कि चूहे शिवजी पर चढ़े हुये पदार्थों को खाकर और फिर उसी पर मल मूत्र को त्याग कर भाग गये, बालक का चित्त उसी समय मूर्ति पूजा से हट गया। कुछ दिनों के पश्चात् बालक के विवाह का भी प्रबन्ध होने लगा। पर जिस समय बालक को सूचना मिली

धर्म-इतिहास-रहस्य

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

पृष्ठ २१८

SHUKLA PRESS, LUCKNOW

तो उसे बड़ा खेद हुआ। और बिना किसी से कहे घर से निकल गया, घर से जाने के कुछ काल पश्चात् एक बड़े महात्मा से सन्यास दीक्षा ली। सन्यास दीक्षा के पश्चात् स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम रक्खा गया।

स्वामीजी को सदा अच्छे २ ज्ञानियों और विद्वानों की खोज रहती थी। इसी टोह में वे मथुराजी में आ पहुंचे। और प्रज्ञानन्द दंडी के आश्रम पर विद्याध्ययन करने लगे। जब विद्या समाप्त करली तो अन्य विद्यार्थियों की भांति यह भी दंडीजी को गुरु दक्षिणा देने लगे। दंडीजी ने कहा कि पुत्र दयानन्द! मैं तुम से बस यह दक्षिणा मांगता हूँ कि तू देश से पाखंड और अधर्म के नाश करने में मुझे अपना जीवन ही दे डाल। मैं यह देखता हूँ कि इस कार्य्य के लिये तुझसे अधिक योग्य शिष्य मुझे नहीं मिल सकता। स्वामीजी ने कहा महाराज मैं ऐसा ही करूँगा। मथुरा से जाकर स्वामीजी ने योगाभ्यास आरम्भ कर दिया, यहाँ तक कि वे २४ घंटे की समाधि लगाने लगे पर गुरुजी की आज्ञा कब चैन लेने देती थी इसलिये वे प्रचार के विषय में विचारने लगे।

## स्वामीजी के समय देश की दशा

भारतीय और विदेशीय विद्वान् तो भारतवर्ष की वर्त्तमान दशा को देखकर ही रो रहे हैं पर यदि स्वामीजी के समय की दशा देखते तो न जाने कैसे प्राण रखते।

जिस समय स्वामीजी ने विद्या समाप्त की थी वह समय क्या था। मानों वाम काल ही अपना पहिले से भी अधिक भयंकर रूप धारण करके आगया था। हिंदू लोग अपने असंख्य मत मतांतरों के नाम पर परस्पर लड़ा कटे मरे जाते थे, पर दूसरों के सामने स्याऊं बन जाते थे। लोगों ने एक दूसरे

की हद पर अपने २ आचार्यों और देवताओं को परमेश्वर से भी बढ़ा दिया था। जो बातें महापुरुषों ने किसी समय धर्म रक्षा के लिये बताई थीं वे ही वेद वाक्य बन गईं। जितनी गौण बातें थीं वे ही प्रधान बन गईं और मूल बातों का चिन्ह भी न रहा था। बाल-विवाह, बहु-विवाह और वृद्ध विवाह का बड़ा ही प्रचार था जिस से विधवाओं की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। इन में जो सती थीं वे तो घर वालों के धक्के मुक्के खाते हुये भी पीस कूट कर अपने जीवन को काट देती थीं, पर अधिकतर इन में भ्रूणहत्या करती थीं अथवा ईसाई, यवन हो जाती थीं। पुजारियों का दुराचार अबसे कहीं अधिक था छूत की यह दशा कि पुत्र बाप के हाथ का भोजन नहीं करता था। ईसाई और मुसलमानों के करतूत तो पाठ पहिले ही देख चुके हैं।

## स्वामीजी का प्रचार

१८५७ ई० के निकट स्वामीजी मौन व्रत धारण किये हुये श्री गंगाजी के किनारे २ विचरा करते थे। जब राजा जयकृष्णदासजी को इसकी सूचना मिली तो वे श्री स्वामी जी को अपने घर ले आये, राजाजी ने स्वामीजी की आज्ञानुसार बहुत से ग्रन्थ मँगाये। इसके पश्चात् स्वामीजी ने कानपुर और फ़रुखाबाद में पाठशालायें खोलीं। जब स्वामीजी ने देखा कि ब्राह्मण लोग तो आवश्यकता से अधिक तथा अन्य विद्याओं को पढ़ने में कुछ भी प्रेम नहीं रखते तो कहा मैं जान गया हूँ कि जब तक इस पके हुये फोड़े को चीर कर दूषित भाग निकाल कर न फेंका जावेगा यह अच्छा नहीं हो सकता।

अब स्वामीजी ने उस समय की कुप्रथाओं का खंडन कुछ मर्म शब्दों में आरम्भ किया पर जिस समय इन्होंने इस से

भी कार्य्य चलता न देखा तो सारे मत मतान्तरों का खंडन करना आरम्भ कर दिया अब तो अपने २ मतों की बुराई सुनकर लोगों में अग्नि सी लग गई। और स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिये कहने लगे। जो भी सामने आया वही परास्त किया। मुसलमान और ईसाई बड़े प्रसन्न होरहे थे कि हिन्दुओं की भली पोल खोली जारही है। पर जिस समय स्वामीजी ने मुसलमानों और ईसाइयों की भी खबर ली तो लोगों को लेने के देने पड़ गये हिन्दू तो स्वामीजी से कुछ डकर लेते भी थे। पर मुसलमानों और ईसाइयों के सिद्धान्तों पर जब वे छोटा सा भी आक्षेप कर देते थे तो मुख पर हवाई उड़ने लगती थीं।

ब्रह्म समाज लाहौर ने जब सुना कि एक सन्यासी इस प्रकार मतों को परास्त कर रहा है तो उसने बड़े आदर से स्वामीजी को लाहौर बुलाया। स्वामीजी के दुख से भरे उपदेश को सुनकर बहुत से हिन्दू उनके साथी बने और आर्य्यसमाज की स्थापना हुई। इसके पश्चात् स्वामीजी ने शंकर स्वामी की भांति सारे भारतवर्ष में जहाँ तहाँ शास्त्रार्थ और उपदेश करके वैदिक धर्म का गौरव बढ़ाया।

स्वामीजी ने अभी थोड़े दिनों प्रचार किया था कि उनके ब्राह्मण रसोइया ने लोभ वशीभूत होकर विष दे दिया। करने को तो वह यह पाप कर गया पर पीछे से बहुत ही अन्य पश्चात्ताप करके रोने लगा। स्वामीजी के अन्य साथियों ने उसको दंड दिलाने का पूरा २ प्रबन्ध कर लिया था, पर स्वामीजी ने कहा कि क्या मैं अपने भाइयों को फाँसी दिलाने के लिये आया था, मैं तो इनको बन्धनों से छुड़ाने के लिये आया था। यह कहकर अशरफ़ियों की एक थैली हत्यारे के हाथ में देकर कहा कि इसी समय नैपाल देश में भाग जा।

स्वामीजी मरते समय अपने शिष्यों से कहा कि देखो मेरी राख को किसी कृषक के खेत में डाल देना और मेरी समाधि आदि न बनाना। १८८३ ई० में स्वामीजी का देवलोक वास हुआ। स्वामीजी की जीवनी में लिखा है कि मरते समय उनके मुख से यह शब्द निकले थे कि परमात्मन् तुम्हारी इच्छा पूरी हो।

## स्वामीजी की विशेषतायें

(१) स्वामीजी वेदों के बड़े भक्त थे। शंकर स्वामी के पश्चात वेदों का पुनरुद्धार स्वामीजी ने ही किया था।

(२) स्वामीजी बालब्रह्मचारी थे, उन्होंने विद्या, बुद्धि और बल से संसार को ब्रह्मचर्य्य का महत्त्व दिखला दिया।

(३) स्वामीजी हठी न थे। एक दिन उनके मुख से कोई अशुद्ध शब्द निकल गया एक साधारण से मनुष्य ने भरी सभा में स्वामीजी को टोक दिया, स्वामीजी ने उसे स्वीकार किया।

(४) स्वामीजी अपनी बात के बड़े पक्के थे एक दिन किसी हिन्दू ने उनको अपने यहाँ न ठहराया तो मुसलमान लोग अपने यहाँ ले गये। और उपदेश को कहा, स्वामीजी उनका भी खंडन करने लगे।

## स्वामीजी के पीछे समाज की दशा

स्वामीजी के कुछ दिनों पीछे आर्य्य समाज में कुछ मत भेद हो गया था, सिद्धान्तों में तो कुछ मत भेद न था, पर उनके अर्थों की खींचातानी से मत भेद होगया था। कुछ महाशय तो आर्य्य समाज को पश्चिमी सभ्यता में रंगना चाहते थे, और कुछ उसको प्राचीन वैदिक काल में ले जाना चाहते थे। पर थोड़े ही दिनों के पीछे यह झगड़ा दूर होगया।

स्वामीजी के पश्चात् पं० गुरुदत्तजी एम. ए., पं० लेख राम और स्वामी दर्शनानन्दजी ने आर्य्य समाज की बड़ी उन्नति की। इन महापुरुषों के रचे हुये ग्रन्थ देखने के योग्य हैं।

वैदिक धर्म के विषय में विद्वानों को जो २ शंका होती है, इन ग्रंथों में उनको भली प्रकार दूर कर दिया है।

## आर्य्य समाज की विशेषतायें

(१) आर्य्य समाजों का संघटन बहुत अच्छा है

(२) आर्य्य समाजियों का साहस, और त्याग सराहनीय है।

(३) आर्य्यसमाज के विषय में अमेरिका के महात्मा एन्ड्रो जैक्सन डेवीस लिखते हैं कि आर्य्यसमाज एक ऐसी दहकती हुई भट्टी है कि जिस में संसार के सम्पूर्ण मत एक दिन भस्म हो जायेंगे।

(४) आर्य्यसमाजी सम्पूर्ण मतों से लड़ते हुये भी उनसे द्वेष नहीं रखते। यही एक अनुपम गुण है।

## आर्य्य-समाज के सिद्धान्त

आर्य्यसमाज के १० नियम और स्वामीजी के ५२ मंतव्य हैं वे सबके सब वैदिक धर्म के अन्तर आजाते हैं। इसलिये श्री स्वामीजी के पांच बड़े सिद्धान्तों को ही पाठकों की सुगमता के लिये आगे लिखे देते हैं

(१) मूल चार संहिता ही वेद हैं।

(२) अवैदिक काल में जितने मत फैले हैं वे सब त्याग कर शुद्ध वैदिक धर्म के मार्ग पर चलना चाहिये।

(३) वेद पढ़ने का सब को अधिकार है।

(४) श्राद्ध, मूर्तिपूजादि का वैदिक धर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है।

(५) वर्ण जन्म से नहीं होते वरन गुण, कर्म और स्वभाव से होते हैं, प्रत्येक मनुष्य को उनमें आने का अधिकार है।

# सिद्धान्तों पर एक गहरी दृष्टि

## प्रथम सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के विषय में हम को अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। स्वामीजी को इस बात पर बल देने के दो कारण थे प्रथम यह कि उनका उद्देश्य संसार के सामने उसी शुद्ध वैदिक धर्म को रखकर मत मतांतरों का नाश करना था दूसरा कारण उपनिषदादि को अन्य महापुरुषों की भाँति वेद संज्ञा न देने का यह था कि पाखंडी लोगों को इससे पाखंड फैलाने का फिर अवसर मिल जाता क्योंकि अब अल्लोपनिषद् के समान झूठे उपनिषद् भी लोगों ने रच मारे थे। इसके साथ ही मुक्ति के ठेकेदार यह भी कहने लगते कि जब तुम अपने ऋषियों के रचे ग्रन्थों को वेद मानते हो तो हमारे मुहम्मद साहब की बात को वेद क्यों नहीं मानते। वैदिक काल में हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि ईश्वर कृत होने से वेदों में भूल नहीं हो सकती। इसी लिये स्वामीजी अपने ग्रंथों को भी परतः प्रमाण मानते हैं। किसी नवीन मत को चलाने वाला मनुष्य अपने मुख से यह बात नहीं कह सकता क्योंकि इतना कहने से ही उस की सारी चिड़ियाँ जाल से निकलकर भाग जावेंगी।

स्वामीजी के इस सिद्धान्त पर यह आक्षेप हुआ करता है कि जब स्वामीजी अपनी बातों को भी परतः प्रमाण (संदिग्ध) मानते हैं तो वे मनुष्य जिन्होंने वेद नहीं पढ़े। स्वामीजी की बातों को कभी नहीं मान सकते। यह आक्षेप तो इसके विरुद्ध स्वतः प्रमाण कहने पर भी हो सकता था,

क्योंकि सभी मतों के नेता अपने ग्रन्थों को स्वतः प्रमाण और दूसरों को परतः प्रमाण मानते रहे हैं। एक मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता कि इन में से किस को माने स्वामीजी का यह सिद्धान्त जिज्ञासुओं और विद्वानों के लिये है। मूर्खों को तो और ही नरक के गढ़े भरे पड़े हैं।

इसी से मिलता जुलता एक आक्षेप यह भी हुआ करता है कि जब सभी ग्रन्थ स्वामीजी ने संदिग्ध बतला दिये तो फिर उन पर विश्वास करके आचरण ही कौन करेगा। सुनिये महाशयजी मूर्ख को तो कभी सत्य बात पर पूर्ण विश्वास हो ही नहीं सकता, यदि उसमें यह गुण है तो उसे मूर्ख कहने वाला ही मूर्ख है। अज्ञानी तो केवल दो बातों को मानता है, एक तो भय, दूसरे प्रलोभन। उसमें जिज्ञासा नहीं होती इसलिये वह अपने कल्याण के लिये दूसरों के पीछे ही विवश होकर चलना जानता है। यह ग्रन्थ वेदों के तत्त्वज्ञान के प्राप्त करने के लिये सम्मति दाता हैं। यदि मनुष्य में सम्मति से लाभ उठाने की बुद्धि ठीक २ नहीं है तो यह ग्रन्थ उसे कुछ लाभ नही पहुँचा सकने मूर्खों के लिये तो किसी भी दशा में लाभदायक नहीं, पर ज्ञानियों के लिये स्वतः प्रमाण होने की दशा में कभी २ हानिकर हो सकते हैं जो मनुष्य सम्मति पर कुछ विचार नहीं करता वह बहुधा हानि उठाता है।

तीसरा आक्षेप यह हुआ करता है कि जब मूल चार संहिताओं में परमेश्वर ने सारा ज्ञान मूल रूप से इसलिये दिया था कि मनुष्य की बुद्धि उसकी व्याख्या करके संस्कृत हो तो फिर यह सारे ग्रन्थ जिनमें वेदों की व्याख्यां ही है व्यर्थ सिद्ध होगये। आक्षेप अनुचित नहीं हैं। वास्तव में बात यह है कि, मनुष्य वा जीव अल्प शक्तिवान होने से सहायता का अधिकारी है। जो मनुष्य जितनी सहायता का अधिकारी है

उसको उतनी ही सहायता मिलनी चाहिये। यदि ऐसा न किया जावे तो यही पाप है। भावी सन्तानों की सहायता के लिये महापुरुषों ने इसी नियम के अनुसार ग्रन्थ बनाये थे इस बात को समझने के लिये एक छोटा सा यह उदाहरण ले लो कि बच्चा जितना छोटा होता है माता, पिता और उसके रक्षकों को उतनी ही अधिक उस की सहायता करनी पड़ती है। और ज्यों २ वह बड़ा होता जाता है, उतनी ही उसकी सहायता कम करते जाते हैं, क्योंकि उसके जीवन का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब कि वह बिना किसी की सहायता अपनी रक्षा आप कर सके। इसी प्रकार यद्यपि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य यही है कि वह वेदों के तत्त्व को स्वयं जाने, पर यदि उसकी सहायता न की जावे तो वह उस उद्देश्य को कब पूरा कर सकता है। इस में यह शंका और हुआ करती है कि जिस प्रकार ग्रंथ बनाने वाले ऋषियों ने बिना ग्रंथों की सहायता के वेदों के तत्त्वों को जान लिया था इसी प्रकार यह मनुष्य भी जान सकते हैं, यही एक भ्रम है। उन ऋषियों ने भी बिना दूसरों की सहायता के तत्त्वों को नहीं जाना था, यदि इस जन्म में नहीं तो अन्य जन्मों में दूसरे ज्ञानियों से सहायता ली होगी।

वेदों में जो मूल रूप में ज्ञान दिया है उसका केवल यही कारण नहीं है कि मनुष्य की बुद्धि उसे खोल २ कर विकसित हो वरन इसके तीन कारण और भी हैं जो आगे लिखते हैं।

(१) सृष्टि नियम वेदों की बातों को खोलने के लिये पूरा पूरा सहायक है।

(२) वेद मंत्रों और सृष्टि नियम की सहायता से मनुष्य अल्पज्ञ होने पर ज्ञान को भली प्रकार प्राप्त कर सकता है।

जिस प्रकार संसार के अन्य पदार्थों का मूल सृष्टि की आदि में दिया जाता है, इसी प्रकार ज्ञान का मूल (वेद) भी एक ही बार दिया जाता है। प्रकृतिक पदार्थों के मूल की रक्षा तो प्राकृति ही परमेश्वर की सहायता से कर सकती है, पर ज्ञान के मूल की रक्षा ज्ञान शक्ति (जीव) ही परमेश्वर की सहायता से कर सकती है। यदि वेद अपने विस्तृत रूप में होते तो यह जीव उनकी रक्षा नहीं कर सकता था इसलिये परमेश्वर ने जीव की यह सहायता वेदों की रक्षा करने के लिये की कि वे मूल रूप में दिये। यह तो एक साधारण सी बात है, मनुष्य वट वृक्ष की आन्धी, पाले ओले आदि से रक्षा नहीं कर सकता हाँ यदि उसके जीवन में वट वृक्ष एक आवश्यक पदार्थ है तो उसकी रक्षा का यही उपाय है कि वह उसके बीज की रक्षा करले। आज जो लाखों ग्रंथों का पता नहीं चलता पर चारों वेद आज तक रक्षित रहे उस का यही कारण है।

## ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड, ब्रह्म

जिन विद्वानों ने मस्तिष्क विद्या का कुछ भी क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया है। वे जानते हैं कि हमारे मस्तिष्क में असंख्य ज्ञानों के मूल भरे पड़े हैं, यदि परमेश्वर इन विचारों को विस्तृत रूप में रखता तो हमारा मस्तिष्क कदाचित् पृथ्वी से कुछ बड़ा ही रखना पड़ता और यह भी व्यर्थ होता। क्योंकि उस दशा में जब मनुष्य एक विचार का प्रयोग करना चाहता तो झट दूसरे विस्तृत विचार भी उसके सामने आ खड़े होते। जब तक हमारी मननशक्ति के सामने एक ही विशेष विचार न हो हम कुछ नहीं सोच सकते। एक विद्यार्थी एक गणित का प्रश्न हल करना चाहता है, झट उसके सामने पतंग बाज़ी का विचार आ गया, बस गणित का प्रश्न भूल गया इसी पर

विचार करने लगा, अभी कुछ ही विचार किया था कि झट हांकी की मैच का ध्यान आगया, बस अब पतंग बाजी भी धूल में मिल गई। वह बालक गणित के प्रश्न को हल क्यों नहीं कर सका? इस वास्ते कि उसके सामने कई आवश्यक प्रश्न खड़े होगये थे। अब सोचने की बात है कि जब मनुष्य के सामने असंख्य विचार विस्तृत और आवश्यक रूप धारण किये हुये मूर्त्तिमान होते तो मनुष्य पागल से भी परे पागल होता। सन्ध्या के मन्त्रों में जो बहुत से मनुष्यों का ध्यान नहीं जमता उसका भी यही कारण है। हमारा मस्तिष्क क्या है? वह एक ऐसी हंडिया है जिसमें असंख्य ज्ञानरूपी वृक्षों के बीज भरे हुये हैं। अब हमारे जीवन को जिस ज्ञान वृक्ष (विद्या) की आवश्यकता हो उसी का बीज लेकर वृक्ष खड़ा कर सकते हैं। इस विषय को स्पष्ट करने के लिये एक इतिहास की घटना याद आ गई. जब हुमायूं सम्राट ने निज़ाम भिश्ती को २ घंटे के लिये बादशाह बना दिया तो वह राज्यैश्वर्य्य देखकर इस चक्कर में पड़ गया कि मैं क्या २ लाभ उठाऊं अन्तिम समय में केवल इतना ही कह सका कि चाम के दाम चला दिये जावें।

वेद क्या हैं? वास्तव में वे भी इस भूमंडल के मस्तिष्क हैं यदि उनका ज्ञान भी सविस्तार दिया जाता तो वे भी वैसे ही व्यर्थ हो जाते जैसे कि मस्तिष्क हो जाता। काल के कराल चक्र में पड़कर जब हमारा बहुत सा वैदिक साहित्य नष्ट हो गया तो हमारे पूर्वजों ने वेदों और उनकी शाखाओं के कार्य्य को ब्राह्मण कुलों में विभाजित कर दिया क्योंकि एक मनुष्य वेदों के सारे विस्तृत ज्ञान को नहीं संभाल सकता; संसार का कोई भी मनुष्य सारे विषयों में कभी पंडित नहीं हो सकता किसी समय वह विषय विभाग मनुष्य की योग्यता पर (गुण, कर्म)

स्वभाव, पर था पर जिस समय वेदों की रक्षा का प्रश्न सामने आपड़ा था उस समय यह विभाग जन्म पर ही रख दिया था।

पश्चिमी विद्वानों से आप प्रश्न कीजिये कि भगवन् जब आपके सिद्धान्तानुसार भी विना सीखे किसी बात का ज्ञान नहीं होता तो मनुष्य के मस्तिष्क में जो असंख्य ज्ञान बीज रूप से भरे पड़े हैं ये कहाँ से आये तो वे मुख तकते रह जाते हैं पर एक आर्य्य इस बात का उत्तर यह दे सकता है कि उसने असंख्य पिछले जन्मों में यह ज्ञान प्राप्त किया है।

शिक्षा क्या है? वह केवल बालक के सोये हुये विचारों को जगाने का नाम है। जिस प्रकार कड़े छिलके के बीज उस समय तक नहीं उगते जब तक कि छिलके को गला न दिया जावे अथवा गाढ़ निद्रा में सोया हुआ मनुष्य उस समय तक नहीं जागता जब तक उसे बहुत ही न झकोड़ा जावे इसी प्रकार जिन मनुष्यों के मस्तिष्क के ऊपर प्रकृति का मोटा छिलका चढ़ा रहता है उन पर शिक्षा का प्रभाव उस समय तक नहीं पड़ता जब तक कि उसे प्रेम के जल से और चिन्ता की गर्मी से न गला दिया जावे।

जिस प्रकार मस्तिष्क के ज्ञान बीजों से वे ही मनुष्य ज्ञान वृक्ष (नवीन २ विद्या) उत्पन्न कर सके हैं जो कि अधिक समय तक एक विषय पर ध्यान जमा सकते हैं, इसी प्रकार वेदों के तत्व को भी वही मनुष्य पहिचान सकता है, जो पूरा २ ध्यान जमाने वाला अर्थात् योगी हो।

हमारे भोले भाले भाई यह भी आक्षेप किया करते हैं कि जब वेद से भी उसी दशा में वही बात सिद्ध होती है जो मस्तिष्क से होती है तो फिर वेदों से क्या लाभ हुआ। भोले भाइयो! यह तो विचार करो कि यदि संसार में वेद न होते तो मस्तिष्क

में वह ज्ञान बीज ही कहां से आते। यह ज्ञान बीज तो अनेक जन्मों से ही जीव में जोड़े हैं। जिन जीवों के मस्तिष्क में वे ज्ञान बीज हैं, उनके लिये वेदों का पठन वैसा ही लाभ पहुँचाता है जैसे किसी भूली हुई बात को पुस्तक पढ़कर ताज़ा कर लेना। और जिन जीवों के मस्तिष्क में वे ज्ञान बीज नहीं हैं उनके लिये वेदों का पठन ऐसा है जैसे पुस्तक में किसी बिल्कुल नवीन विषय को पढ़कर नवीन ज्ञान प्राप्त कर लेना।

एक अध्यापक अपने शिष्यों को शरीर शास्त्र पर कुछ पाठ देना चाहता है। हड्डियों का ढांचा भी इसके सामने रक्खा है। शरीर के भिन्न २ भागों के चित्र भी उसके सामने रक्खे हैं। अब यदि इस अध्यापक ने किसी पूर्ण अध्यापक से अथवा किसी पूर्ण विद्वान् की पुस्तक से शरीर शास्त्र का पूरा २ ज्ञान प्राप्त नहीं किया है तो वह अपने शिष्यों को ठीक २ नहीं सिखा सकता इसी प्रकार कोई विद्वान् केवल सृष्टि की सहायता से लोगों को पूर्ण ज्ञान कभी नहीं दे सकता जैसा कि पश्चिमी विद्वान् कहते हैं। यही कारण है कि दिन में सौ २ बार उनकी थ्योरियां बदलती रहती हैं। इसी प्रकार कोई मनुष्य बिना सृष्टि के चित्र को सामने रक्खे हुये भी पूर्ण शिक्षा नहीं दे सकता है जैसा कि ह० मुहम्मद ने किया था। यदि कोई अध्यापक स्वयं तो पूर्ण ज्ञानी है और सृष्टि नियमों को सामने रखकर शिक्षा भी देता है पर अपने शिष्यों के लिये कुछ नोटों की सामग्री का भी प्रबन्ध नहीं करता तो कुछ समय के पश्चात् उसके शिष्य भी भूल भाल कर वैसे ही होजावेंगे जैसे कि जैन बौद्ध हो गये थे। सब से अधिक शुद्ध नोट क्या है? यह सर्वज्ञ गुरू के बनाये हुये

मूल चार वेद हैं

## वैदिक धर्म की विशेषता

वैदिक धर्म की शिक्षा में यही विशेषता है कि वह सर्वाङ्ग पूर्ण होने से यही कहती है कि पहिले वेद और सृष्टि के द्वारा स्वयं पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो, और फिर सृष्टि-नियमों को सामने रखकर शिक्षा दो। तत्पश्चात् अपने शिष्यों के लिये शुद्ध नोटों का भी प्रबन्ध कर दो और उनके ठीक व बे ठीक होने की कसौटी उन्हीं चारों वेदों को बतलादो। कहीं ऐसा न हो कि कोई अज्ञानी भ्रम में डालदे, अथवा तुम ही कोई भूल करगये हो

### दूसरा-सिद्धान्त

सनातन वैदिक धर्म सार्वभौम धर्म है, यह बात हम वैदिक काल में भली प्रकार सिद्ध कर आये हैं। पर वाम काल में जिस प्रकार वैदिक धर्म का ह्रास होगया उसे सभी विद्वान् जानते हैं। यद्यपि बहुत से भोले लोग इस में वामियों का ही दोष बतलाते हैं और बहुत से सरल मार्गियों का दोष बतलाते हैं, पर न्याय पूर्वक देखा जावे तो इस में व्यक्ति का अपराध न था। यह सब अपने कर्मों के फल की कृपा थी। यदि इन दोनों प्रकार के ब्राह्मणों को कुछ अपराधी कहा भी जा सकता है तो उसी प्रकार कहा जा सकता है जैसे किसी मनुष्य को कंगाल अथवा रोगी होने की दशा में अपराधी कह सकते हैं। संसार में वैदिक काल के पश्चात् जितने भी मत फैले उन सब मतों ने मनुष्य समाज को उसी प्रकार लाभ पहुँचाया जिस प्रकार सूर्य्य के अस्त होने पर लोग चन्द्र और तारा गण के प्रकाश में अपना कार्य्य कर लिया करते हैं। स्वामी दयानन्द अथवा आर्य्य समाज का यह सिद्धान्त संसार के लोगों से यही कहता है कि भाइयो अब तुम उन सूर्य्य-प्रताप से छिपते हुये चन्द्र और तारों का मोह त्याग कर सूर्य्य के प्रकाश से लाभ उठाओ, कहीं ऐसा न

हो कि तुम अगले जन्म में निशिचर बन जाओ पर लोग उनकी कुछ नहीं सुनते, उनको वेद भगवान के निकलते हुए सूर्य्य को देखकर भय प्रतीत होता है। भला यह कैसे हो सकता है कि वे सूर्य्य से लाभ न उठावें, उनको तो समय विवश करदेगा।

## तीसरा-सिद्धान्त

अनेक मुनियों की जीवनी से और स्वयं यथेमां वाचं की पवित्र वाणी से यह बात सिद्ध है कि वेद पढ़ने का सब को अधिकार है, हाँ जो लोग पढ़ना न चाहें अथवा जो पढ़ सकते हों उनको कोई विवश भी नहीं करता कि वे अवश्य पढ़ें। वेद भगवान् ईश्वरीय ज्ञान है ईश्वर के बनाये हुये पदार्थों से लाभ उठाने का सबको अधिकार है। जिस सूर्य से एक ब्राह्मण प्रकाश लेता है उसी से शूद्र भी लेता है जिस गंगा माई में एक नम्बुद्रि स्नान करता है उसी में भंगी भी कर सकता है।

संसार में जब से वेदों के पढ़ने का यह अधिकार मनुष्य जाति से छीना गया तभी से अधर्म बढ़ता गया, उसी के फल स्वरूप आज हमारे फूटे नेत्रों के सामने गौमाता का रक्त बह रहा है हमारे देवालय भ्रष्ट किये जाते हैं। भला सोचने की बात है कि जब तक वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को न होगा उस समय तक धर्म कैसे फैल सकता है और जब धर्म नहीं फैल सकता तो गो बधादि पाप कैसे बन्द हो सकते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि वेद पढ़ने का अधिकार सबको नहीं है, वे नहीं जानते कि इतना शब्द कहते ही न जाने कितनी गौओं का बध कर डालते हैं। हम यह जानते हैं कि कोई भी आर्य्य यह नहीं चाहता कि धर्म प्रचार को बन्द करके गौ के शत्रुओं की संख्या बढ़ाई जावे पर मनुष्य अपने अज्ञान और अपनी टेवों के सामने विवश है। कोई भी मनुष्य आपत्ति में

फंसना अच्छा नहीं समझता पर यह अज्ञान और यह पुरानी टेव ऐसी है जो मनुष्य से सब कुछ करा लेती है।

स्वामीजी के समय में ब्राह्मण लोग भी पढ़ना पढ़ाना छोड़कर नौकरियों की धुन में लगे हुये थे। आज भी बड़े २ नामी वेद पाठी कुलों के ब्राह्मण अंगरेज़ी शिक्षा में इतने डूबे हुये हैं कि उन को ब्राह्मण होने का तो कभी ध्यान भी नहीं आता, वे तो अपने को न्यूटन का प्रयोग सिद्ध करने के लिये भोजन करते समय जूता तक नहीं उतारते, स्वामीजी ने जब देखा कि जिन ब्राह्मणों ने अब तक वेदों की रक्षा की थी वे तो अब सब कुछ भुलाना चाहते हैं तो झट उन्होंने ईश्वर की प्रेरणा से यह नियम बनाया कि वेद पढ़ने का अधिकार सब को है। इस बात को सुनते ही ब्राह्मण लोग चौंक पड़े कि यह तो सारी बात डूबी। झट वे क्रोध में भर कर कहने लगे कि सनातन से वेदों के पढ़ने का अधिकार ब्राह्मणों को ही है। अब्राह्मण लोगों ने देखा कि यह तो कुछ दाल में काला है, झट वे भी उनके सामने डट गये। इसका फल यह हुआ कि स्वामीजी की उत्पन्न की हुई स्पर्धा के कारण इस नौकरी बाज़ी और अश्रद्धा के समय में भी भाषा, संस्कृत, और धर्म की दिन दूनी उन्नति हो रही है, सन् २१ ई० की जन संख्या की रिपोर्ट में लिखा था कि हिंदुओं ने धर्म के विषय में सब मतों से अधिक उन्नति की है।

## चौथा-सिद्धान्त

पौराणिक काल में हम इस बात को दिखला चुके हैं कि वर्त्तमान श्राद्ध और तर्पण किस प्रकार चलाये गये थे। जिस प्रकार महापुरुषों की चलाई हुयी अन्य बातें समयान्तर में हमारे नाश का मूल बन गई इसी प्रकार यह श्राद्ध और तर्पण भी हो गये।

जिस समय स्वामीजी ने अपना प्रचार आरम्भ किया था, वह समय अब से भी बुरा था। पौराणिक बातों के अनुसार चाहे कोई मनुष्य कितना ही धर्मात्मा क्यों न हो उसको उस समय तक मुक्ति मिलनी असम्भव है जब तक कि उसका कोई श्राद्ध और तर्पण करने वाला पुत्र न हो। भोले लोगों ने मूल बात को न समझकर केवल उलटी सीधी सन्तान करने में ही अपनी मुक्ति समझ रक्खी थी। सन्तान न होने की दशा में स्त्री पुरुष में परस्पर बड़ा द्रोह रहता था। इसी की लालसा में लोग कई २ विवाह करके विधवाओं की संख्या बढ़ा रहे थे। धूर्त लोग सन्तान उत्पन्न करने के मिस कहीं स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करते थे। कहीं ठग २ कर सुलफा उड़ाते थे। स्त्रियां भी संतानों के लिये अपने सतीत्व को खो रही थीं आज भी बहुत सी स्त्रियों को घर वाले इस लिये दुखी रखते हैं कि उनके पेट से संतान क्यों नहीं होती? समझदार लोग विचार कर सकते हैं कि इन पददलित देवियों में से कितनी स्त्रियां सती रहती होंगी। केवल इस श्राद्ध और तर्पण ही ने स्त्री पुरुष का वह पवित्र प्रेम और गृहस्थ का सारा सुख धूल में मिला दिया था। विद्वान् लोग जानते हैं कि वैदिक धर्म का मूल सिद्धान्त केवल आवागमन है यदि वैदिक धर्म से इस सिद्धान्त को निकाल दिया जावे तो उसमें कुछ भी नहीं रह जाता है। पर श्राद्ध की बढ़ी हुई बातों ने इस सिद्धान्त को काट डाला था। आवागमन का सिद्धान्त तो अपने ही कर्मों से मुक्ति मानता है पर श्राद्ध का बिगड़ा हुआ सिद्धान्त बेटों पोतों के द्वारा मुक्ति मानता है। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि श्राद्ध और तर्पण के रूप को मूर्खों ने यवनों की संगत से बिगाड़ लिया था। यह सिद्धांत मुसलमानों के फातिहे से बहुत मिलता जुलता है। हमारे विचार में यदि यह श्राद्ध अपने आदिम स्वरूप में रहता तो स्वामीजी इस पर कभी लेखनी न उठाते।

इसी प्रकार धूर्तों ने मूर्ति पूजा के नाम से जो कुछ पाखंड फैला रक्खा था उसे पाठक पहिले भी देख चुके हैं और यदि थोड़ा सा कष्ट उठावें तो अब भी तीर्थों में कुछ पाप के दृश्य देख सकते हैं। स्वामीजी ने जब देखा कि उस समय तक लोग कभी अपने पापों को न छोड़ेंगे, जब तक इस मूर्ति पूजा को समूल नष्ट न कर दिया जावेगा।

स्वामीजी की कृपा से आज कितनी ही कुप्रथाओं का नाश होगया। कितना ही अज्ञान नष्ट हो गया है उसको सच्चे ब्राह्मण ही जानते हैं। उसको भारत माता के सपूत ही जानते हैं।

## पांचवां-सिद्धान्त

जब यह बात सब प्रकार सिद्ध होगई कि वैदिक धर्म सार्वभौम धर्म है तो यह बात स्पष्ट है कि उसके मानने वाले आर्य्य लोग यजुर्वेद की आज्ञानुसार चार वर्णों में से किसी एक वर्ण के अवश्य होंगे अर्थात् आज जो लोग विधर्मी बने हुये हैं यदि उनको अपने धर्म में मिलाना अभीष्ट है तो उनको उनकी योग्यता के अनुसार किसी वर्ण में अवश्य रखना पड़ेगा। जैसा कि शंकर स्वामी ने भी किया था। पर स्वामीजी ने जिस युक्ति से काम लिया था वह समय अब लद गया। अब तो सामने दो ही प्रश्न हैं एक तो यह कि द्विज लोग स्पष्ट कह दें कि हमको गो भक्षक बनाना स्वीकार है पर अपनी बिरादरी में किसी विधर्मी को मिलाना स्वीकार नहीं है। अथवा दूसरे रूप में यह कह दें कि चाहे हमारा सर्वस्व जाता रहे पर गौ और धर्म की रक्षा अवश्य होनी चाहिये।

इस बात को हम पौराणिक काल में भली प्रकार खोल चुके हैं कि वर्णों में गुण, कर्म, और स्वभाव ही प्रधान है। वैदिक काल में जो आये दिन वर्ण नहीं बदले जाते थे, वरन्

वर्ण कभी २ ही बदले जाते थे उसका कारण यह नहीं था कि वे लोग जन्म की प्रधानता मानते थे नहीं बल्कि वे गुण, कर्म को ही प्रधान मानते थे हां यह बात अवश्य है कि जन्म का गुण, कर्म, और स्वभाव से एक गहरा सम्बन्ध है।

## आर्य्य-समाज का प्रभाव

(१) भारतवर्ष की सम्पूर्ण संस्थायें आर्य्य-समाज के प्रभाव से खुलीं।

(२) देश की बड़ी २ भयंकर कुप्रथाओं को नष्ट करदिया और शेष नष्ट होती जाती हैं।

(३) आर्य्य-जाति में एक नवीन जीवन डाल दिया, वे हिन्दू जो कभी अपने धर्म को कच्चा मत कहा करते थे अब सिंह के समान शास्त्रार्थ में अन्य मत वालों को पछाड़ देते हैं।

(४) संसार के सम्पूर्ण मतों का दृष्टि कोण बदल दिया। इस लिये सम्पूर्ण मत वाले पुरानी बातों का और ही आशय लेने लगे हैं।

(५) अकर्मण्यता, पाखंड, असत्याभिमान की जड़ हिलादी।

(६) मत मतान्तरों का झगड़ा मिटा दिया इस समय जो लोग नाना प्रकार के मतों में बड़े कट्टर दिखाई देते हैं, वे लोग केवल अपने सामाजिक, आर्थिक और स्वाभाविक बन्धनों के कारण अथवा अज्ञान वश फँसे हुये हैं। वास्तव में उन मतों के मूल सिद्धान्तों से सात्विक श्रद्धा भक्ति का अब कुछ सम्बन्ध नहीं है।

## स्वामीजी की कृत्ति

(१) ऋग्वेदभाष्य (२) यजुर्वेदभाष्य।

(३) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका।

(४) सत्यार्थ प्रकाश (५) संस्कार विधि।

(६) आर्य्याभिविनय (७) गोकरुणानिधि।
(८) संस्कृत वाक्य प्रबोध (९) अन्यग्रन्थ

## थ्यासोफ़िकल सुसायटी

अमेरिका देश के न्यूयार्क नगर में १८७५ ई० में एक संस्था आत्मचिन्तन के लिये स्थापित हुई। पीछे उसी का नाम थ्यासोफ़ीकल सुसायटी हुआ। सन् १८७८ ई० तक पारस्परिक झगड़े के कारण इसकी कार्य्य वाही गुप्त रही। उस समय इसके कर्त्ता धर्त्ता कर्नल अल्काट और मेडम ब्लेवट स्की थे। भारतवर्ष से जाने वाले यात्रियों से इन दोनों को यह समाचार मिला कि भारतवर्ष का एक ब्राह्मण साधु (स्वामी दयानन्दजी) सारे मतों को झूठा सिद्ध करके प्राचीन आर्य्यों के मत को चला रहा है। यह दोनों यह सुनते ही भारतवर्ष में आये और स्वामीजी से मिले और उनके कार्य्य में सब प्रकार से सहायता देने का वचन दिया पर थोड़े ही दिनों पीछे न जाने क्यों यह लोग स्वामीजी के सिद्धान्तों के विरुद्ध प्रचार करने लगे, इस पर स्वामीजी ने इनको बुलाकर मत भेद दूर करना चाहा तो न आये। स्वामीजी ने इसकी सूचना सम्पूर्ण आर्य्य समाजियों को दे दी। अब यह लोग उन्हीं बातों का प्रचार करने लगे जिनका स्वामीजी खंडन किया करते थे यह लोग अपनी भ्रम मूलक बातों को इस प्रकार, लपेट सपेट से और साइन्स की छाप लगाकर लोगों के सामने रखते थे कि भोले भाले सच्चे हृदय के मनुष्य इनकी बातों में आ जाते थे इन लोगों का अभिप्राय केवल यह था कि किसी प्रकार आर्य्य समाज उभरने न पावे, नहीं तो वह संसार से ईसाई मत को समूल नष्ट कर देगा।

मि० एनी बीसेन्ट ईसाइयत के प्रचार के लिये चली थीं पर भारतवर्ष में आते ही थ्यासोफ़ीकल सुसायटी की कर्त्ता,

धर्त्ता बनीं। उन्होंने कंठी माला धारण की और गीता की पोथी का पाठ आरम्भ किया जिन लोगों ने कृष्ण के क्राइस्ट नामक ग्रंथ को पढ़ा है वे इस रहस्य को भली प्रकार समझते हैं। पर बड़े ही खेद की बात है कि दो बालकों को ईसाई बनाने भगवान तिलक और म० गांधी के विरोध के झूठे अपराधों ने श्रीमतीजी की मान मर्यादा को बड़ी ही चोट लगाई। जिस से इस सुसाइटी का सारा खेल बिगड़ गया।

## थ्यासोफिकल सुसायटी के रहस्य पूर्ण सिद्धान्त

(१) संसार के सब मत अच्छे हैं।

(२) सम्पूर्ण मनुष्य भाई २ हैं।

(३) सारे मतों की अच्छी २ बातें मानो।

(४) आत्मचिन्तन करना चाहिये।

(५) मनुष्यों में परस्पर प्रेम उत्पन्न करना चाहिये, सब की सेवा करनी चाहिये।

## इंडियन नैशनल कांग्रेस

### भारतीय-जातीय-महा-सभा

सन् १८८५ ई० में स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के शिष्य श्रीमान पं० महादेव गोविन्द रानाडे ने राजनैतिक विषयों पर विचार करने के लिये एक संस्था खोली जिसका नाम इंण्डियन नै० का० रक्खा गया, श्रीयुत रानाडे के पीछे श्रीमान पं० गोपाल कृष्ण गोखले ने इस की बड़ी उन्नति की उनके पीछे लो० तिलक ने इसको कहीं से कहीं पहुँचा दिया। जब भगवान तिलक का भी देवलोक वास हो गया श्रीमान् महात्मा मोहन दास कर्मचन्द गांधी ने इसको जो उन्नति की उसे तो सारा संसार ही जानता है। इसी संस्था के वार्षिक अधिवेशन के साथ २ सन् १८८७ ई० से देश की कुप्रथाओं को नष्ट करने के

लिये एक और भी महासभा हुआ करती है जिसको सोशल कानिफ्रंस कहते हैं।

## इस संस्था का उद्देश्य

भारतवर्ष सब बन्धनों से स्वतन्त्र होकर दूसरे मनुष्यों को भी स्वतन्त्र करने के योग्य हो जावे।

## सनातन धर्म महा मंडल और परमतत्त्ववेत्ता पूज्यपाद श्रीस्वामी दयानन्दजी बी० ए०

जिस समय भारतवर्ष में आर्य्य समाजियों ने सम्पूर्ण पुरानी बातों का खंडन करके उन को समूल नष्ट करना चाहा तो इन पुरानी बातों की रक्षा करने के लिये सनातन धर्म महा मंडल की स्थापना हुई। आर्य्य समाजियों के अपरमित खंडन ही खंडन ने, थ्यासोफ़ीकल सुसायटी की पुरानी सम्पूर्ण बातों के मंडन ने और बहुधा आर्य्य समाजियों के पश्चिमी लहर में बहजाने ने इस संस्था की जड़ में और भी जल दिया। कुछ दिनों के लिये आर्य्य समाज और सनातन धर्म सभा में कुछ ऐसे धूर्त्त आगये थे कि उन्होंने दोनों संस्थाओं को एक दूसरे का शत्रु बना दिया था। इस बात को सभी विद्वान् जानते हैं कि जब एक बार खटक जाती है तो फिर रुकनी बहुत ही कठिन होजाती है। जो शान्ति प्रिय लोग पारस्परिक अपशब्दों के प्रयोग को बुरा भी समझते थे, उनको भी उत्तर में अपशब्द कहने ही पड़े थे। होते २ बात यहाँ तक बढ़ी कि आर्य्य समाजी लोग अवैदिक काल के महापुरुषों को और सनातनी लोग वेदों को भी बुरे शब्दों में याद करने लगे। सन् १९२० ई० में जब म० गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन ने बल पकड़ा तो यह द्वेष बिलकुल जाता रहा। इसी

बीच जब मित्र बने हुये यवनों ने मालाबार और मुलतान में महमूद के अत्याचारों को भी लज्जित कर दिया तो उस समय आर्य्य समाज ने जो हिंदुओं की सेवा की उसकी प्रशंसा सभी सम्प्रदायों के सनातनी विद्वानों ने की दैव योग से सन् १९२३ ई० में राजपूत महा सभा ने आपतकाल में बिछुड़े हुये राजपूतों को अपनी २ बिरादरियों में मिलाने का प्रस्ताव पास कर दिया। इस प्रस्ताव से मुसलमानों में खल बली पड़ गई। जिस से उन्होंने अपने प्रचारक भेजकर उन राजपूतों को कट्टर मुसलमान बनाना चाहा। आर्य्य समाज भी उनके सामने आ डटा। इस समय सम्पूर्ण सनातनियों आर्य्य समाजियों, सिक्खों, जैनियों और बौद्धों ने एक स्वर होकर शुद्धि का प्रस्ताव पास करके बिछुड़े हुये लालों को हृदय से लगाना आरम्भ कर दिया। भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास में सन् १९२३ ई० ऐसा शुभ सम्वत है कि जिसको हमारी भावी सन्तानें सुवर्ण के पानी से लिखा करेंगी। और क्या आश्चर्य्य है कि इसी से प्रेम शताब्दी उत्सव मनाया जाने लगे।

सनातन धर्म के शरीर में यदि किसी को आत्मा कह सकते हैं तो वह पूज्य पाद श्री स्वामी दयानन्दजी बी॰ ए॰ हैं। आप के आने से पूर्व सनातन धर्म सभा का कोई सिद्धान्त न था। आर्य्य जाति में जो भी बुरी, भली प्रथा, कुप्रथा चली आती थी उन्हीं का नाम सनातन धर्म था। पर प्रशंसित स्वामीजी ने लोगों के दृष्टिकोण को बदलकर वर्त्तमान रूप दे दिया। अब दोनों संस्थाओं में कुछ थोड़ा सा ही मत भेद है। और वह कुछ नहीं है।

---

## सनातन धर्म के सिद्धान्त

आर्य्य समाज और सनातन धर्म का उद्देश्य एक ही है। दोनों का वेद ही सर्वस्व है। दोनों ही संसार में अधर्म का क्षय और धर्म का प्रचार करना चाहते हैं। किन्तु दोनों का कार्य्य क्रम और कर्म क्षेत्र भिन्न २ है। इसीलिये उद्देश्य के एक होते हुये भी मूल सिद्धान्तों में कुछ भेद है। हमारे राजनैतिक क्षेत्र में जो स्थिति कांग्रेस की है वही धर्म क्षेत्र आर्य समाज की है। और जो स्थिति माडरेटों की है। वही सनातन धर्म सभा की है। इन दोनों संस्थाओं का अन्तर बतलाने के लिये इस से अच्छा उदाहरण हमारे तुच्छ मस्तिष्क में और कोई नहीं है। इस विषय को अन्त में और भी स्पष्ट कर देंगे।

## मूल सिद्धान्त

( १ ) मूल चार संहिताओं के साथ उपनिषदादि भी वेद ही हैं।

( २ ) अवैदिक काल में जितने मत चले थे उन सब ने मनुष्य जाति का कल्याण किया है इसलिये उनका खंडन करना उचित नहीं है, निस्सन्देह मत भेद को दूर करने के लिये प्रेम से काम लो।

( ३ ) वेदादि शास्त्र पात्रों को ही पढ़ाने चाहिये।

( ४ ) श्राद्धादि सब धर्म की बातें हैं।

( ५ ) जो मनुष्य समाज से बहिष्कृत हो गया है वह प्रायश्चित के पश्चात् समाज में लिया जा सकता है। किन्तु विधर्मी का हिन्दू समाज में आना; अथवा वर्णों का परिवर्तन असाधारण कर्मों का फल है।

# सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर एक गहरी दृष्टि

## प्रथम सिद्धान्त

इस सिद्धान्त पर हम पौराणिक काल में भली प्रकार प्रकाश डाल चुके है, सनातनी लोग इस सिद्धान्त में पौराणिक काल से आगे नहीं बढ़े इसमें विद्वानों की यह नीति है कि जो लोग मूल चार संहिताओं के मन्त्रों को पढ़कर भ्रम में पड़ जाते हैं उनके लिये यह उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथ ही कुछ लाभ पहुँचा सकते हैं। क्योंकि इन में वेदों का ज्ञान खोलकर इस योग्य कर दिया है कि प्राकृत्ति वाद में फंसे हुये लोग भी कुछ लाभ उठा सकते हैं। यह बात कुछ समझ में भी आती है क्योंकि आज भी पश्चिमी विद्वान मूल संहिताओं के विषय में तो न जाने क्या २ नवीन कल्पना खड़ी कर रहे हैं पर उपनिषदों को वे भी अच्छा कहते हैं। एक दूसरा कारण यह भी बतलाया जाता है कि प्रकृत्ति वाद में फंसे हुये योरुपियन आत्म विषय से शून्य होने के कारण, उस विषय को अभी नहीं समझ सकते जिस प्रकार मूल संहिताओं का प्रादुर्भाव हुआ है। वे अभी तक मूल संहिताओं को भी उपनिषदादि की भाँति मनुष्य कृत ही समझते हैं।

तीसरा कारण यह भी है कि जिन करणों से अवैदिक काल में उपनिषदादि को वेद माना गया था, वही कारण आज भी उपस्थित हैं।

## दूसरा सिद्धान्त

इस सिद्धान्त में भी सनातनी लोग भी शंकर स्वामी और दूसरे पौराणिक महापुरुषों के आगे नहीं बढ़े। संसार के सभी

मनुष्यों में अपनी पुरानी बातों से प्रेम करना स्वभाविक है। ऐसी दशा में सनातनी लोग जो कुछ करते हैं वह कोई अनोखी बात नहीं है। अपनी बुरी बातों से प्रेम करना वैसा ही स्वभाविक है जैसा कि अपने बुरे पुत्र से प्रेम करना। पर बात को कभी न भूलना चाहिये कि यह प्रवृत्ति जन साधारण में पाई जाती है, इस लिये उनमें प्रचार करने वाले विद्वानों को भी ऐसा ही मानना पड़ता है। कोई मनुष्य किसी प्रवृत्ति के मनुष्यों को चिढ़ाकर उन में प्रचार नहीं कर सकता। पर इस बात को भी न भूलना चाहिये कि विद्वानों में यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती अर्थात् कोई विद्वान किसी भी बात को नवीन अथवा पुरानी की अपेक्षा से प्रेम नहीं करता वह केवल उसी बात को प्यार करता है जो कि उसकी समझ पर ठीक उतर जावे। योरुप में दर्शन शास्त्र और विज्ञान का प्रचार हुआ तो लोगों में पुरानी बातों को जीवित जलाये जाने पर भी स्वीकार न किया। इसके विरुद्ध मुसलमानों ने असंख्य हिन्दुओं को बड़े २ कष्ट दिये पर उन लोगों ने इस लाभ के एकेश्वर वाद की अपनी पुरानी मूर्त्ति पूजा के सामने कोई प्रतिष्ठा न की; बहुत सी जातियाँ जो बलात्कार भ्रष्ट कर दी गई थीं वे आज भी पुरानी बातों की लकीर को पीटती चली आती हैं।

सत्य की खोज करने वाले लोगों के लिये दार्शनिक उपदेशकों की आवश्यकता है और बाह्य बातों से प्रेम करने वाले और पुरानी बातों पर जान देने वाले लोगों में धर्म प्रचार करने के लिये सनातनी पंडितों की आवश्यकता है। किसी समाज के सारे मनुष्य न तो जिज्ञासु ही हो सकते हैं न वे साधारण मनुष्य ही हो सकते हैं। योरुप में शिक्षा ने इतनी उन्नति की पर सारे के सारे मनुष्य न तो प्राटस्टेन्ट ही हुये न सबके सब दार्शनिक विद्वान ही हुये। योरोप के विद्वानों ने जो सब को एक धा-

दार्शनिक लकड़ी से हाँका, उसका प्रभाव यह हुआ कि मूर्ख लोग जो बात की तह तक पहुँचाना नहीं जानते थे अश्रद्धालु और नास्तिक बन कर ईसाइयत के उल्टे सीधे ईश्वर वाद तथा धर्म प्रेम को नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं। योरोप के किसी भी विद्वान को आप इन विचार शून्य लोगों के समान नास्तिक नहीं देखेंगे यह दूसरी बात है कि वे ईसाइत के मनुष्याकार ईश्वर को नहीं मानते हों।

## तीसरा-सिद्धान्त

इस बात की ओर हम दूसरे सिद्धान्त में भी संकेत कर चुके हैं कि विद्या का दान पात्र का विचार करके देना ही ठीक है योरप वालों को तो इस बात का ज्ञान थोड़े ही दिनों से हुआ है पर सनातन वैदिक धर्म इस बात को सदा से मानता चला आया है।

छान्दोग्य उपनिषद् एक ऐसा प्रमाण ग्रंथ है जैसा कि आँखों के लिये सूर्य प्रमाण है। इस ग्रंथ ने इस झगड़े का फैसला पहिले ही कर दिया है। जाबाल जिस समय अपने गुरु के पास विद्याध्यन के लिये गया तो सब से पहिले उसका गोत्र और वंश पूछा गया उसने स्पष्ट कह दिया कि मेरी माता ने मुझे किसी व्यभचारी से गर्भाधान करके उत्पन्न किया है। ऋषि ने छूटते ही कहा तू ब्राह्मण का पुत्र है। अब विचारने की बात है कि यदि पात्र कुपात्र का सम्बन्ध जन्म से कुछ भी न होता तो ऋषि उस बालक से उसका गोत्र और वंश ही सब से प्रथम क्यों पूछते और यदि पात्र, कुपात्र का सम्बन्ध गुण, कर्म, स्वभाव से न होता तो उस वेश्या पुत्र को भी ब्राह्मण क्यों मानते। इसी से मिलती जुलती कथायें कवष के पुत्र एलूष और विश्वामित्र के नाम से भी आर्ष ग्रंथों में लिखी मिलती हैं। वाम काल में आकर पात्र, कुपात्र जन्म से ही क्यों

आने जाने लगे थे इस बात को हम स्पष्ट कर चुके हैं। और पाँचवें सिद्धान्त में भी इस पर प्रकाश डालेंगे। पर इतना कह देना आवश्यक है कि इतिहास से यह बात सिद्ध हो चुकी है। कि किसी जाति के जब गिरने के दिन आये थे तो उसमें जन्म का अभिमान अवश्य ही आ गया था।

## चौथा-सिद्धान्त

इस विषय पर भी हम पौराणिक काल में बहुत कुछ लिख आये हैं। निस्सन्देह यह बातें दार्शनिक दृष्टि से कुछ मान पूर्वक देखने योग्य नहीं हैं पर मनुष्यों में दार्शनिक दृष्टि से किसी बात को देखने वाले कितने होते हैं, इसका अनुमान विज्ञ लोग स्वयं लगा सकते हैं। हमारी बातें ऐसे सैकड़ों अविद्वानों से हुई हैं जो कहते थे कि हमको अमुक देवता की भेंट से अथवा गयाजी में पिंड दान करने से बड़ा लाभ हुआ है यहाँ तक कि वे प्रति वर्ष इसी की धुन में यात्रा करते हैं। इनके विरुद्ध ऐसे भी लोग हैं, जिनका न इन बातों में कुछ विश्वास है, न उनको इन से कुछ हानि लाभ सच है साधारण फूल रात्रि से ही खिलते हैं और कमल सूर्य से ही खिलते हैं। और वने दोनों उसी प्रकृतिसे हैं।

## पाँचवाँ-सिद्धान्त

सनातनी लोग इस सिद्धान्त में भी उसी प्रकार पुरानी बातों का मोह लिये हुये हैं जिस प्रकार अन्य बातों में। सनातनी लोग कहते हैं कि अधिकारी को कोई भी नहीं रोक सकता, जिस प्रकार कि विश्वामित्र आदि की गाथाओं से सिद्ध है। पर वर्तमान दशा में सारे बन्धनों के तोड़ने से अन्य विधर्मियों के गो भक्त बनने की तो केवल आशा ही आशा है। पर तुरन्त ही अनेक हानियों के होने का पूरा २ भय है। एक साथ सारे बन्धन तोड़ने से लोगों में असंतोष फैल जावेगा। इस समय

शूद्र तो कोई रहना ही नहीं चाहता। गुण, कर्म स्वभाव के अनुसार क्षत्रियत्व का द्वार विदेशीय और विधर्मियों के राज्य होने से बन्द है। इसलिये अब लोगों के लिये दो ही द्वार शेष रह गये, एक तो ब्राह्मणत्व दूसरे वैश्यत्व। आर्ष ग्रंथों में ब्राह्मण के जो लक्षण और कठिन कर्म बतलाये हैं, उनका पालन करनेवाला कोई भी दिखाई नहीं देता। केवल संस्कृत पढ़ने से ही कोई मनुष्य ब्राह्मण नहीं कहला सकता। अब रहा वैश्य वर्ण इसी वर्ण के लिये शास्त्र की आज्ञानुसार स्थान पर्याप्त है, सो इन में भी शास्त्रानुसार आय भाग देने के लिये कितने लोग तैयार हैं इसको विज्ञ लोग स्वयं ही विचार सकते हैं। इतनी बात तो स्वयं आर्य्यसमाजी विद्वान् भी मानते हैं कि जब तक अपना ही राज्य न हो वर्ण विभाग ठीक २ नहीं हो सकता। ऐसी दशा में बन्धन तोड़ने से यह हानि होगी कि यह उल्टे सीधे वर्ण भी मिट जावेंगे। लोगों में जो कुछ बुरे भले संस्कार वर्णों के हैं वे भी जाते रहेंगे। लोगों में जो थोड़ा बहुत जातीय गौरव है, उसके मिटने से जाति भी मिट जावेगी। इस बुरे समय में यदि शूद्र और वैश्य लोगों ने अपनी सन्तानों को उच्च वर्णों में भेजने की लालसा में अपना २ कर्त्तव्य छुड़ा दिया तो विधर्मी लोग, सारे पेशों को हड़प कर हमारी जाति को अनेक प्रकार से हानियाँ पहुँचावेंगे। सन् १९२३ ई० में जब हिन्दूमुसलिम ऐक्य की चरचा छिड़ी तो मुसलमानों ने हिन्दू लोगों पर एक यह भी दोष लगाया कि उन्होंने सारे पेशों पर अधिकार करके मुसलमानों को बड़ी आर्थिक हानि पहुँचाई है। साथ ही यह भी बात होगी कि नित्य नई अदल बदल से वर्णों का महत्व भी इस अज्ञान के समय में जाता रहेगा मलकाने राजपूतों ने सनातनी पंडितों के हाथ से जो शुद्धि कराने के लिये कहा था, उसमें यही भेद था।

## जन्म, कर्म, भोजन, धर्म

यद्यपि वर्ण और आश्रम का चोली दामन का साथ है। पर इस बात को भी सभी विद्वान जानते हैं कि वर्ण विभाग में लौकिक धर्म की प्रधानता है और आश्रम विभाग में पारलौकिक धर्म की प्रधानता है। लौकिक धर्म केवल भोजन-वस्त्र रक्षा आदि का नाम है जब तक मनुष्य के भोजनादि का प्रबन्ध ठीक नहीं, वह कुछ धर्म नहीं कर सकता। वरन् विचार पूर्वक देखा जावे तो यह सारा धर्माधर्म का प्रश्न ही भोजन के कारण संसार में उठा है। इस बात के मानने में कुछ भी झगड़ा नहीं है कि बहुधा प्राणी का भोजनादि और उसका गुण कर्म स्वभाव उसके जन्म से ही सम्बन्ध रखता है। जिन विद्वानों ने शिक्षा-विधि के ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है, वे जानते हैं कि बालक बहुधा वही बनता है जो कुछ उसको जन्म परिस्थिति बनाती है। यहां तक कि बच्चे खेल से ही माता पिता के गुण कर्म स्वभाव का अनुकरण करने लगते हैं ब्राह्मण का बालक पत्र पर कोयले से कुछ लिखकर ही अपना खेल खेलता है। वैश्य का बालक लकड़ी का हल अथवा मिट्टी की तुला बांट से ही खेलने लगता है। यदि मनुष्य के गुण कर्म और स्वभाव का अर्थात् वर्ण का जन्म से कुछ भी सम्बन्ध न होता तो ब्राह्मण अपने बालक का नाम शर्मा पर क्यों रखता। धर्म शास्त्र में दाय विभाग ही क्यों रक्खा जाता, ऋषि लोग गोत्र और वंश को गौरव मूल ही क्यों समझते।

यह सब बातें ठीक हैं पर फिर भी यह नियम कोई अटल नहीं है कि ब्राह्मण का बालक ब्राह्मण ही हो। हिरण्याक्ष के प्रह्लाद और उग्रसेन के घर में कंस हो जाते हैं। वास्तव में वे लोग अधिक प्रतिष्ठा के पात्र हैं जो नीच वर्ण में जन्म लेकर

भी उच्च वर्ण की पदवी प्राप्त करते हैं। और वे मनुष्य बहुत ही अप्रतिष्ठा के पात्र हैं जो उच्च वर्ण में जन्म लेकर भी नीच कर्म करते हैं। हमारी दोनों संस्थाओं के मनुष्य इस बात को ध्यान में रक्खें कि चढ़ना बड़ा कठिन है और उतरना बड़ा ही सुगम है। द्विज लोगों को हम यह शुभ समाचार और सुनाते हैं कि स्वराज्य प्राप्ति तक का अवसर उनको और मिलगया है। यदि उन में आर्यों के ही वंशज होने का अभिमान है तो संसार में कुछ करके दिखादें। नहीं तो झाड़ू पंजा तैयार है।

# सिद्धान्तों का सार

(१) आर्य्यसमाज एक ऐसी मिश्नरी है जो दार्शनिक विद्वानों और जिज्ञासुओं में प्रचार करके वैदिक धर्ममें लाना चाहती है। और सनातनधर्म सभा एक ऐसी मिश्नरी है जो मनुष्यों की श्रद्धा और उनकी प्राकृतिक भावनाओं का सदुपयोग करके उनको धर्मात्मा और सदाचारी बनाना चाहती है। उसका उद्देश्य पापों का समर्थन करना नहीं है।

(२) आर्य्य समाज एक डाक्टर है और सनातन धर्म सभा एक वैद्य है। जो धीरे २ औषधि देकर अच्छा करना चाहती है।

(३) आर्य्यसमाज में त्यागी अधिक हैं पर सनातनियों में इतने लोग त्यागी नहीं हैं। आर्य्यसमाजी निर्भय होते हैं पर सनातनी निर्भय नहीं होते।

(४) सारी पृथ्वी एक शरीर है। धर्म उसका आत्मा है। वेद मस्तिष्क है। कर्म और विचार स्वतंत्रता यह दो फेफड़े हैं। आर्य्यसमाज हृदय का दक्षिण भाग है और सनातन धर्म हृदय का वाम अंग है।

( ५ ) आर्य्यसमाज मुख है और सनातन धर्म उदर है ।

( ६ ) आर्य्यसमाज मस्तिष्क है और सनातन हृदय है ।

## सनातनधर्म का प्रभाव

( १ ) संस्कृत और भाषा के साहित्य की उन्नति हुई ।

( २ ) उर्दू को देश से निकालने में आर्य्यसमाज की सहायता की ।

( ३ ) आर्यसमाज को पश्चिमी लहर में बहने से बचाया ।

( ४ ) कार्य विभाग में गड़बड़ न होने दी जिससे जाति अधिक कष्ट से बची ।

( ५ ) मूर्खों को निरंकुश और अश्रद्धालु होने से बचाया ।

( ६ ) अच्छी २ प्रथाओं की रक्षा की ।

( ७ ) गौ माता और धर्म की कुछ हानि भी की ।
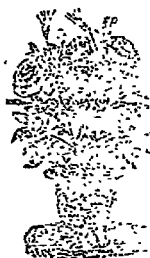
॥ ॐ ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## सातवां-अध्याय

## विदेशीय मत काल

२८०० वर्ष पू० ई० से ७०० ई० तक

### पारसी-मत

डाक्टर हाँग के निश्चयानुसार ई० से २८०० वर्ष पू० जब कि वैदिक धर्म का सूर्य्य बिल्कुल ही अस्त होनेवाला था, ठीक उसी समय बलख देश के रहने वाले जरतुस्थ नाम के एक महात्मा ने पंजाब और काश्मीर देश के ब्राह्मणों से वेद पढ़े और उनका अनुवाद अपने देश की भाषा में किया, वह भाषा वैदिक भाषा से ही मिलती जुलती है। इस ग्रन्थ का नाम महात्मा ने अपने देश की भाषा में ज़न्दओस्वा अर्थात् छन्द-अवस्था रक्खा।

छन्द नाम भी वेद का ही है।

इस ग्रंथ के छन्द, वाक्य, शब्द और सिद्धान्त बिल्कुल वेद से मिलते हैं। महात्माजी ने जिन लोगों से वेद पढ़े थे वे स्वयं बड़े तत्ववेत्ता न थे, इसलिये कहीं २ अर्थों में भी भेद हो गया है।

इस मत ने किसी समय बड़ी उन्नति की थी। भारतवर्ष को छोड़ सम्पूर्ण एशिया, पूर्वी-दक्षिणी योरुप और मिश्र में भी यह मत फैला हुआ था, आज इस मत के माननेवाले कुछ पारस देश में और कुछ बम्बई प्रान्त में पाये जाते हैं। इस मत के माननेवाले लोग अपने को आर्य्य कहते हैं पर दूसरे मतवाले इनको पारसी अथवा अग्निपूजक कहते हैं। यह लोग लगभग सारे व्यवहारों में हिन्दू ही होते हैं।

## पारसी-मत के सिद्धान्त

(१) ईश्वर की उपासना और हवन करना।

(२) शिखा सूत्र का धारन करना।

(३) गौ माता की रक्षा करना।

(४) यम नियम का पालन करना।

(५) इस मत में विवाह के विषय में कोई नियम नहीं है, किसी समय तो लोग अपनी पुत्रियों के साथ भी विवाह कर लेते थे।

## यहूदी-मत

ईसा से १५७१ वर्ष पूर्व वर्त्तमान एशियाई कोचक (अनाटूलियाशाम) देश में मूसा नाम के एक महात्मा हुये थे। उन्होंने बहुत सी बातें तो पारसी मत की लीं और उनमें कुछ अपने देश की बातें मिलाकर एक नवीन मत चलाया, जिसका नाम यहूदी मत है। किसी समय इस मत ने भी बड़ी उन्नति की थी पर इस समय इस मत के माननेवाले बहुत ही थोड़े मनुष्य जहाँ तहाँ रहते हैं। भारतवर्ष के वाइसराय व लार्डरीडिंग यहूदी ही थे। इसमत की धर्म पुस्तक तौरेत और ज़बूर हैं। इस मत के ग्रंथों में एक कहानी लिखी है कि ह० मूसा ने तूर पर्वत पर ज्योतिनिरंजन का दर्शन किया था, यह गाथा नारद

श्रुति की गाथा से बिल्कुल मिलती जुलती है। इसी प्रकार बाबा आदिम और होवा की कहानी याज्ञवल्क्य ऋषि के उन वचनों का रूपान्तर मात्र हैं जो उन्होंने अपनी स्त्री के प्रति सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में कहे थे। यहूदी मत के सिद्धान्त वाम मार्ग सरलमार्ग और पारसी मत के सिद्धान्तों को मिलाने से बने हैं। खतने की प्रथा बिल्कुल नवीन है।

## यहूदी-मत के सिद्धान्त

(१) ईश्वर की उपासना करते हैं।
(२) हवन में पशु वध करते हैं।
(३) मूर्त्ति पूजा भी करते हैं।
(४) सदाचार और परोपकार को मानते हैं।
(५) विवाह के नियम मुसलमानों के समान हैं।

## ईसाई मत

जब यहूदी मत में अनेक कुरीतियाँ समा गईं तो पारस देश के जोडिया नगर के निकट बेथलम ग्राम में अब से २००० वर्ष, पूर्व मरयम नाम की एक कुमारी कन्या के पेट से महात्मा ईसा ने जन्म लिया। इस कन्या की सगाई यूसुफ नाम के एक बढ़ई से हुई थी। अन्य महापुरुषों की भांति ईसा में भी बचपन से ही होनहारी के लक्षण थे। उस समय राजा ही धर्म ध्यक्ष हुआ करता था, इसलिये जोडिया के राजा ने ईसा को मारना चाहा। दुखिया माता अपने प्यारे बच्चे को हृदय से लगा कर मिश्र देश में चली गई। जब वह दुष्ट राजा मर गया तो फिर अपने देश में आगई। १२ वर्ष की आयु थी कि एक दिन ईसा अपनी माता को साथ लेकर यहूदियों की काशी—जरूसलम नगर का एक वार्षिक मेला देखने को गये। वहाँ पर विद्वानों का उपदेश सुनकर उनपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा

जारडन नदी के किनारे सेन्ट जोहन नाम के एक महात्मा रहा करते थे, वे लोगों को अच्छे उपदेश देकर पाप से बचाने का यत्न किया करते थे, जो कोई उनके सामने पाप न करने की प्रतिज्ञा कर लेता था, वे उसको जार्डन नदी में स्नान कराया करते थे, इस शुद्धि को वे विपतस्मा कहा करते थे। म० ईसा ने भी उनसे विपतस्मा लिया था. इसके पश्चात् उन्होंने तिब्बत और भारतादि देशों की यात्रा की. यात्रा के पश्चात् ईसा ने १२ मछेरों को अपना शिष्य बनाकर धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया। बहुत से मनुष्य उनके मत में आ गये। एक दिन ईसा गधे पर चढ़कर अपने चेलों को साथ ले, बड़े ठाट-बाट के साथ जरूसलम नगर में जा पहुँचे। नगर में जाकर इनके शिष्यों और साथियों ने बार २ यही जय ध्वनि की कि बोलो, यहूदियों के राजा ईसा की जय। राज्य कर्म चारियों ने ऐसा करने से रोका पर यह लोग न माने। ईसा की शक्ति उस समय पूरी थी इसलिये वे न पकड़ सके, पर वहाँ के बादशाह ने उनके एक हवारी ( चेले ) को ३०) देकर पकड़वा मंगाया और सूली पर चढ़ा दिया। ईसाई लोग सूली के चिन्ह का बड़ा आदर करते हैं। उनके गलों में जो कपड़ा बंधा रहता है उसमें जो गांठ दी जाती है, वह सूली का चिन्ह होती है। महात्माजी के मरने के पश्चात् उनके चेलों ने उनके उपदेशों को पुस्तक का रूप दिया जिनकी संख्या भी १२ ही है। इन पुस्तकों को अलग २ इंजील और सब के योग को बाईबिल कहते हैं। धीरे २ यह मत सारे पश्चिमी एशिया और सम्पूर्ण योरुप महाद्वीप में फैल गया।

जब ईसाई मत के प्रधानाचार्य्य ( पोप ) बहुत ही पापी बन गये, और भोले भाले लोगों से स्वर्ग दिलाने के मिस बड़ा ही धन बटोरने लगे तो जर्मनी देश में १५१७ ई० में लूथर नाम के सुधारक महात्मा हुये। जिन्होंने पोपों से बहुत से अधिकार

होकर बड़े २ सुधार किये। इनकी बातों को मानने वाले लोग प्रोटस्टेन्ट कहलाते हैं इन सुधारों का यह फल हुआ कि ईसाई लोगों ने पोपों के पाखंड और विचारों के दासत्व से छुटकारा पाकर बड़ी उन्नति की। यहाँ तक कि लोग संसार भर के स्वामी होगये। इस समय संसार में सब से अधिक संख्या ईसाई मत की है।

## सम्प्रदाय

जिस प्रकार शंकर स्वामी के पश्चात् उनके शिष्यों ने ३६० मतों के लोगों को अपना कर उनकी बातों को भी अपना लिया था। इसी प्रकार ईसा के पश्चात् उनके शिष्यों ने भी अपने से पहिले मतों को अपना लिया था। इसीलिये इंजीलों में भी वैसे ही परस्पर विरुद्ध बातें भरी पड़ी हैं जैसी कि हमारे पुराणों में भरी पड़ी हैं। इसी कारण ईसाई मत के भी बहुत से सम्प्रदाय बन गये हैं। एक सनातनी जो रोमन कैथालिक कहलाते हैं, दूसरे प्रोटस्टेन्ट कहलाते हैं।

## ईसाई मत के सिद्धान्त

ईसाई मत में कोई नवीन बात नहीं है इस मत के सम्पूर्ण सिद्धान्त कुछ शब्द और अर्थ के परिवर्तन से अपने से पहिले मतों से बने हैं। जिनमें बौद्धमत और यहूदी मत की बहुत सी बातें हैं। ईसाई मत की जो सब से उत्तम बातें हैं वे बौद्ध मत से ज्यों की त्यों मिलती हैं।

## मूल सिद्धान्त

( १ ) बाइबिल में ईश्वर का नाम है और म० ईसा ईश्वर भी हैं, उसके पुत्र भी हैं और उसके दूत भी हैं।

( २ ) बिना बिपतस्मा लिये ईसाई नहीं होसकता चाहे कितना ही धर्मात्मा हो।

( ३ ) यह मत पिता, पुत्र और पवित्रात्मा के त्रैत को मानता है।

( ४ ) पापों की गठरी म० ईसा सूली पर चढ़ते समय ले गये थे, इसलिये ईसाई होते ही सारे पाप नहीं रहते।

( ५ ) परोपकार करना इस मत में सब से अच्छा कर्म माना जाता है।

## ईसाई मत और हिन्दू मत की समता

( १ ) ईसा कुमारी से हुये थे, कबीर विधवा के पेट से हुये थे।

( २ ) रामानन्द और कबीर की भाँति ईसा के भी बारह शिष्य थे।

( ३ ) म० ईसा और शंकर स्वामी की बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं।

( ४ ) दोनों मतों में गढ़कथाओं में भरी पड़ी हैं।

( ५ ) लूथर की जीवनी स्वामी दयानन्दजी की जीवनी से बहुत मिलती है।

( ६ ) दोनों मतों में त्रैत वाद है।

( ७ ) हिन्दू जिसको सन्त कहते हैं उसे ईसाई सेन्ट कहते हैं। हिन्दू देवी के मन्दिर को गिरिजाघर और ईसाई अपने सब मन्दिरों को गिरजाघर कहते हैं।

( ८ ) हिन्दुओं का पवित्र चिह्न 卐 स्वस्ति है और ईसाइयों का पवित्र चिह्न + क्रास है।

# मुसलमानी मत

सन् ६०० ई० के निकट अर्थात् ५७० ई० में पवित्र स्थान मक्के के पुजारियों के घराने में मुसलमानी मत के चलाने वाले हज़रत मुहम्मद का जन्म हुआ।

जो दशा स्वामी दयानन्द से पूर्व इस पुण्य भूम की थी वह ह० मुहम्मद के समय में अरब देश की थी। ह० मुहम्मद एक फूटा अक्षर भी नहीं जानते थे पर देशाटन और सत्संग के कारण वे बड़े ही अनुभवी हो गये थे। दिन रात उनके हृदय जाति की दुर्दशा काँटे की भाँति खटकती रहती थी एक दिन हजरत ने अपने मन की बात अपनी स्त्री खदीजा, अपने साले विराका और एक साधु उदास से कहडाली इन तीनों ने ह० मुहम्मद को पैगम्बर अर्थात् ईश्वर दूत ( अवतार ) प्रसिद्ध कर दिया। सबसे पहिले इनकी स्त्री इनका भतीजा अली और दत्तक पुत्र ज़ैद उनके मत में आये। मक्के की बलवान मूर्त्ति-पूजक जाति क़रैश ने मुसलमानों को बड़े २ कष्ट दिये। अबूजहल नामक एक क़ुरैशी ने सोमया नाम की मुसलमानी लौंडी को मारडाला। उमर नाम के एक क़ुरैशी ने ह० मुहम्मद को काट डालने की प्रतिज्ञा की। इसी बीच उसको यह सूचना मिली कि तेरे बहिनोई और तेरी बहिन भी मुसलमान हो गये हैं। इस को सुनकर वह क्रोध में भरा हुआ दोनों के मारने को चला पर वहां जाकर उसपर बहिन के उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि स्वयं भी मुसलमान होगया और ह० मुहम्मद के चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा चाही जब क़ुरैशी लोग अत्याचार करनेलगे तो मुसलमान लोग हबश देश में चले गये। हबश के ईसाई राजा से क़ुरैशों ने मुसलमानों को मांगा पर इन लोगों ने क़ुरान में से ईसाई मत से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ

सुनाकर राजा को अपना लिया था। इसलिये राजा ने इनको न दिया। कुछ काल के पश्चात् मक्के और मदीने वालों में युद्ध छिड़ गया। इसलिए ह० मुहम्मद मुसलमानों को साथ लेकर मदीने चले गये। और उनको अपने मत में मिलाकर मक्के वालों से लड़े अन्त में कई बार परास्त होने पर भी मुसलमानों की विजय हुई और सारे अरब देश ने इनका मत स्वीकार किया।

ह० मुहम्मद ने भी १२ मनुष्यों की एक समिति प्रचार के लिये बनाई। जिनमें से प्रसिद्ध मनुष्य यह थे।

(१) अबूबक्र (२) उनका भतीजा उसमान (३) खदीजा का भतीजा जबीर (४) अब्दुलरहमान धनी (५) सअवग्घी-साद (६) ताले (७) खालिद (८) अली (९) उमर।

इन्हीं लोगों को असहाब अर्थात् संगत भी कहते हैं ह० अबूबक्र ने धन से बड़ी सहायता की जिसपर उनको सद्दीक की पदवी मिली। इन लोगों के परिश्रम, धैर्य्य और कष्ट सहन करने का यह फल हुआ कि यह मत अरब से बाहर रूम, मिश्र पारस, तुर्किस्थान, मंगोलिया और काबुल आदि देशों में फैल गया। पर खेद की बात है कि मुसलमानों ने इस मत के फैलाने में तलवार के भय से बहुत सहायता ली थी। पर इस के साथ ही आदि में इन लोगों में त्याग और प्रेम भी बहुत था। किन्तु जब इन लोगों ने केवल अत्याचारों पर ही कमर बांध ली तो इनकी अवनति होने लगी और ७२ सम्प्रदाय बन गये जिन में शीया और सुन्नी ही मुख्य हैं। इस समय इस मत के असंख्य सम्प्रदाय हैं।

---

## इसलाम की विशेषता

(१) दूसरे मतवालों के साथ बुरे से बुरा अत्याचार करना भी धर्म मानते हैं।

(२) स्त्रियों के सतीत्व और सदाचार का इनके विचार में कुछ मूल्य नहीं है।

## इसलाम के सिद्धान्त

सम्पूर्ण क़ुरान में ह० मुहम्मद की जीवनी को छोड़कर कोई नवीन बात नहीं है। सारे सिद्धान्त और कहानियाँ पारसी, यहूदी और ईसाई मत से लेकर इस ग्रंथ की रचना की गई है। इस मत में नमाज़ विधि पारसी मत से। खतना यहूदी मत से हज अरब के मूर्त्ति पूजकों से ली गई है। हवन के स्थान पर इस मत में केवल पशु वध ही रहने दिया है। मुसलमानों का ईश्वर ईसाई मत के ईश्वर से केवल इस बात में बढ़ गया है कि चौथे आकाश के स्थान पर सातवें पर आ बैठा है। मुसलमान लोग ह० मुहम्मद को ईश्वर ही मानते हैं। इस मत में सब से बड़ी बात एकेश्वरवाद है, जिससे अन्य मतों को कुछ शिक्षा लेनी चाहिये।

## मूल सिद्धान्त

(१) एक ईश्वर ही उपास्यदेव है क़ुरान उसका वाक्य है ह० मुहम्मद उसके मित्र और दूत हैं। वे जिसको स्वर्ग में भेजें जिसे चाहें नरक में भेज।

(२) नमाज़, रोज़ा, दान, पशुवध और हज करना पंचयज्ञ है।

(३) केवल मुसलमानों को और उनमें भी एक सम्प्रदाय को स्वर्ग मिलेगा।

(४) तलवार से अथवा किसी प्रलोभन से भी मत फैलाओ।

(५) मूर्त्ति का पूजना ही नहीं वरन् बनाना भी महा पाप है।

॥ ॐ ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## आठवां-अध्याय

### प्रक्षेप-काल

२००० वर्ष पू० ई० से वैदिक धर्म के प्रचार तक

### प्रस्तावना

संसार के सम्पूर्ण मतवाले अपने २ धार्मिक ग्रंथों को सब से अधिक सच्चा और प्रमाण ग्रंथ बतलाते हैं बहुत से मतों में तो यहाँ तक कह डाला कि केवल हमारा ही धर्म ग्रंथ ईश्वर का रचा हुआ है। एक समझदार मनुष्य इस चक्कर में पड़ जाता है। कि इन ग्रंथों में से कौन सा ठीक है। इसी कारण बहुत से विद्वान् जब तक इन ग्रंथों में से किसी की बात को नहीं मानते तो वे नास्तिक कहलाने लगते हैं। पश्चिम के दार्शनिक विद्वान् ईसाई मत और उसके मनुष्याकार चौथे आकाश वाले परमेश्वर को नहीं मानते, मुसलमानों का एक सम्प्रदाय और परम तत्त्वज्ञानी मौलाना रूम कुरान की वर्तमान शिक्षा को नहीं मानता। वास्तव में यह लोग नास्तिक नहीं हैं, ये तो मनुष्य जाति के मुकुटमणि हैं। आज जो मनुष्य जाति पाप और अत्याचार में फंसी हुई है, यह दोष इन

मतों के स्वार्थी आचार्यों का है, जो अपने अपने लाभ और मान के लिये मनुष्य जाति को नरक में लेजाने की कुचेष्टा में डूबे हुये हैं जिन महापुरुषों ने यह ग्रन्थ रचे और ये मत चलाये उनका लेशमात्र भी दोष नहीं है क्योंकि उन लोगों ने तो अनेक आपत्तियाँ सहन करके समयानुसार मनुष्य जाति को कल्याण के मार्ग पर डालने का यत्न किया था। यदि इन महापुरुषों के उपदेश में कुछ सार न होता तो कोई भी इनके मत को स्वीकार नहीं करता। संसार का प्रत्येक पदार्थ देश काल और पात्र करके बुरा वा भला बन जाता है। इस विषय में यह सन्देह भी हुआ करता है कि यों तो पिंडारियों और ठगों ने भी कभी अपना बड़ा भारी संघटन बना लिया था तो क्या उनके नेता भी धर्मात्मा ही थे। यदि हमारे मित्र बुद्धि से कुछ काम लें तो यह बात समझ में सहज ही में आजाती है यदि इन ठगों और पिंडारियों के नेता लोग परस्पर स्वार्थ-त्याग, सद्व्यवहार, विश्वास और प्रेम तथा सहानुभूति का परिचय न देते तो भला यह संगठन कब हो सकता था। यदि आपने इतिहास भी कुछ पढ़ा है तो आप को ज्ञात होगा कि इन पिंडारियों का नेता इतना स्वार्थ त्यागी था कि जिस समय वह अपने नगर सम्भल से सरकारी सेना में नौकरी करने चला तो उसके पास केवल एक रोटी थी. एक फकीर ने उससे कुछ माँगा तो इस नेता (अमीरखां) ने वह रोटी फ़क़ीर को दे डाली और आप सारे दिन भूखा रहा। अमीरख़ाँ का स्वार्थ त्याग और उसकी लोगों से सहानुभूति यहां तक बढ़ी हुई थी कि जब किसी कारण अप्रसन्न होकर अंग्रेज़ी नौकरी छोड़ी तो उसके साथ पलटन के बहुत से सैनिकों ने भी नौकरी छोड़ दी थी। अन्त में जब उसको जीविका का कुछ उपाय न सूझा तो लूट मार करने लगा था। डाकुओं में जब

परस्पर स्वार्थ त्याग विश्वास आदि अच्छी बातों का अभाव हो जाता है तभी वे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अथवा उनको जब किसी ऐसी शक्ति का सामना आ पड़ता है जो इन सद्गुणों में इन दस्युओं से बढ़ी-चढ़ी होती है तो उस समय यह लोग नष्ट हो जाते हैं।

हिन्दू मुसलमानों से क्यों पिटे-? उसका यही कारण था। मुसलमान मराठों और वीर सिक्खों से क्यों पिटे? उसका यही कारण था भारतवर्ष के अंग्रेज़ क्यों राजा बने उसका यही कारण था। जिन लोगों के मस्तिष्क में यह बात घुसी हुई है, कि यवनों ने अत्याचार से और अंग्रेजों ने केवल धोखे से राज्य लिया था यह उनकी भूल है। पापी के मुकाबले में धर्मात्मा का धोखा भी धर्म ही हो जाया करता है। यदि भारतवासी धर्म परायण होने से पूरे शक्तिशाली होते तो यवनों का साहस भी अत्याचार करने को न होता। यदि भारतवासी अधिक बुद्धिमान् होते तो उनके सामने अंग्रेज उसी प्रकार कूटता को भूल जाते जिस प्रकार चाणक्य के सामने राक्षस भूल गया था। और जिस प्रकार कृष्ण के सामने युद्धविद्या का महान् पंडित और नीतिकुशल द्रोणाचार्य्य भी खाया गया था। धर्मात्मा तो कभी पापियों के अत्याचर को आँखों से भी नहीं देख सकता निस्सन्देह आलस्य, प्रमाद, विषयभोग में फँसे हुये और केवल माला सटकाने, कथा कराने वाले और निमन्त्रण खिलाने को ही धर्म समझने वाले ढोंगी अवश्य ही अत्याचार सहा करते हैं।

इस बात को हृदय से निकाल दो कि धर्मात्मा लोग दुःख सहा करते हैं, उन्हीं पर अत्याचार हुआ करते हैं। भोले लोगो! धर्मात्मा के लिये तो दुःख और अत्याचार भी सुखदायी हो जाते हैं। दुःख और अत्याचार तो उनसे इतने डरते हैं कि

उनके पास भी नहीं फटकते हारकर वे धर्मात्मा ही उनके पास आकर और अपनी धर्माग्नि से उन्हें जलाकर सुख की योनि में परिवर्त्तित कर देते हैं। निश्चय रक्खो चाहे चन्द्रमा से अग्नि की वर्षा होने लगे, सूर्य्य से वर्फ के पर्वतों की वर्षा होने लगे पर शास्त्र का यह वचन कभी असत्य नहीं होसकता कि—

सत्यमेव जयते नानृतम ।

अर्थात् सत्य की ही विजय होती है असत्य की नहीं। भगवान् मनु का यह वचन कभी झूठा नहीं हो सकता कि—

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः ।

संसार में जो मत-मतांतरों के नाम से पापों की वृद्धि करके धर्म के नाम को कलङ्कित कर दिया है, उसका कारण यह है कि यह ग्रंथ प्रथम तो महापुरुषों ने रचे ही। एक विशेष काल तथा परिस्थिति के लिये थे, दूसरे इनका वह सच्चा स्वरूप भी कराल काल ने नहीं रहने दिया। जिस प्रकार एक सोते का आगे चलकर मैला होना अनिवार्य्य है, इसी प्रकार इन ग्रंथों का भ्रष्ट होना भी अनिवार्य्य है। जिस प्रकार भौतिक जल का सोता, अपने उपादान कारण, प्रकृत्ति के परिवर्तन शील गुण से विवश है। इसी प्रकार यह ग्रंथ भी प्राकृत्ति ज्ञान का एक अंग होने से भ्रष्ट होने से विवश है। केवल परमेश्वर का ज्ञान ही भ्रष्ट होने से बच सकता है। इस अध्याय में हम यही सिद्ध करेंगे कि संसार के किसी मत का ग्रंथ भी इस समय मानने के योग्य नहीं रहा क्योंकि उनमें से कोई भी ग्रंथ अपने आदिम स्वरूप में नहीं रहा। केवल वेद भगवान ही सब प्रकार से मानने के योग्य हैं।

---

# आर्ष-ग्रन्थ

आर्ष-ग्रंथ -बौद्ध, जैन तथा पौराणिक ग्रंथ किस लिये प्रमाण ग्रंथ नहीं रहे, इस विषय पर हम पिछले भागों में भली प्रकार प्रकाश डाल चुके हैं पर बड़े खेद की बात है कि भोले मनुष्य इस समय भी ग्रंथों को अपवित्र कर रहे हैं वे लोग इसी में धर्म रक्षा समझे बैठे हैं। पर यह उनका अज्ञान है।

सन् १९१४ ई० में जब योरुप का महायुद्ध छिड़ा तो उस समय से अन्त तक जर्मनों की निरन्तर विजय होती रही, यदि प्रेसीडेण्ट विलसन जर्मनों को धोखा न देते तो अवश्य ही जर्मनों की विजय होती। यह धोखा करके तो विलसन ने अमेरिका को अविश्वास पात्र ही बना दिया, वास्तव में बात यह थी कि जर्मनों की शक्ति ही निरन्तर सारे संसार से लड़ते २ क्षीण होगई थी, इसीलिये वे इस धोखे में आगये थे नहीं तो वे कभी न आते। जर्मनों की विजय के दिनों में कलकत्ते के प्रेस में भविष्य पुराण छापा गया तो उसमें यह लिख मारा कि वर्लन देश अर्थात् जर्मनी का राजा भारत वर्ष में आकर राज्य करेगा। प्रसिद्ध समाचार पत्र भारतमित्र ने इस पर एक बड़ा भारी लेख लिखकर उस प्रेस के स्वामी को लताड़ बतलाई।

# तौरेत प्रमाण नहीं है

( १ ) यह पुस्तक ह० मूसा से पीछे लिखी गई थी, फिर वख़्तेनुसर की मार काट के समय में बिल्कुल नष्ट होगई।

( २ ) फिर ईसा से ३०० वर्ष पूर्व अज़ीज़ नबी अथवा शमऊन सादिक़ ने सुनी सुनाई बातों के आधार पर लिखी थी।

( ३ ) फिर सेरिया इन्टोकस की मार काट में बिलकुल नष्ट हो गई।

( ४ ) फिर ईसा से ६५ वर्ष पूर्व यहूदीमका बीस ने सुनी सुनी सुनाई बातों के आधार पर लिखी।

( ५ ) इसी प्रकार सम्राट तीतस ने इसको जकसल के साथ नष्ट कर दिया।

( ६ ) इस से ६५ वर्ष पश्चात् यहूदी विद्वानों ने कुछ पत्रों और बातों के आधार पर लिखा।

( ७ ) इसके साथ ईसाई मत की चोटों से बचने के लिये भी प्रक्षेप किये।

आज कल यह तौरेत मिलती है जिस को यहूदी लोग मूसा के द्वारा ईश्वर की वाणी बतलाते हैं।

फल

किसी भी समझदार को इस पुस्तक पर विश्वास नहीं हो सकता। और भविष्य में यह मत कदापि उन्नति नहीं कर सकता।

## बाईविल प्रमाण नहीं है

( १ ) ९ इंजील तो ईसा के जीवन ही में इनके चेलों ने लिखी। उनकी परस्पर विरुद्ध बातें ही इस बात को सिद्ध करती हैं कि ईसा ने उनकी जांच भी न की थी. वरन् इन लोगों ने जो मन में आया वही लिख मारा है शेष तीन इंजीलों को लोक़ा, मरकस और युहन्ना ने ईसा को मृत्यु के पीछे लिखा था।

( २ ) सन् १८२७ ई० में नोरटिन महाशय लिखते हैं कि पहिले एक ही इंजील थी। शेष ११ पीछे लिखी गई हैं। वर्त्तमान इंजीलों की शैली ही इस बात को सिद्ध कर रही है कि इनके लेखक ईश्वरीय ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं। वरन् वे तो ऐतिहासिक विधि के अनुसार देखी और सुनी बातों को प्रकट कर रहे हैं।

(३) १२ इंजीलों से भिन्न १३० पुस्तक और हैं जिनके ईश्वर ज्ञान होने के विषय में स्वयं ईसाई लोगों में बड़ा मत भेद है।

(४) मत्ती की लिखी हुई इबरानी भाषा की इंजील आज नहीं मिलती। वर्त्तमान इंजील को डाक्टर विलियमस और प्रसिद्ध सम्प्रदाय यूनीटेरियन के ईसाई प्रक्षिप्त सिद्ध करते हैं।

(५) मरकस की इंजील भी इसी प्रकार नहीं मिलती, और वर्त्तमान प्रक्षिप्त है।

(६) लोका के देश और भाषा का भी अभी तक ठीक २ पता नहीं चला।

(७) युहन्ना के नाम से जो इंजील आज कल प्रचलित है वह १०० ई० में लिखी गई है उसका लेखक उसे स्वयं ईश्वर ज्ञान नहीं मानता।

मि० स्टाडलन लिखते हैं कि यह तो अलेकजेन्डरिया के एक विद्यार्थी के हाथ की लिखी हुई है।

(८) सन् ४०० ई० में जब महापुरुषों के नाम से इंजीलें एकत्र की गईं तो सौ से ऊपर इंजीलें आगईं थीं। और पत्र तो असंख्य ही आ गये थे।

(९) पादरी फिंडर साहब तौरेत और बाईबिल में एक लाख परस्पर विरुद्ध बातें सिद्ध कर चुके हैं। दूसरा विद्वान् डेढ़ लाख और तीसरा दस लाख तक इस संख्या को लेजाता है।

फल

इसीलिये पश्चिमी विद्वान् इसको नहीं मानते इसीलिये गिरजे खाली हो रहे हैं।

## कुरआन प्रमाण नहीं है

(१) जिन तौरेत और बाईबिलादि की बातों से यह ग्रन्थ बनाया गया वे आप ही प्रमणित न थे। आज भी कुरआन की बहुत सी बात बिल्कुल इन्हीं ग्रंथों से ली हुई सिद्ध हैं।

(२) ऐसी दशा में जब कि ह० मुहम्मद एक अक्षर भी नहीं जानते थे तो कुरआन के लेखकों अथवा उसको कंठ करके रक्षा करने वालों ने मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार क्या २ परिवर्तन नहीं किये होंगे। इसका अनुमान विद्वान् लोग स्वयं लगा सकते हैं।

(३) यह ग्रंथ ह० मुहम्मद के जीवन में नहीं लिखा गया। इस समय लोग कंठ कर लेते थे, अथवा पत्थरों और पत्तों पर लिख लिया करते थे।

(४) आम्मा के घोर युद्ध में जब बहुत से कारी अर्थात् कंठ करनेवाले मारे गये तो ह० अबूबक्र सद्दीक को बड़ी चिन्ता हुई। उनकी आज्ञा से लोग भिन्न २ स्थानों से आयतें (वाक्य) एकत्र करके लाये। सूरते तौबा की एक आयत अबी क़रीमा तुलारी के सिवा किसी के पास न मिली थी। इन आयतों के द्वारा कुरआन का सम्पादन कार्य्य भी ह० अबूबक्र ने अपने हाथ में रक्खा और किसी को पास भी न फटकने दिया। तैयार होने के पश्चात् भी यह पुस्तक उन्हीं के पास रही। इसकी केवल एक ही कापी कराई गई थी। यदि वे चाहते तो और भी कापी करा सकते थे। इसके कुछ काल पश्चात् वे मर गये तो यह कापी पुत्री अफ़ीक़ा के पास रही हम नहीं कह सकते कि कितनी आयतें रह गई अथवा बढ़ गई। शिआ सम्प्रदाय के लोग ह० अबूबक्रादि पर कई बड़े गहरे आक्षेप करते हैं।

(५) ह० उसमान के समय में क़ारियों में बड़ा मत भेद हुआ। सबके सब अपने ही पाठ और सिद्धान्त को शुद्ध और

दूसरों के पाठ को अशुद्ध कहते थे। ह० उसमान ने कुछ विद्वानों की सम्मति से उसी पहिली कापी को मंगाया। और शेष कापियों को जला दिया। इतिहास की यह घटना सिद्ध कर रही है कि उस कापी के रक्षित रखने में क्या रहस्य था। जो लोग पुराने पाठ को शुद्ध कहते थे वे नवीन पाठ को अवश्य ही अशुद्ध कहते। हम नहीं जानते कि पहिली कापी के तैयार होजाने के पश्चात् ही नेताओं ने सब कापियों का पाठ क्यों नहीं ठीक करा दिया। इसमें उनको क्या भय था। इसी लिये कुछ मुसलमान विद्वान वर्त्तमान कुरआन को बयाज़े उसमानी अर्थात् उसमान् की नोट बुक तक कहते हैं। मऊज़ बिल्लाह मिनहा।

(६) तफ़सीरे हुसेनी तथा बैज़ावी से यह बात सिद्ध होती है कि कुरआन में बहुत ही परिवर्तन, परिवर्द्धन और परिशोधन हुआ है।

(७) शाह अबदुल अजीज तोफ़ा लिखते हैं कि कुरान में शीआ लोगों ने बड़ी गड़बड़ की है। शीआ लोग कहते हैं कि यह सब करतूत सुन्नियों की है।

(८) मकीनी कहता है कि दो तिहाई कुरान नष्ट हो गया और एक तिहाई कुरान अब है। वह १७०० आयतों को मानता है।

(९) जलालुद्दीन स्यूती जनाबा आयशा से रवायत करता है कि ह० मुहम्मद के समय में सरतुल अख़रब दो सो आयतों से पढ़ी जाती थी। कुरआन की ६ सूरतों में नासिख़ आयतें हैं ४० सूरतों में मंसूख़ आयतें हैं और २५ सूरतों में दोनों प्रकार की हैं। इन बातों के अतिरिक्त विद्वान लोग सूरत, आयत, शब्द और अक्षर की संख्या में भी बहुत ही मत भेद रखते हैं।

(१०) कुरआन में एक बात भी ऐसी नवीन और ज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली नहीं है जिस को ईश्वर-ज्ञान तो दूर किसी विद्वान् का भी ज्ञान कह सकें। सारे कुरआन को पढ़डालो उस में दूसरे मतवालों को हानि ही पहुंचाने के लिये प्रलोभन दिये गये हैं। अथवा ह० मुहम्मद की जीवनी का कुछ फोटो खींचा गया है।

फल

कोई समझदार वर्त्तमान कुरआन की शिक्षा को नहीं मानता। यही कारण है कि अरबादि देशों में इस मत की महिमा घटती जाती है भारत के मुसलमान हिन्दुओं की हठ पर कट्टर बने हुये हैं। जिस दिन हिन्दुओं का अज्ञान दूर हो जायगा उसी दिन यह लोग भी गो भक्त होकर उनके भाई हो जावेंगे।

# वेद भगवान ही स्वतः प्रमाण है

(१) सम्पूर्ण सम्प्रदाय के ब्राह्मण चाहें परस्पर बहुत मत रखते हैं, पर वेदों को तो वे यहां तक स्वतः प्रमाण मानते हैं कि उनमें से पुराने विचारों के मनुष्य तो हमारे इन वेद विषयक बाहरी प्रमाणों को भी वेदों का अपमान ही समझते हैं। जिस कपिल को विचार शून्य लोग वेद और ईश्वर का विरोधी बतलाते हैं वह बात २ में वेद का प्रमाण दे रहा है। सम्भव है विद्वान् लोग इस विषय में उत्तर पक्ष और पूर्व पक्ष की शंका करें तो उनकी सेवा में सविनय निवेदन है कि सारे सांख्य दर्शन में दोनों पक्षों में वेद के प्रमाण का खंडन कहीं नहीं किया।

(२) मैक्स मूलर-चार सहस्र वर्षों से अर्थात् आदि से अब तक वेदों में एक स्वर की भी अशुद्धि नहीं हुई।

( ३ ) आयर-जिस आश्चर्य्य जनक उपाय से ब्राह्मणों ने वेदों की रक्षा की है उसकी संसार में उपमा भी नहीं है।

( ४ ) मि० केगी-कम से कम चार सहस्र वर्ष से वास्तव में वेदों में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ।

( ५ ) अलबेरूनी-ब्राह्मणों ने वेदों की रक्षा बड़े २ अच्छे उपायों से की है।

## अन्तिम निश्चय

वेद ही स्वतः प्रमाण हैं। और योरुप के लोग तो उपनिषदों पर ही मोहित हो रहे हैं।

॥ ॐ ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## नवां-अध्याय

## भविष्य-काल

सन् १९२४ ई० से ⸻ अज्ञात समय तक

### प्रस्तावना

वर्त्तमान युग शिक्षा का युग है। इसलिये विद्वान् लोग भविष्य में उसी मत को मानेंगे जो सब प्रकार से संतोषप्रद हो अब वह समय नहीं रहा जब कि भोले भाले मनुष्य दो चार औषधियों के जानने वाले मनुष्य को ही ईश्वर मान लेते थे अब यह समय दूर छद् गये जब कि सीधे मनुष्य मदारियों को भी छोटा, मोटा खुदा कहकर उलटे उस्तरे से ही मुंड आते थे।

### मनुष्य क्या चाहता है

संसार के सम्पूर्ण मनुष्यों के सामने एक यही प्रश्न है कि सुख किस प्रकार मिल सकता है ?

वैदिक काल में हम सिद्ध कर चुके हैं कि उस समय यह प्रश्न अवश्य था पर इस के साथ ही इसका उत्तर भी था

आगे चलकर आपने यह भी देखा होगा कि वह प्रश्न तो वैसा ही बना रहा पर इस का हल उत्तरोत्तर कठिन होता गया। धर्मात्मा लोगों ने अपनी योग निद्रा को भंग करके शान्ति के समुद्र तक जाने के जो २ मार्ग बताये, उन्हों ने कुछ दूर तक तो अशान्ति के गढ़ों में गिर कर मरने से अवश्य बचाया, पर उस से आगे चलकर मनुष्य समाज अज्ञानान्धकार के कारण यह निश्चय नहीं करसके कि अब कौन से मार्ग पर चलें, जिसका फल यह हुआ कि वे अशान्ति के गढ़ों में पड़े हुये भी अज्ञानान्धाकार में शान्ति समुद्र समझ कर दूसरे मनुष्यों को भी उन्हीं में डालने के लिये चिल्लाने लगे। ठीक इसी समय पश्चिम दिशा में सवेरे के समय एक बड़ा ही प्रकाशवान तारा दिखाई दिया। उसके थोड़े से प्रकाश में कुछ सूझते हुये मनुष्यों ने इतना जान लिया कि यह तो गढ़े हैं, शान्ति का समुद्र और ही है। अभी यह बात निश्चय भी नहीं हुई थी कि उस समुद्र तक जाने का कौन सा मार्ग है, ठीक इसी समय सूर्य्य की किरनें भी कुछ २ प्रकट होने लगी थीं, उनके प्रकाश में एक ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने लोगों को शान्ति समुद्र का मार्ग बता दिया पर लोगों को उस समय तक विश्वास नहीं होगा जब तक कि सूर्य्य का प्रकाश भली प्रकार न फैलने लगेगा।

आज कल पश्चिमी शिक्षा ने सारे मतों से अश्रद्धा उत्पन्न करदी है। संसार के सम्पूर्ण विद्वानों के सामने इस समय यह प्रश्न है कि अब तक यह जितने मत फैले वे ठीक नहीं हैं, इस लिये अब किसी ऐसे मत को स्वीकार करना चाहिये जो जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सारे प्रश्नों को सहज ही में हल करदे। जिस परमेश्वर ने अपनीकृपा से संसार के एक से अच्छे एक पदार्थ बनाये हैं। जिसने इस अशक्त जीव के अनेक प्रश्न हल किये हैं, वही इस प्रश्न को हल कर सकता है। इसीलिये

लोगों ने अपने २ मतों के ग्रंथों को ईश्वर कृत कहकर फाँसना चाहा है पर विद्वान् लोग उनको ईश्वर का ज्ञान इसलिये नहीं मानते कि उन में वे विशेषण नहीं हैं जो पूर्ण ज्ञान में होने चाहियें। वे यह भी जानते हैं कि इन मत वालों ने उसी एक वारुणी को नई २ रंगीन बोतलों में भर रक्खा है।

## ईश्वरीय ज्ञान के लक्षण

( १ ) जिस प्रकार संसार के अन्य आवश्यक पदार्थ सृष्टि के आदि में दिये गये हैं इसी प्रकार वह ज्ञान भी आदि में देना चाहिये, जिस से किसी के साथ अन्याय न हो।

( २ ) वह ज्ञान पूर्ण हो, उसकी भाषा भी सर्वाङ्ग पूर्ण हो।

( ३ ) उसमें देश विशेष, काल विशेष अथवा व्यक्ति विशेष से सम्बध रखने वाली घटना न हो।

( ४ ) वह संसार में शांति फैलाने और जीवन समस्या की पूर्ति करने में सब प्रकार समर्थ हो।

( ५ ) वह सब प्रकार प्रमाणित हो।

( ६ ) उसके नियम सृष्टि पर पूरे २ घटते हों।

( ७ ) उस में परस्पर विरुद्ध बातें न भरी हों।

( ८ ) उस में अनावश्यक बातें न हों।

( ९ ) उस में जो बातें हों वे अटल हों।

( १० ) उस में कुछ विलक्षणता अवश्य हो उसके जानने और उपयोग से संतोष भी मिलता हो।

## निश्चय

इस बात का निश्चय विद्वान् स्वयं करलें कि यह बातें वेदों के सिवा किसी अन्य धर्म पुस्तक पर भी घट सकती हैं अथवा नहीं घट सकती।

## सम्पूर्ण धर्म-ग्रंथ भी मानते हैं

( १ ) इस बात को हम भली प्रकार सिद्ध कर चुके हैं कि भारतवर्ष से जितने मत निकले वे तो सबके सब वैदिक धर्म की शिक्षा देते हैं।

( २ ) पारसी लोग भी यही मानते हैं कि ईश्वरीय ज्ञान चार ग्रंथों में पहिले ही प्रकट हो चुका है।

( ३ ) यहूदी लोग भी चार ही पुस्तकों में ईश्वर का ज्ञान बतलाते हैं।

( ४ ) ईसाई लोग भी यही कहते हैं।

( ५ ) मुसलमान भी यही मानते हैं।

## समाधान

अन्य मतों को तो विवश होकर यह बात माननी पड़ेगी कि ये चार पुस्तक वेद ही हैं। पर मुसलमान यह भी कह सकते हैं कि वह चार ग्रंथ, तौरेत, ज़बर, बाईबिल और कुरआन हैं। सो वे इस पेच से बाहर नहीं निकल सकते; क्योंकि जो तौरेत आदि ग्रंथ उनके लिये प्रमाण हैं उनकी यह बात भी उनके लिए प्रमाण होगई कि चारों वेद ही ईश्वर का ज्ञान हैं। यदि वे यह कहें कि प्रक्षिप्त होने से यह प्रमाण नहीं रहे तो इस दशा में भी चारों वेदों वाली बात तो एक होने से प्रमाण हो ही सकती है। यदि इस पर भी वे न मानें तो प्रक्षिप्त होने और ईश्वरीय ज्ञान के लक्षणों के विरुद्ध होने से उनको कुरआन की आज्ञाओं से भी अवश्य हाथ धोना पड़ेगा। इस पर भी वे इस शिक्षा को त्याग कर गौ माता के भक्त न बनें तो यह उनका हठ-धर्म और अधर्म है।

---

## सच्चे विद्वान् भी यही कहते हैं

(१) अलबेरूनी कहता है कि हिन्दुओं का ज्ञान रत्न, कुप्रथा, मूर्त्ति पूजा और बहुदेव वाद के गोबर की माँद में दब गया है।

(२) फैज़ी, अबुलफ़ज़ल, अकबर, रहीम और दारा-शिकोह वैदिक धर्म को ही ठीक मानते थे।

(३) जो मुसलमान सूफी होते हैं वे जब पूर्ण तत्व ज्ञानी होकर फनाफिल्लाह की पदवी प्राप्त कर लेते हैं तो वे कुरआन की शिक्षा को नहीं मानते वरन् उपनिषद् और वेदान्त को मानते हैं।

(४) बौद्ध भिक्षु धर्मपाल भी बौद्ध धर्म को वैदिक धर्म के अन्तर ही मानते हैं।

(५) मैक्समूलर तो ईश्वर से प्रार्थना ही अगले जन्म में वेद पढ़ने की करते थे।

## संसार की परिस्थिति भी यही कहती है

(१) योरुप के विद्वान् ईसाई मत को त्यागते जाते हैं। उनकी देखा-देखी जनता भी त्यागती जाती है। जिन गिरजाघरों में किसी समय बैठने को स्थान भी नहीं मिलता था, आज वे शून्य पड़े हैं। योरुप के विद्वान् उपनिषदों को सब से अच्छा बतलाते हैं। सन् १६२२ ई० में एक ईसाई विद्वान् ने अपने मत वालों को यह सम्मति दी थी कि वे उपनिषदों को अपनालें तो बड़ा अच्छा हो।

(२) तुर्क और ईसाई मुसलमान जो कुछ शिक्षित हो गये हैं, वे इसलाम की मुख्य बातों के भी विरोधी होते जाते हैं। जैसे खिलाफ़त, परदा, बहु विवाह।

( ३ ) संसार के प्रतिष्ठित मुसलमान तलाक़, मिहर, परस्पर विवाह और इसलामी शरह के दायभाग आदि से बहुत दुखी हैं।

( ४ ) मूल इसलाम से लोगों का अब कुछ सम्बन्ध नहीं जो कुछ उत्साह दिखाई देता है, वह सब आर्थिक और राजनैतिक भावों का आवेश मात्र है।

( ५ ) जापान में निशिदा नाम के महात्मा लोगों को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर चलाने का उपदेश दे रहे हैं। उनके विचारों का प्रचार बहुत ही बढ़ रहा है।

( ६ ) संसार में इस समय १००० मत हैं अर्थात् तीन बड़े २ मतों के स्थान पर तो शून्य रह गये हैं केवल एक मत का ही जातीय मान रह गया और उसका स्थानीय मान सहस्र गुणा होगया।

# महापुरुषों की भविष्य वाणी भी यही कहती है

## प्रथम भविष्य वाणी

महात्मा टालस्टाई कहते हैं कि सन् १९२५ ई० में एशिया से एक नवीन सभ्यता को लिये हुये मत फैलेगा, उस मत का यह भी सिद्धान्त होगा कि ईश्वर और प्रकृति नित्य पदार्थ है। उसका प्रचारक मंगोल वंश से होगा।

## दूसरी भविष्य वाणी

महात्मा एण्ड्रोजैक्सन डेवीस कहते हैं कि सम्पूर्ण मत आर्य्यसमाज की भट्टी में एक दिन झुक जावेंगे।

## तीसरी भविष्य वाणी

मि० एंडरूज़ कहते हैं कि संसार की भावी सभ्यता में भारतवर्ष ही पूरा २ साथ होगा।

### चौथी भविष्य वाणी

पुराणों में लिखा है कि कल्किजी अवतार लेकर अधर्म का नाश और धर्म का उद्धार करेंगे। पुराणों में जो सम्भल नगर बतलाया है, कदाचित् यह श्लेष है। अर्थात् वे महापुरुष उस नगर में होंगे जो सब प्रकार से भला होगा, अर्थात् जहाँ की परिस्थिति उनके योग्य होगी।

### पाँचवीं भविष्य वाणी

बाईबिल में लिखा है अथवा ईसाई कहते है कि ह० ईसा पृथ्वी पर आकर फिर धर्म का प्रचार करेंगे।

### छटी भविष्य वाणी

मुसलमान कहते हैं कि १४वीं शताब्दी में अर्थात् इसी शताब्दी में इसलाम मिट जावेगा। इसी शताब्दी में हज़रत मेंहदी आकर लोगों को उपदेश करेंगे उनके पश्चात् कोई नबी (प्रचारक) न होगा और फिर इसी शताब्दी में प्रलय हो जावेगी।

## भविष्य वाणी और समाधान

इन भविष्य वाणियों में केवल मुसलमानों की भविष्य वाणी ही लोगों को सीमा बद्ध होने के कारण कुछ भ्रम में डाल रही है। इसलिये इस पर भी प्रकाश डाले देते हैं।

(१) यह बात तो हम अभी सिद्ध कर चुके हैं कि इसलाम का तेल तो समाप्त होगया केवल अन्तिम लपटें ही अपना प्रकाश सारी बत्ती के जल उठने से दिखला रही हैं। इसलिये इसलाम अवश्य ही १४ वीं शताब्दी में मिट जावेगा, इसको झूटा सिद्ध करना इसलाम की अप्रतिष्ठा है।

(२) १४ वीं शताब्दी यह शब्द लिखा है अर्थात् इसके दो अर्थ हैं एक तो प्रचलित शताब्दी दूसरे शताब्दी का परिमाण...

अर्थ समय की बड़ी संख्या अर्थात् मन्वन्तर भी हो सकता है। अपढ़ लोगों में १०० की संख्या ही बड़ी से बड़ी संख्य होती है हजरत के समय में अरब देश के लोग बिलकुल ही असभ्य थे, उनकी भाषा का शब्द सद् -फ़ारसी भाषा के सद् ( صد ) से मुअर्रब (अरबी) होकर सद् ( صد ) हो गया था। यह बात तो पश्चिमी विद्वानों ने सिद्ध करदी है कि सम्पूर्ण भाषाओं में सौ से अधिक संख्या की परिभाषायें संस्कृत से ही ली गई हैं। किसी ने तो सम्पूर्ण ही संस्कृत से ली हैं। आज भी हमारे देश के लोग बहुत बड़ी राशि को अपनी परिभाषा में सैकड़ों के शब्द से प्रकट करते हैं। इसलिये यह बात सिद्ध हो गई कि सदी शब्द का अर्थ केवल परिभाषा में काल की बड़ी राशि अर्थात् मन्वन्तर है। यह बात सभी विद्वान् जानते हैं १४ वेंमन्वन्तर में ही प्रलय होनी आरम्भ हो जाती है। इस लिये इस बात को भी झूठा सिद्ध करना इसलाम का अपमान है।

(३) मेंहदी शब्द का अर्थ केवल विशेष सुधारक (हिदायत करने वाला) है। यह किसी का जातीय नाम नहीं। इस लिये इसको भी ठीक ही समझो।

(४) जीवन मुक्त लोगों में द्वैत नहीं रहता। इसलिये ईसा, कृष्ण और कल्किजी को एक ही जानो।

(५) यह बात भी ठीक है कि ह० मुहम्मद के पीछे कोई नबी अर्थात् नवीन मत को चलाने वाला, इस शिक्षा युग में न हो सकेगा।

॥ ॐ ॥

# धर्म-इतिहास-रहस्य

## दसवां-अध्याय

## प्रचार-काल

सन् १९५५ ई० से अज्ञात समय तक

### प्रस्तावना

संसार में सनातन वैदिक धर्म अथवा अहिंसा का प्रचार करने के लिये सब से पहिली बात यह है कि हम अपने विचारों के दासत्व से स्वतन्त्रता प्राप्त करें। जो मनुष्य स्वयं अपनी कुटेवों के बन्धन में पड़ा हुआ है, वह दूसरों को क्या मुक्त कर सकता है। हम लोगों में सब से बड़ी बुराई यह समा गई है कि जिस बात की हमको टेव पड़ी हुई है हम लोग उसी को धर्म माने बैठे हैं।। श्रीमद्भागवत्गीता में भगवान अर्जुन के लिये बार २ यही उपदेश दे रहे हैं कि हे अर्जुन संसार में पाप और कुछ नहीं है, पाप तो केवल लिप्त होने अथवा किसी बात की टेव के बन्धन में पड़ जाने का ही नाम है।

बहुत से विद्वान् जो कर्म को साधारणतः बन्धन मानते हैं, वह बात ठीक है, क्योंकि कर्म से वासना बनती है। और यह

वासना ही देव—लिप्त होने का मूल स्वरूप है। उन लोगों का यह आशय न था कि लोग कर्म ही न करें, भला यह कैसे हो सकता है। कर्म तो जीवन का ही नाम है। यदि यह बात होती, स्वयं शंकर स्वामी ही धर्म प्रचार के झगड़ों में क्यों पड़ते। वैदिक-धर्म के सार गीता में तो बार २ कर्म का ही उपदेश दिया गया है। शंकर स्वामी का आशय यह था कि तुम निष्काम कर्म करो, नहीं तो फल इच्छा के दास होने से स्वतन्त्रता की चरम सीमा मुक्ति को कभी नहीं पा सकते। बुरे कर्मों में लिप्त होना तो महा अनर्थ का मूल होता ही है पर शुभ कर्मों में लिप्त होना भी मुक्ति में बाधक है। हां यह ठीक है कि वह स्वर्ग का कारण अवश्य होता है किन्तु निष्काम कर्म करने की दशा में यही शुभ कर्म स्वर्ग प्राप्ति में और भी अधिक सहायक होते हैं, और साथ ही परमपद मुक्ति की ओर भी ले जाते हैं। इसलिये यही बात सम्पूर्ण शास्त्रों का सार है कि:—

(१) कर्म ही मनुष्य का जीवन है, पर

(२) किसी कर्म में लिप्त होजाना ही पाप है।

कर्म का यह सिद्धान्त केवल पारलौकिक विषय के लिये ही नहीं हैं वरन् लौकिक कर्मों के विषय में भी वैसा ही अटल है। बहुत से विद्वान् जो इस भ्रम में पड़े रहते हैं कि लोक और परलोक दो भिन्न २ मार्ग हैं वे बड़ी भूल करते हैं मनुष्य के लिये धर्म एक बड़ी ही अच्छी सड़क है। यह सड़क पर-लोक अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष दो स्थानों को जाती है स्वर्ग एक ऐसा नगर है जो मार्ग में पड़ता है और मोक्ष एक ऐसा बड़ा नगर है जो इस मार्ग के अन्त पर है। साथ ही स्वर्ग में रहने से जीव थोड़े ही दिनों में ऊब जाता है और मोक्ष नगरी में रहने से उसका चाव और आनंद बढ़ता ही जाता है। ज्ञान और कर्म

ही प्राणी के ऐसे घोड़े हैं। जो जीवन के साथ रहते हैं। शरीर रथ है। आत्मा स्वामी है बुद्धि सारथी है। मन ही डोरी है।

संसार का कोई अच्छे से अच्छा कर्म ले लो उस में यही पाओगे कि जब मनुष्य उसका दास हो जाता है तो वही नाश का मूल बन जाता है सर्व-प्रियता कैसी अच्छी बात है, पर जिस समय मनुष्य उसका दास बनजाता है तो बड़े २ अनर्थ कर डालता है। दान कैसी अच्छी बात है। पर जिस समय मनुष्य इसका दास हो जाता है तो उस समय वह हरिश्चन्द्र से राजा के लिये चांडाल के हाथ बिकने का कारण हो जाता है। यही राजाबलि के लिये स्वर्ग से पाताल में उठाकर फेंक देता है। यही नहीं, शास्त्र ने सत्य जैसे अटल धर्म के दास होने को भी बुरा कहा है और इसीलिये धर्म शास्त्र में आज्ञा दे दी है कि सत्य के दास न बनो बरन्, सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात, अर्थात् सत्य तो बोलो पर प्यारा बोलो।

## स्वर्ग के ठेकेदारो आंखें खोलो

परताल करो कि तुम किन २ बातों के दास बने हुये हो। याद रक्खो बुरी बातें तो दूर यदि तुम अच्छी बातों के भी दास बने हुये, तो तुम को ब्रह्मा भी सुख नहीं दे सकता। पर खेद तो इस बात का है कि तुमको सत्यासत्य का ज्ञान ही नहीं रहा। शास्त्र कहता है कि जिसको धर्मा धर्म का ज्ञान नहीं वही पापी होता है, और तुम यह भी याद रक्खो कि पापी को जितने कष्ट दिये जाते हैं उनकी भगवान के यहाँ कोई सुनवाई नहीं है।

हमारी जाति में जहाँ अनेक कुटेवें समा गई हैं उनमें हमारी अनियमित छूत छात और हमारा निरंकुश जाति भेद ही हमको आज मिटाने के लिये पकड़े ले जा रहा है।

# छूत छात का अनर्थकारी दृश्य

## आलङ्कारिक-घटना

सन् १९११ ई० में जब दिल्ली में सम्राट जार्ज पंचम का राज्याभिषेक महोत्सव हुआ तो उसमें संसार के सभी देशों से मनुष्य आये थे। मध्याह्न के समय सब लोग अपने २ भोजन की चिन्ता करने लगे। मेले से कुछ दूर जाकर नम्बुद्रि ब्राह्मण भूमि को दो २ अंगुल खोद कर, चौका बना, पीताम्बर पहिन भोजन बनाने लगे। इतने में महाराष्ट्री भी पीताम्बर पहिन कर आ पहुँचे और भूमि शुद्ध करके भोजन बनाने लगे। नम्बुद्रिजी बोले अरे भ्रष्ट तू कैसा ब्राह्मण है जो बिना भूमि को खोदे भोजन बनाने लगा। महाराष्ट्री ने कहा अरे पाखंडी भूमि खोदकर जीवों की हिंसा करने में क्या ब्राह्मणत्व घुसा बैठा है। इसी बीच कान्यकुब्जजी शुद्ध धोती पहिने हुये आये और भोजन बनाने लगे। महाराष्ट्री ने कहा अरे भ्रष्ट तू कैसा ब्राह्मण है जो धोती से ही भोजन बना लेता है कान्यकुब्ज ने कहा अरे पाखंडी इस कीड़ों के मल पीताम्बर में क्या शुद्धता रक्खी है। ठीक इसी समय एक गौड़ ब्राह्मण आकर वस्त्र पहिने हुये कचौड़ी खाने लगे। कान्यकुब्जजी बोले अरे भ्रष्ट कपड़े पहिने हुये ही भोजन खाता है। गौड़ ने कहा अरे पाखंडी तू क्यों इस मल मूत्र के छींटे पड़ी धोती को नहीं पहन रहा है। तुरन्त ही पंजाबी महाशय जूते डाटे हुये भोजन का आहार आकर करने लगे। गौड़ महोदय ने कहा कि अरे भ्रष्ट जूते पहिने हुये भोजन बनाता है। पंजाबी ने कहा अरे पाखंडी चमड़ा तो तेरे सारे शरीर पर मढ़ा हुआ है। इसी बीच पंजाबी क्या देखता है कि एक काश्मीरी ब्राह्मण तिलक छापे लगाये हुये मुसलमान के हाथ से भोजन बनवा रहा है।

पंजाबी ने कहा अरे भ्रष्ट तू मुसलमान के हाथ का भोजन खाता है। काश्मीरी ने कहा कि जब तू यवन के घट का पानी मिला दूध और मांस भी ग्रहण कर लेता है तो फिर भोजन में क्या दोष रह गया। यह बातें हो रही थीं कि मुसलमान बैल का एक अंग लिये आ पहुँचा काश्मीरी ने उसे दूर हटने को कहा तो यवन ने कहा कि गो मांस के पास रक्खे हुये बकरे के मांस को तो पेट में रख लेता है और हम से दूर हटने के लिये कहता है। इसी बीच यवन क्या देखता है कि एक ईसाई सूकर का एक अंग लिये खड़ा है। मुसलमान ने उसे दूर हटने को कहा तो ईसाई ने कहा जब तू विष्ठा खाजाने वाली गौ और मुर्गी को खा लेता है तो फिर सूकर में क्या दोष हो गया। इसी समय क्या देखते हैं कि चीनी एक कुत्ते को लिये आ डटा है। ईसाई ने उस पर आक्षेप किया तो चीनी ने कहा सूकर से तो कुत्ता अपवित्र नहीं है। झट एक तिब्बती मनुष्य आकर डिबिया में से अपने लामा गुरू के मल मूत्र की गोलियाँ निकालकर खाने लगा तो चीनी ने इस पर आक्षेप किया, इस पर तिब्बती ने कहा कि जब तू कुत्ते को खा लेता है तो क्या उसके मल को न खाता होगा। अन्त में एक सरभंगी खोपरी में मल मूत्र भरे हुये बम २ करता हुआ आ धमका इसको देखते ही सब के सब भोजन छोड़कर भाग निकले। इससे ज्ञात हुआ कि संसार में पाखंड और भ्रष्टता की कुछ सीमा नहीं है

## अनियमित छूत की हानियां

( १ ) काश्मीर देश का वीर सेनापति जब युद्ध में घिरकर यवन हो गया तो उसने ब्राह्मणों से हिन्दू बनाने को कहा। उन्होंने कहा कि अच्छे कर्म करोगे तो अगले जन्म में हिन्दू

बन सकोगे। इसने जलकर सबको मुसलमान बना डाला और कहा कि हमको तुमसे प्रेम है इसलिये साथ २ ही हिन्दू बनेंगे।

(२) यवन काल में कई करोड़ गो भक्त कूपादि में थूक कर गो भक्षक बन गये।

(३) जो लोग यवनों के बन्दी हो जाते थे वे जल के पीने से ही यवन बन गये।

(४) एक दुष्ट यवन फ़कीर ने तानसेन के मुख में थूक कर ही यवन बनाया।

(५) अकबर, फैजी, अबुल फ़ज़ल, रहीम और दारा से रत्नों को हाथ से खो दिया।

(६) काश्मीर नरेश ने नाम मात्र के यवन हिन्दुओं को शुद्ध करना चाहा पर ब्राह्मणों ने न माना। आज काश्मीर में सारी प्रजा यवन ही यवन है।

(७) सन् १८२२ ई० में एक दक्षिणी ने केवल इस बात पर अपनी स्त्री को त्याग दिया कि उसने नीच शूद्र को बोझा क्यों उठाया। अन्त में वह मुसलमानी बन गई।

(८) जब युवा हिन्दू किसी मुसलमानी को अपनी स्त्री बना लेते हैं तो वे विवश होकर मुसलमान ही बन जाते हैं।

(९) लाखों मनुष्य इस के कारण भूल से जल आदि का सेवन करने से ही गौ माता के शत्रु बन गये।

## वर्त्तमान-हानियां

(१) इसी से मत भेद, जाति भेद और फूट बढ़ रही है फूट ही नाश का मूल है।

(२) इसी से हिन्दू पिटते रहते हैं, देवताओं को भ्रष्ट किया जाता है। स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया जाता है।

(३) परदेश में महाकष्ट होता है। कष्ट से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से धर्म और ज्ञान का नाश होता है।

(४) जहाँ एक हिन्दू के घर दूसरी जाति का हिन्दू पाहुना आया और उसके प्राण निकले।

(५) मनुष्यों को दुराचारी बनाती है।

(६) गो भक्षकों को गो भक्त नहीं बना सकते हैं।

(७) जाति दिन पर दिन घटती जाती है।

(८) यह हमको अन्यायी बनाती है क्योंकि हम गो भक्षकों से अपने शुद्ध गो भक्तों को नीच समझते हैं।

(९) संसार में किसी को नीच समझना और नीच कहना ही शत्रुता का मूल है। यह छूत बचपन ही से बच्चों के हृदय में नीच ऊंच के झूट भाव भर देती है जिससे जाति के पक्के शत्रु बन जाते हैं।

## सारांश

अनियमित छूत को माननेवाला ही गो वध आदि पापों का भागी है। चाहे वह कितनी ही माला फेरा करता हो वे सब पानी की रेखा के समान व्यर्थ हैं।

# छूत का जाति भेद पर प्रभाव

जाति भेद वास्तव में कोई इतनी बुरी बात नहीं है जितनी कि वह आज दिखाई देती है। यदि कार्य्य विभाग ठीक २ न हों तो बड़ी गड़बड़ पड़ जावे, पर इस भोंडी छूत छात ने जाति भेद को भी नाश का मूल बनादिया है। एक जाति अपने को उच्च और दूसरों को नीच सिद्ध करने के लिये अनुचित उपायों से भी काम ले रही है। कितनी ही जातियाँ जो कल तक अपने कर्त्तव्यों को बड़ी श्रद्धा और युक्ति से करती थीं पर आज वे पश्चिमी वायु के लगने से अपने २

पेशों को केवल इसलिये त्याग रही हैं कि अन्य जातियाँ इन को नीच समझती हैं। यहीं तक संतुष्ट नहीं हुई, उनमें से बहुत सी तो अपने को ब्राह्मण और क्षत्री तक सिद्ध करने का यत्न कर रही हैं। हमने अपनी आखों से देखा है कि शूद्र जातियाँ अपनी जाति में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की प्रथाओं को प्रचलित कर रही हैं। एक जाति में तो इस बात पर घोर झगड़ा मच गया था। इसका परिणाम यह होगा जो म्लेक्ष इन पेशों पर अधिकार करके हम को अपने जूते के तले रक्खेंगे जाति भी एक महा आर्थिक कष्टमें पड़ जावेगी। इसमें उन दीन जातियों का कुछ दोष नहीं है, क्योंकि मनुष्य तो दूर कुत्ता भी अपमान नहीं सह सकता जब एक शराबी, कबाबी, सुलफेबाज और व्यभिचारी मनुष्य भी ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण ही उच्च बना बैठा है तो फिर वे बिचारे दीन अपनी जाति के स्वयं सेवक होते हुए भी क्यों नीच बनें। यदि न्याय पूर्वक देखा जावे तो इस समय भंगी ही सर्वोत्तम जाति के हैं और द्विज ही कर्तव्य हीन होने के कारण सब से नीच हैं।

## छूत को कौन लोग मानते हैं

(१) बहुत ही सीधे, भोले और पुराने विचारों के मनुष्य जो अभक्ष पदार्थ का सेवन करना और भ्रष्ट मनुष्य के हाथ का भोजन करना महा पाप समझते हैं। यह लोग सब प्रकार से पूज्य हैं और वे धन्य हैं।

(२) वे मनुष्य जो अभक्ष्य पदार्थों के सेवन को छिपाने के लिये छूत छात करते हैं। यह लोग महा पाखंडी हैं।

(३) जो बिरादरी से डरते हैं।

(४) जो अपनी टेव से विवश हैं।

(५) जिनको धर्मा धर्म का कुछ ज्ञान नहीं है।

( ६ ) जो नीच होकर उच्च बनते हैं।
( ७ ) पकवान खाने के इच्छुक।
( ८ ) दूसरों की हट से छूत छात करने वाले।
( ९ ) जिनको जीव का जाने का भय है।

## वर्तमान छूत के न मानने वाले

( १ ) बहुत ही छोटे व्यवसाय करने वाले।
( २ ) प्राच्य वायु के मारे हुये।
( ३ ) सरभंगी लोग जो टके कमाते हैं।
( ४ ) वे महापुरुष जो भक्ष्य पदार्थ को किसी भी मनुष्य के हाथ से खा लेते हैं।
( ५ ) काश्मीरी जो हिन्दुओं के हाथ का तो नहीं खाते पर यवनों के हाथ का खाते हैं।
( ६ ) पंजाबी जो केवल अन्त्यजों को छोड़ सब हिन्दुओं के हाथ का खा लेते हैं।
( ७ ) जो भक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाली जातियों के हाथ का खा लेते हैं। इनमें प्रायः आर्य्य समाजी होते हैं।
( ८ ) वे मनुष्य जो जैसा अवसर देखते हैं वैसा ही अवतार धारण कर लेते हैं।

## छूत छात के कट्टर शत्रु

छूत छात की अनर्थकारी हानियों को देखकर बहुत से मनुष्य तो छूत को केवल ब्राह्मणों का बड़ा बनने का पाखंड और पकवान उड़ाने की कूटना तक कहते हैं वे यह भी कहते हैं कि इन ब्राह्मणों की आज्ञा मानकर हमने अपना सत्यानाश कर लिया है, इसलिये भविष्य में इनकी एक बात मत सुनो, यह लोग तो स्वार्थी हैं। वे यह भी कहते हैं कि सब मनुष्य मात्र के साथ भोजन करना चाहिये यही प्रेम का मूल है यह

उन्नति और धर्म का त्रिशूल है। जिसने इसको हाथ में लिया उसी की विजय हुई।

## प्रेम का मूल जूठा भोजन नहीं

बहुत से विचार शून्य जूठा भोजन खाने में ही प्रेम समझे बैठे हैं। शीआ-सुन्नी, पारसी-यवन, यहूदी-ईसाई, प्रोस्टन्ट-कैथलिक सब एक दूसरे का जूठा खा लेते हैं पर उनमें प्रेम कदापि नहीं होता। यही नहीं, इस में बड़ा द्वेष भी बढ़ता है।

प्रेम के लिये जूठा भोजन का बन्धन वैसा ही व्यर्थ, हानिकर और असभ्यता पूर्ण है जैसा कि जंगली जातियों में नव बधु के साथ प्रेम प्रकट करने के लिये उसके मल मूत्र का शनैः २ चाटना अथवा मित्रता प्रकट करने के लिये कुछ जातियों में अपनी स्त्री अथवा पुत्री को मित्र को भेंट करना इन व्यर्थ के बन्धनों का प्रेम से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है यह तो लोक दिखावे की बात है।

## प्रेम का स्रोत्र क्या है

प्रेम का स्रोत्र तो मनुष्य का हृदय है। जहाँ मनुष्यों के हृदयों में स्वार्थ त्याग होना है अर्थात् जहाँ पर आपस में मान, अपमान हानि, लाभ, अपने पराये का कुछ भी ध्यान नहीं होता वहीं पर प्रेम हुआ करता है। स्वार्थ त्याग धर्म और ज्ञान पर्यायवाची शब्द है। इनका मूल कारण शिक्षा है। जितनी अशिक्षित जातियाँ होंगी उन्हीं में परस्पर झगड़े हुआ करते हैं। मुसलमानों में हिन्दुओं से सच्ची शिक्षा अधिक है इसलिये उनमें कुछ तो इस धार्मिक शिक्षा के प्रभाव से और कुछ हिन्दुओं को हानि पहुँचाने और लूटने खसोटने के एकोद्देश्य से हिन्दुओं से अधिक प्रेम है अन्यथा देशों में यह परस्पर ही कटते रहते हैं।

## हमारी फूट के कारण

(१) हमारे आर्य्य लोग बहुत ही अज्ञानी हैं यहाँ तक कि जो धुरन्धर विद्वान् कहे जाते हैं वे गणित, भूगोल और इतिहास आदि नितान्त आवश्यक विषयों में बिलकुल कोरे होते हैं। वर्त्तमान दशा का उनको लेश मात्र भी ज्ञान नहीं होता। तो फिर ऐसी दशा में जाति अशिक्षित होने से आप ही नष्ट होजावेगी।

(२) अशिक्षित होने के कारण ही मनुष्यों में सहानुभूति, धर्म, ज्ञान, स्वार्थ त्याग का भाव ही नहीं है। यहाँ तक देखा गया है कि एक मनुष्य के घर में खाने को भोजन तक नहीं पर निर्दयी बिरादरी उससे बलात्कार भोज लेती है जिसका फल यह होता है कि ऋण से दबकर उसका जीवन नष्ट हो जाता है बच्चों को शिक्षा नहीं दिला सकता। जब उसको अवसर मिलता है तो वह भी कांटे भली प्रकार निकाल लेता है। एक पश्चिमी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि हिन्दू संसार में केवल बच्चों के विवाह करने के लिये भेजा गया है।

(३) सब से अधिक नाश करने वाली यह अनियमित छूत है जो बात २ में लोगों के हृदय में ऊंच नीच और मान-अपमान के कांटे खड़े करके एक दूसरे के हृदय से रक्त बहा रही है। अब विचारने की बात है कि फिर प्रेम क्यों हो दुष्ट लोगों को हम से पापियों पर अत्याचार करने का अवसर क्यों न मिले?

## छूत छात का स्वरूप क्या हो

हमारे वैदिक धर्म का मूल मन्त्र केवल न्याय है, पर न्याय का रूप भी लोगों ने बिगाड़ रक्खा है वे एक ही डंडे से सब

को हांकने का नाम न्याय समझे बैठे हैं। हमारे छोटे से मस्तिष्क में इसका स्वरूप निम्न भाँति रखने में ही कल्याण होगा।

(१) चारों वर्णों का वर्त्ताव वैदिक काल की भाँति रहना चाहिए।

(२) जो हिंदू मांस का सेवन करते हों उनके हाथ का पकवान ही खाया जावे।

(३) अन्त्यजों के साथ हमारा वर्त्ताव विधर्मियों से कहीं अच्छा होना चाहिए। उनको धर्म के पूरे २ अधिकार हों।

(४) गो मांस न खाने वाले विधर्मियों के साथ गो मांस खाने वाले विधर्मियों से अधिक अच्छा वर्त्ताव रहना चाहिए।

(५) महापुरुषों, सन्यासियों, युद्ध तथा आपत्काल में फँसे हुए लोगों के लिये कोई बन्धन नहीं होना चाहिए।

(६) बहुत से हिन्दू विधर्मियों को इसलिए अपने यहाँ नौकर रखते हैं कि वे मान अपमान का विचार न करके अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार पूरा करते हैं। पर हिंदुओं में यह गुण नहीं है। इसलिये यह नियम बनजाना चाहिए कि प्रत्येक हिंदू अपने कर्त्तव्य का पालन उसी प्रकार करे जिस प्रकार कि राजा हरिश्चन्द्र ने किया था। जो मनुष्य नौकर होकर अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं करता वह पापी है वह हराम की खाता है।

## जाति भेद का स्वरूप क्या हो

(१) वर्त्तमान जातियाँ तो अपने २ पेशों के नाम से तो आप ही पुकारी जावेंगी, पर इन सम्पूर्ण उपजातियों को चार ही वर्णों में विभाजित कर दिया जावे। जिन जातियों के गुण, कर्म, स्वभाव मिलते जुलते हैं उनमें परस्पर सम्बन्ध भी होने चाहिए।

(२) बिरादरी से निकालने का दंड जहाँ तक हो सके न दिया जावे। यदि देना ही पड़े तो प्रायश्चित्त के पश्चात् उसको लिया भी जावे। पर उसकी सन्तान को जाति में आने के लिये पूर्ण स्वतंत्रता हो।

(३) शुद्ध हुये मनुष्य जिस जाति अथवा वर्ण के योग्य हों उसी में मिला लिये जावें पर शुद्ध करने का भी अन्धाधुन्ध नियम न होना चाहिये शुद्ध होने वाले को पूर्ण उत्कंठा होना चाहिये।

(४) पेशे बदलने के लिये अखिल भारतीय महासभा की स्वीकृति का नियम होना चाहिये।

(५) क्योंकि स्वराज्य प्राप्ति से पूर्व वर्णों का ठीक २ विभाग नहीं हो सकता इसलिये सम्पूर्ण विद्वानों और नेताओं की ओर से यह घोषणा होजानी चाहिये कि जो मनुष्य पूरे तत्त्वज्ञानी, धर्म प्रचारक और त्यागी तथा तपस्वी होंगे वे ब्राह्मण करके पूजे जावेंगे। जो मनुष्य पूर्ण बलवान और वीर होंगे वे क्षत्री करके पूजे जावेंगे। इसी प्रकार वैश्य भी माने जावेंगे। जो लोग निष्काम भाव से राष्ट्र की सेवा करेंगे वे, स्वयं सेवक सेवक सहायक अथवा भाई करके माने जावेंगे और जो इन से भिन्न होंगे वे चांडाल कहे जावेंगे।

## भेद-भाव कैसे दूर हो

(१) जाति भेद के स्वरूप की घोषणा कर दी जावे, जिस से असंतोष दूर हो।

(२) जो मनुष्य छूत छात को मानते हों उनको चिढ़ाने की आवश्यकता नहीं।

(३) जो छूत आदि का क्रियात्मक सुधार करें उनका साहस बढ़ाया जावे।

( ४ ) अपवित्र जातियों में शुद्धि पर बल दिया जावे।

( ५ ) सर्वाङ्ग पूर्ण शिक्षा का प्रबन्ध किया जावे। पर बोझ अधिक न पड़े।

( ६ ) ब्राह्मण उपदेशक इस के लिये विशेष रूप से नियत किये जावें।

( ७ ) पुरोहितों और उपदेशकों के लिये विद्यालय खोले जावें।

## मत भेद मूल में अच्छा है

मत भेद अपने मूल में बहुत ही अच्छा है पर जिस समय इसको अज्ञान, स्वार्थ, हठ को संगति मिल जाती है तो यही नाश का मूल बन जाता है। उस समय यह मनुष्य से बड़े २ अनर्थ करा डालता है।

मत भेद स्वभाविक है, यदि संसार से मत भेद जाता रहे तो उन्नति का खोज भी न मिले, जिन जातियों में बाबा वाक्य प्रमाण की उक्ति पर चलने वाले मनुष्य हो जाते हैं वहीं अवनत होती जाती है। चीन और भारत के गिरने का यही कारण है। योरुप और जापान के विद्वानों ने अपने पुरोहितों से मत भेद करके कितनी उन्नति की है। जिसका फल यह हुआ है। कि आज वही पुरोहित उन विरोधियों की प्रशंसा कर रहे हैं।

## मत भेद और इतिहास

भारतवर्ष में मतभेद का सदैव आदर हुआ है। शंकर स्वामी तो इसका आदर धर्म समझकर करते थे। प्राचीन वैदिक धर्म, जैन, और बौद्ध आदि मत भारत से मिट गये पर उन्होंने धर्म के नाम पर समीष्टी रूप से कभी अत्याचार नहीं किया। राजा हर्ष जब पौराणिक मत में था तब बौद्धों की

और जब यौद्ध हो गया तो ब्राह्मणों की बड़ी प्रतिष्ठा करता रहा। गुप्त वंशीय राजा चन्द्रगुप्त मौर्य्य और उसका गुरु चाणक्य कट्टर होते हुये भी बौद्धों और जैनियों की जैसी सहायता करते थे, उसे सभी विद्वान् जानते हैं।

अलबेरूनी लिखता है कि यद्यपि ब्राह्मणों और बौद्धों (जैनियों) में बड़ा ही मत भेद है पर तो भी उनका व्यवहार सराहनीय है। जब अरबों ने धावा किया तो बौद्धों ने ही अपने विरोधी ब्राह्मणों के मन्दिरों की रक्षा की थी।

मत भेद को विदेशियों ने ही कलंकित किया है। प्राच्य-वायु के मारे हुये लोग भारतवर्ष की आर्य्य जातियों के मत भेद को भी वैसा ही समझे बैठे हैं। पर यहाँ यह बात कभी नहीं हो सकती, क्योंकि आर्य्य जाति का दृष्टि कोण ही और है। मुसलमानों ने बौद्धों का, चंगेजखाँ बौद्ध ने यवनों का जिस प्रकार रक्त बहाया, यवनों ने ईसाइयों के रक्त से जिस प्रकार मसजिदें बनाईं। और रोमन चर्च के लोगों ने प्रोटस्टेन्टों को जिस प्रकार जीवित जलाया था, वे अत्याचार आर्यों में होने असम्भव हैं। उसका कारण यह है कि अनार्य्य लोग अपने २ मत की दीक्षा मात्र से मुक्ति मानते हैं और आर्य्य लोग शुभ कर्मों के द्वारा मुक्ति मानते हैं। आर्य्य जातियों का मत भेद तो इस अज्ञान की दशा में भी वैसा मत भेद है जैसा मत भेद उन अन्धों में था, जिन्होंने कि हाथी के एक २ अंग को स्पर्श करके उसी २ अंग को हाथी समझ रक्खा था। जिस प्रकार नेत्र न होने के कारण अंधे इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि वास्तव में इन सब अंगो के योग का नाम ही हाथी है, इसी प्रकार ज्ञान नेत्र न होने के कारण इस समय तक बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि भी इसकी कल्पना न कर सके कि वास्तव में सारे भिन्न २ यह सिद्धान्त उसी एक धर्म के अंग हैं।

जो लोग यह समझे बैठे हैं कि भारत वर्ष की उन्नति एक ही मत होने पर होगी वे सर्वांश में ठीक नहीं कहते। कौरवों पाँडवों के साथ, गौरियों ने ग़ज़नी वालों के साथ, मुग़लों ने तुर्कों के साथ, यजीद ने हसन हुसेन के साथ और जर्मनों ने फ्रेंचों के साथ एक ही मत होने की दशा में जो २ अत्याचार किये हैं उन्हें कौन नहीं जानता।

## उन्नति का मूल मंत्र क्या है

आज जापान, इंगलैंड, अमेरिका आदि देश पूर्ण उन्नत हैं। यदि आप वहाँ जाकर देखें तो आपको ज्ञात होगा कि वहाँ पर नाना प्रकार के मत हैं, नाना प्रकार की जातियाँ हैं। फिर यह कहना ठीक नहीं है कि केवल एक जाति और एक धर्म से ही देश उठ सकता है। चाहे आर्य्य जाति में एक सहस्र के स्थान पर २ सहस्र मत हो जावें, चाहे ५०० के स्थान १ सहस्र जातियाँ बन जावें पर वे उन्नति में कदापि बाधक नहीं हो सकती। उन्नति का मूल मन्त्र केवल एकोद्देश्य है। यदि हमारा उद्देश्य एक हो जावे तो यह भिन्न २ प्रकार के सम्प्रदाय ऋषि, मुनि और महात्माओं का गोत्र के समान स्मृति चिन्ह बनकर हमारे हृदयोत्साह को बढ़ाने वाले बन जावेंगे। उनके आचार्य्य वैसे ही लाभ दायक सिद्ध होंगे जैसा कि पारलीमेन्ट का एक सभासद होता है। यह नाना प्रकार की जातियाँ हमारी इस जातीय सेना के लिये वैसे ही अनिवार्य्य सिद्ध हो जावेंगी जैसी कि अन्य सेनाओं में पलटनें, रिसाले, टुप, कम्पनी आदि बनानी आवश्यक हैं। एक उद्देश्य ज्ञान की दशा ही में रहा करता है और अज्ञान स्वार्थ के आ जाने से भिन्न२ उद्देश्य हो जाते हैं। जापानादि देशों का उद्देश्य एक है चाहे वे परस्पर कटकर मरजाते हैं पर अपने शत्रु के सामने एक

और एक ग्यारह की शक्ति का रूप धारण कर लेते हैं। कोई विचार शील हमारा उद्देश्य यह कदापि न समझें कि हम मत भेद और जाति भेद के पक्षपाती हैं, नहीं यदि एक हो जावें तो इस से बड़ी बात और क्या हो सकती है पर इसके साथ ही बाबा वाक्य प्रमाण को कदापि उचित नहीं समझते।

## परमेश्वर की कृपा

आर्य्य जाति का यह सौभाग्य है कि उसका उद्देश्य एक ही है और वह भी महान उद्देश्य है। यह एक मानी हुई बात है कि जिस जाति का उद्देश्य जितना बड़ा होगा वह जाति उतनी ही उन्नत होगी। आर्य्य जाति के किसी भी सम्प्रदाय को देखो उसका उद्देश्य केवल यही है कि संसार भर के प्राणी मात्र का कल्याण हो। किसी मत का यह उद्देश्य नहीं है कि संसार में हमारा ही सम्प्रदाय रहे। अज्ञान वश अथवा भोग वश इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिये कोई उपाय नहीं किया इसीलिये हम कुछ न कर सके, इसी से आज हम संसार में डायन हिंसा और पापी अपस्वार्थ का राज्य देख रहे हैं।

## उद्देश्य-पूर्ति क्यों कर हो

(१) यह बात मन में ठान लें कि चाहे सर्वस्व चला जावे पर सत्य को ही मानेंगे।

(२) अनार्य मतों को परास्त करने की पूरी तैयारी करलें।

(३) सम्पूर्ण आर्य्य जातियों और मतों का पूरा २ संगठन करलें।

(४) प्रचार के लिये कटि बद्ध हों।

---

# सङ्गठन का विषय

## आवश्यकता

मनुष्य जीवन ही ऐसा बनाया गया है कि वह विना सङ्गठन संसार में जीवित ही नहीं रह सकता। किसी लड़ाकू से लड़ाकू मनुष्य को वन में छोड़ दीजिये तो वह थोड़े ही दिनों में सारे झगड़े भूलकर प्रेम की मूर्त्ति बन जावेगा। वर्णाश्रम, धर्म, तीर्थ यात्रा, उत्सव, मेले, और सहभोज सब सङ्गठन के लिये ही बनाये गये थे। पर आज हमारे अज्ञान ने इन बातों को नाश का मूल बना दिया है। संसार की कोई जाति चाहे कितनी ही बलवान, बुद्धिमान और बहु संख्यक हो यदि उसमें सङ्गठन नहीं है तो वह मिट जावेगी।

लाख डेढ़ लाख अरबों में क्या था, जिन्होंने करोड़ों मनुष्यों को बलात्कार मुसलमान बनाया, दो तीन लाख पठानों में क्या था, जिन्हों ने २८ करोड़ हिन्दुओं पर राज्य किया ३५ सहस्र मुगलों में क्या था जिन्हों ने इब्राहीम के कई लाख पठानों को परास्त करदिया था, १५ सहस्र मराठों में क्या था जिन्होंने औरंजेब के साम्राज्य को धूल में मिला दिया था, उनमें केवल साहस का मूल संघठन ही था। एक ही सामवेद के मंत्र को भिन्न २ स्थानों पर बैठकर गान कीजिये वह कितना अप्रिय जान पड़ेगा, पर उसी मंत्र को एक स्थान पर बैठकर गाइये वह कितना मनोहर ज्ञात होगा, उसमें श्रोताओं को खींचने की कितनी शक्ति हो जाती है, गान करने वालो को गाने में कितनी सुगमता हो जाती है।

---

## कराल-काल-चक्र

संसार में किसका समय है एकसा रहता सदा।
है निशि-दिवा सी घूमती सर्वत्र विपदा सम्पदा॥

बहुत से मूर्ख लोग भोले मनुष्यों को यह कहकर हतोत्साह किया करते हैं कि आर्य्य जाति कभी नहीं उठ सकती यह बात केवल उनको अज्ञानी सिद्ध करने के सिवा और कुछ मूल्य नहीं रखती। वे मूर्ख नहीं जानते कि संयोग, वियोग, सुख दुःख, निशि, दिवा, उत्पत्ति, नाश, क्रिया, विश्राम का साथ है एक के पीछे दूसरी अनिवार्य्य है जब किसी जाति में आनन्द की पूरी २ सामग्री आ जाती है, उसको किसी का भय नहीं रहता तो वह विषय भोग में फँसकर छिन्न भिन्न हो जाती है। जब उसको चारों ओर से शत्रु ही शत्रु दिखाई देने लगते हैं तो फिर वह संघटित होकर शत्रुओं का नाश करने लगती है। बहुत से ज्ञानी महाशय समझे बैठे हैं कि जब उन्नति के पीछे अवनति अनिवार्य्य है तो इसके लिये यत्न व्यर्थ है। इनकी बात बिल्कुल ऐसी है जैसे कोई लाल बुझक्कड़ यह कहने लगे कि जब खाने के पश्चात् भूख तो अनिवार्य ही है इसलिये भोजन खाने की क्रिया ही व्यर्थ है। संसार में जिस प्रकार मनुष्य बार २ भूख लगने पर भी खाकर ही जीवित रह सकता है इसी प्रकार बार २ गिरकर चढ़ने के यत्न को करता हुआ ही जीवित रह सकता है। याद रक्खो क्रिया ही जीवन है। और ज्ञान ही नख है। वही इंगलैंड देश जो कभी रोमन राज्य के असभ्य देशों में गिना जाता था आज वही संसार में सभ्यता का मुकुट मणि बना हुआ है। आज योरुप के गुरू मिश्र को कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछता।

## कर्त्तव्य-समस्या

यदि आज पृथ्वी का नाश होने लगे तो कोई भी देश नहीं बच सकता, यदि सारे देश पर कोई आपत्ति आजावे तो कोई एक समाज नहीं बच सकता, यदि सारे समाज पर कोई आपत्ति आ जावे तो उसका कोई व्यक्ति नहीं बच सकता इसीलिये अपने स्वार्थ से मुख्य समाज के स्वार्थ को जानो समाज के स्वार्थ से मुख्य देश के स्वार्थ को जानो। देश के स्वार्थ से मुख्य तुम संसार के स्वार्थ को जानो। यही कर्त्तव्य-समस्या की पूर्ति का उद्देश्य सामने रहना चाहिये। कोई मनुष्य अज्ञान वश इस नियम का उल्लंघन करके सुख से नहीं रह सकता। आपत्ति से नहीं बच सकता ऋषभदेव स्वामी से लेकर दयानंदजी स्वामी तक सब का यही उद्देश्य है।

## भ्रम के गढ़े से दूर बचो

अंधेरी रात्रि है बादल घिरे हुये हैं, मार्ग बड़ा विकट है, तनिक सी भूल करते ही मनुष्यों के गढ़हों में गिरकर डूब मरने का भय है। धर्मात्मा-परोपकारी सज्जनों में उन गढ़हों से बचने के लिये प्रकाशस्थम्ब बनवा दिये हैं। पहिले स्थम्ब का नाम वैयक्तिक कल्याण दूसरे का सामाजिक तीसरे का राष्ट्रीय और चौथे का सांसारिक-कल्याण-प्रकाशस्थम्ब है। अब जो यात्री चौथे प्रकाश तक जाने का विचार ही हृदय में नहीं लिये हुये है वह रात्रि में टक्कर खाकर फिरेगा, और जो यात्री केवल चौथे ही प्रकाश को अपने नेत्रों के सामने रखकर बीच के प्रकाशों का ध्यान न रक्खेगा वह तो प्रकाश के निकट होते हुये भी गढ़हे में डूब मरेगा। सारांश यह है कि अन्तिम उद्देश्य को सामने रखते हुये भी बीच के उत्तरोत्तर छोटे उद्देश्यों का भी पूरा २ ध्यान रक्खो। अभाग्यवश भारत भूमि में प्रथम दो

कोटि के मनुष्य ही अधिक हैं और तीसरी कोटि के लोग बहुत थोड़े हैं। अर्थात् एक तो ऐसे साधु सन्त, आचार्य, नेता और प्रतिष्ठित लोग हैं जिनके उद्देश्य ही बहुत छोटे हैं। दूसरे वे मनुष्य हैं जिनका उद्देश्य तो बहुत उच्च है पर वे बीच के उद्देश्यों की उपेक्षा करते हैं। इसी लिये वे गढ़हों में गिरते फिरते हैं।

## चेतावनी

याद रक्खो व्यक्तियों से समाज, समाजों से देश और देशों से संसार बनता है। इसलिये प्रथम व्यक्तियों का सुधार करो फिर समाजों का सुधार करो तत्पश्चात् देश और संसार का स्वप्न देखो। साथ ही इसको भी मत भूलो कि न करने से करना अच्छा है।

## संगठन का कार्य्य-क्रम

( १ ) बसतियों का संगठन।
( २ ) भारतवर्ष का संगठन।
( ३ ) सार्वदेशिक संगठन।

## बसतियों के संगठन की विधि

पंचायतों के द्वारा प्रत्येक बसती को एक छोटा सा प्रजा-तंत्र राज्य बना दिया जावे। पंचों से विधि पूर्वक पुरोहित लोग शपथ लें। प्रत्येक मनुष्य से चाहे वह जाति से सम्बन्ध रखता हो, इस बात की प्रतिज्ञा किसी सन्यासी के सामने ली जावे कि वह अपनी जाति की रक्षा, विद्या बल, धन, अथवा निष्काम सेवा में से किसी एक कर्तव्य के लिये अपने सर्वस्व को स्वाहा कर देगा। पंचायत के आधीन निम्न लिखित विभाग होने चाहिये।

( १ ) न्याय विभाग ( २ ) पशु रक्षा
( ३ ) शिक्षा विभाग ( ४ ) स्वास्थ्य
( ५ ) धर्म तथा अतिथि सत्कार ( ६ ) स्वयं सेवक

# भारतीय-संगठन-विधि

इसी प्रकार ज़िलों, प्रान्तों का संगठन करते हुये देश भर का संगठन किया जावे। देश भर की प्रतिनिधि सभा के ऊपर एक और प्रतिष्ठित सभा होनी चाहिये जिसमें छोटे बड़े सम्पूर्ण सम्प्रदायों का चुना हुआ एक २ ही आचार्य्य होगा। प्रतिनिधि सभा में प्रत्येक प्रास्ताव बहुमत से पास होगा किन्तु आचार्य्य समिति में प्रत्येक प्रस्ताव सर्व सम्मत्ति से पास होने पर ही पास हुआ माना जावेगा। कोई बात उस समय तक निश्चित नहीं मानी जावेगी जब तक कि दोनों महासभा अपने २ नियमानुसार उसे पास न करदें। इस सम्पूर्ण संगठन का संरक्षक भारतवर्ष का कोई प्रतापी राजा होगा जिसको इन्द्र की पदवी दी जावे इन्द्र का चुनाव दोनों महासभा करेंगी इन्द्र की प्रतिष्ठा ही मानों धर्म की प्रतिष्ठा होगी।

जिस प्रकार बसतियों के पंचों से सत्य को ग्रहण करने और तन, मन, धन से कर्तव्य के पालन की प्रतिज्ञा ली जावे उसी प्रकार प्रत्येक सभासद् और अधिकारी से ली जावेगी।

# सार्व देशिक-संगठन

इसी प्रकार अन्य आर्य देशों का संगठन करके सार्वदेशिक संगठन किया जावे उस में भी प्रतिनिधि—सभा, आचार्य सभा के वैसे ही अधिकार होंगे। सम्पूर्ण आर्य्य देशों का जो राजा संरक्षक चुना जावेगा उसको महेन्द्र अथवा इन्द्रेश्वर की पदवी दी जावेगी।

## सार्वदेशिक सभा का कार्य्य

( १ ) धर्म की रक्षा तथा प्रचार का कार्य।
( २ ) एक देश से दूसरे देश में बसाने का प्रबन्ध।
( ३ ) व्यापार आदि सम्बन्धी ईर्षा का नाश।
( ४ ) अनार्य जातियों में प्रचार का कार्य।

## धर्म-प्रचार-विधि

### धर्म परिभाषा

धर्म शब्द का अर्थ बड़ा ही व्यापक है, धर्म शब्द की पूरी परिभाषा उसी प्रकार नहीं की जा सकती जिस प्रकार ब्रह्म के लक्षण नहीं कहे जा सकते। पर जिस समय हम धर्म-प्रचार का नाम लेते हैं तो उस समय हमारा उद्देश्य यही होता है कि मनुष्य जाति में शान्ति और शिक्षा का प्रचार किया जावे।

वर्त्तमान सभ्यता ने शान्ति की परिभाषा यह स्थिर की है कि मनुष्य की सब प्रकार की शक्तियों को ऐसा दबा दिया जावे कि वे साम्राज्य के विरुद्ध कुछ भी न कर सकें परन्तु वैदिक धर्म में शान्ति की परिभाषा इसके बिलकुल विरुद्ध है, वह कहता है कि संसार की ऐसी परिस्थिति जिसमें प्रत्येक प्राणी को अपने जीवनोद्देश्य की पूर्त्ति और मनुष्य समाज को सब प्रकार की उन्नति करने का पूरा २ सुअवसर मिले।

शिक्षा का अर्थ शब्द तथा अर्थ का ज्ञान नहीं वरन् ऐसा क्रियात्मक ज्ञान जिससे मनुष्य समाज सब प्रकार से उत्तम होजावे। वर्त्तमान समय में इस पश्चिमी सभ्यता के द्विराज्य-दो अमली राज्य अर्थात् उसके स्वार्थ और अधिकार ने प्राणी मात्र को उसी प्रकार तबाह कर रक्खा है जिस प्रकार लार्ड क्लाइव और मीर जाफ़र के द्विराज्य ने बंगाल देश की प्रजा को तबाह कर दिया था।

## मनुष्य की प्रकृति का विचार

सतोगुणी मनुष्य संसार में सब की उन्नति के साथ अपनी उन्नति चाहते हैं। इनके विरुद्ध तमोगुणी मनुष्य केवल अपनी ही उन्नति और दूसरों की अवनति चाहते हैं। रजोगुणी मनुष्य अपनी उन्नति के साथ अपने सम्बन्धियों की भी उन्नति चाहते हैं। जिस प्रकार वैद्य प्रकृति और देश, काल का विचार करके औषधि देकर उसका कल्याण करता है इसी प्रकार प्रचारकों को भी देश काल और पात्र—प्रकृति का विचार करके धर्म प्रचार करना चाहिये।

सतोगुणी मनुष्यों में प्रचार करने के लिये उपदेश ही पर्याप्त है, रजोगुणी मनुष्यों में उपदेश के साथ उनके उचित स्वार्थों की रक्षा करनी भी आवश्यक है।

तमोगुणी मनुष्यों पर उपदेश का उस समय तक कोई प्रभाव नहीं पड़ता जब तक कि उनकी कुप्रवृत्ति का नाश न करदिया जावे। इस कुप्रवृत्ति के दूर करने का एक ही उपाय है। कि उनको भली प्रकार दंड दिया जावे।

प्रचारक लोग एक तो उपदेश दे सकते हैं दूसरे रजोगुणी मनुष्यों के ऐसे स्वार्थों की रक्षा भी कर सकते हैं जिनमें पास से कुछ न देना पड़े अथवा जिनकी रक्षा के लिये किसी प्रकार शक्ति से काम न लेना पड़े।

रजोगुणी मनुष्यों की स्वार्थ रक्षा के लिये यदि किसी बाहरी शक्ति का प्रयोग करने अथवा तमोगुणी मनुष्यों को दंड देने के लिये राज्य की बड़ी आवश्यकता है।

### प्रथम प्रचार-विधि

इस प्रचार विधि के लिये प्रचारक में निम्न लिखित बातें होनी चाहिये।

( १ ) पूर्ण तपस्वी हो।
( २ ) पूर्ण विद्वान् हो और पूरा तार्किक हो।
( ३ ) उसकी वाणी अत्यन्त मधुर और आकर्षक होनी चाहिये।
( ४ ) उसके हृदय में मात्र का प्रेम भरा हुआ हो।
( ५ ) उसमें स्वार्थ और हठधर्म बिल्कुल न हो।

### दूसरी प्रचार-विधि

सतोगुणी मनुष्य के हृदय पर किसी प्रकार का प्राकृतिक परदा नहीं होता, इसलिये उसके हृदय पर सच्चे उपदेश का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। परन्तु रजोगुणी मनुष्य के हृदय पर स्वार्थ का परदा पड़ा रहता है, जो कि उपदेश के प्रभाव को भली प्रकार नहीं पड़ने देता। आज कितने ही मनुष्य वैदिक धर्म में आना चाहते हैं पर स्वार्थ अर्थात् भोजन-वस्त्र-मोद प्रतिष्ठा आदि के बाधक होने से वे इस पवित्र अमृत को पान नहीं कर सकते। अनेक मत अत्यन्त निःसार होने पर भी मनुष्यों के भोजनादि की अपेक्षा से संसार में फैल गये। आज संसार में जितने मत बहुसंख्यक हैं वे इसी प्रकार फैल गये थे।

## दूसरी-विधि तथा इतिहास

( १ ) यह बात हम सिद्ध कर चुके हैं कि संसार में जितने भी नवीन मत फैले उन्होंने अपने प्रचार की नींव पिछले सिद्धान्त प्रथा, तीर्थ तथा पिछली सर्व प्रिय बातों के आधार पर रक्खी।

( २ ) बौद्ध काल में एक मनुष्य बौद्ध भी था और ब्राह्मणों के मत की बातें भी मानता था। यह बात पाठक पढ़ चुके हैं।

( ३ ) ईसाई मत ने जिस प्रकार सारे मतों की बातों को अपना किया है वह तो आज भी प्रकट है।

(४) शंकर स्वामी का तो यह पाँचवां ही सिद्धान्त था रामानुजजी ने जिस प्रकार वैदिक धर्म में मूर्ति पूजा को स्थान दिया वह भी प्रकट है।

(५) मुसलमानी मत को बहुत ही कट्टर मत कहते हैं पर एकेश्वर वाद पर बल देने के सिवा यह सारे रोज़े-नमाज़ हज़ खतना पशुवध आदि सब यहूदियों और पारसियों के ज्यों के त्यों ले लिये हैं। यही मक्के में लात और हुबल नाम की क़ुरैशों की प्यारी मूर्तियों को भी हज़रत ने काबे में स्थान दिया और तो और काबे जैसे बुतखाने का यहाँ तक आदर बढ़ाया कि मुसलमान लोग उसी ओर को मुख करके नमाज़ पढ़ते हैं। महापुरुषों की मूर्तियों से चिढ़ते हैं पर क़ब्र, पत्थर और पद चिह्न को बिना पूजे वे भी न रहे। भिन्न २ देशों के मुसलमान अपने २ देश की नवीन २ प्रथाओं को अभी तक मानते हैं। लाखों मुसलमान आज भी अनेक हिन्दुओं के देवताओं के पुजारी बने बैठे हैं। लाखों मुसलमान गोपीचन्द भर्तृ और लादिया तथा पाँच पांव की गौ लिये हुये गोमाता के गीत गा २ कर भोजन कमाते हैं। और साथ ही जब युद्ध होता है तो सब से प्रथम हिन्दुओं के मन्दिर की मूर्ति के सिर पर उन्हीं का हथौड़ा पड़ता है।

## यह अनिवार्य्य है

जिस भोजन पर धर्माधर्म का प्रश्न निर्भर है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस में सन्देह नहीं कि त्याग दिखाने से मनुष्य को पहिले से भी अधिक लाभ होगा पर प्रकृति से आच्छादित मनुष्य का हृदय इस त्याग को नहीं सहन कर सकता है।

---

## भ्रम से बचो

यह एक स्वभाविक नियम है कि जब जल की दो धारा मिलकर एक नवीन धारा बन जाती है तो उसका वही नाम रहता है जो उन दोनों में से बड़ी धारा का होता है। इसके साथ ही जब दोनों धारा समान शक्ति रखती हैं तो उनका नवीन ही नाम हो जाता है जैसे कि गंगा और ब्रह्मपुत्रा के मिलने से जो धारा बनी है उसका नाम भागीरथी पड़ा है।

जिस समय हिन्दू मत में कुछ शक्ति थी उस समय बौद्धों का वाराह देवता भी विष्णु भगवान बन गया पर जिस समय उनकी शक्ति क्षीण होगई तो मियां मदार, पीर, कब्र और मि० आगाखाँ आदि भी विधर्मी बनाने का कारण बन गये। निर्बलता तो दूर रहने ही में कल्याण है। छूत में यही बात थी।

## तीसरी प्रचार-विधि

संसार में सतोगुणी बहुत ही थोड़े हैं और जहाँ तक विचार किया जा सकता है तो यही ज्ञात होता है कि तमोगुणी अर्थात् महादुष्ट भी इन से कुछ ही अधिक होंगे। शेष मनुष्य बहुधा रजोगुणी ही होते हैं। यह दूसरी बात है कि उनमें से बहुत से मनुष्य आपत्ति में फंस जाने से कोई दुष्टता भी कर बैठें। इस दशा में वे महा दुष्ट नहीं कहे जा सकते।

मुसलमानों का तलवार से प्रचार करना इसलिये पाप गिना जाता है कि उन्होंने सबको एक ही डंडे से हाँका उन्होंने पहिली दो प्रचार विधियों से कुछ भी काम न लिया।

जो मनुष्य तीसरी प्रचार विधि पर यह आक्षेप करते हैं कि इस को प्रचार में स्थान देने से यह अनर्थ होगा कि दुष्ट लोगों को दुष्टता का एक बहाना मिल जावेगा वे बड़ी भूल पर हैं। अरे भोले लोगो! दुष्ट तो दुष्टता के लिये कुछ न कुछ बहाना सदा

ही निकाल लेते हैं। फिर तुम धर्मात्मा लोगों से यह अधिकार छीनकर उनके प्राणों को क्यों भय की भेंट किये देते हो। यदि दुष्टों को भय न हो तो वे आप तो दूर, दूसरे मनुष्यों को भी कोई धर्म कृत्य न करने देंगे. उनको फलता-फूलता देखकर साधारण मनुष्य भी पापी बन जावेंगे। हिन्दू लोग आज तक इसी भ्रम में पड़े रहे, उन्होंने इसी भ्रम में पड़कर खोपरी का मलीदा बनवाया। ऐसा करना ही पाप था। जिसका फल वे आज भोग रहे हैं।

## राम, कृष्ण ने दुष्टों को स्वर्ग दिया

जिन लोगों ने शास्त्रों का मनन नहीं किया वे रामायण और भागवत की इन वातों को सुनकर बड़ी हंसी उड़ाया करते हैं कि राम और कृष्ण ने दुष्टों को मारकर उनको सद्गति दी थी। उसका यही आशय है जो कि हम पहिले कह चुके हैं।

इस विषय में एक शंका और हुआ करती है कि राम और कृष्ण के लिये ही ऐसा क्यों कहा जाता है, उसका कारण यह है कि लोग पूरे धर्मात्मा थे, इसलिये इनके हाथ से वे ही मनुष्य मारे गये जो कि वास्तव में मारने के योग्य थे। साधारण मनुष्य कभी-कभी स्वार्थ वश रजो गुणी को भी मार देते हैं।

दूसरे जिन लोगों ने ग्रन्थों को ध्यान पूर्वक पढ़ा है वे जानते हैं कि राम और कृष्ण ने इन पापियों को केवल मारा ही नहीं वरन् उपदेश भी दिया था। जिनका इन दुष्टों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। इस वात को सभी विद्वान् जानते हैं कि मृत्यु के समय मनुष्य के हृदय पर जो वात बैठी हुई होती है अगले जन्म में वैसा ही शरीर मिलता है अथवा वैसी ही गति मिलती

है। वैदिक-धर्म का एक यह भी सिद्धान्त है कि यदि मनुष्य सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त अर्थात् पश्चाताप करे तो उसके पिछले पाप तो नहीं मिटते पर वासना (टेव) के मिट जाने से भावी पापों और उनके दुःखों से बच जाता है।

तीसरे यह बात तो प्रत्यक्ष है कि ज्ञानी—ईश्वर भक्त पर जितनी भी आपत्ति आती है, उसके अटल हृदय पर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इस विचार से यदि यह कहा जावे तो अनुचित न होगा कि उनके पाप ही दूर हो जाते हैं।

दंड में यह बड़ा भारी गुण है कि वह हृदय पर से सारे दूषित लेव को उतारकर उसे शिक्षा ग्रहण करने के योग्य बना देता है। इसलिये यह कहना सर्वथा सत्य है कि राम और कृष्ण ने दुष्टों को मारकर सद्गति दी, भक्तों के विषय में जो सद्गति जताई जाती है, उसमें भी यही उपदेश का रहस्य है। जो लोगों ने अज्ञान वश नहीं समझा।

## एक महा भ्रम

श्री शंकर स्वामी के पीछे भोले लोगों ने तामसिक प्रन्थ (दंड) का आशय न समझकर माँस खाने वाली काली की मूर्ति गढ़ के मांस खाना आरम्भ कर दिया। आज भी कितने ही लोग इसी भ्रम में पड़कर अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहे हैं

भोले लोगो! इन पापों से बचो और परम पिता के प्यारे पुत्र बनकर अपने प्यारे जीवन को पवित्र करो।

## प्रचार का दृष्टि कोण

यह लोगों में बड़ा भारी भ्रम फैला हुआ है कि वे सामाजिक बन्धन—रीति—प्रथा और रहन-सहन की विधि को ही धर्म समझे बैठे हैं। यह धर्म रक्षा की बाढ़ है इसलिये पहिले अहिंसा धर्म का बीज बोना चाहिये वा फिर पीछे से

इस बाद के लगाने का भी यत्न करना चाहिये। जब संसार में अहिंसा धर्म का प्रचार हो जायगा तो उस समय वेदों का ध आप ही फैल जावेगा। इसलिये लोगों की छोटी २ बातों पर ही पहिले नहीं जाना चाहिये नहीं तो धर्म प्रचार बन्द हो जावेगा। धर्म प्रचार का मूल मंत्र ही लोगों के लिये सुगमता उत्पन्न करना है।

## हृदयोद्‌गार

( १ )

प्राचीन हो कि नवीन, छोड़ो रूढ़ियाँ जो हैं बुरी,
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस की सी चातुरी।
प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो, वहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है॥

( २ )

ऐसा करो जिससे तुम्हारे देश का उद्धार हो,
जर्जर तुम्हारी जाति का बेड़ा विपद से पार हो।
ऐसा न हो कि अन्त में चरचा करें ऐसो सभी,
थी एक हिन्दू नाम की भी निन्द जाति यहाँ कभी॥

( ३ )

सब की नसों में पूर्वजों का पुण्य रक्त-प्रवाह हो,
गुण, शील साहस, बल तथा सब में भरा उत्साह हो।
सब के हृदय में सर्वदा सम वेदना का दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो तुमको हमारी चाह हो॥

( ४ )

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो,
साहार्द और मतैक्य हो अविरुद्धमन का भाव हो।

सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा,
निज यज्ञ भाग समानता से देव लेते हैं यथा ॥

( ५ )

री लेखनी बस बहुत है अब और बढ़ना व्यर्थ है,
है यह अनन्त कथा तथा तू सर्वथा असमर्थ है।
करती हुई शुभ कामना निज वेग सविनय थामले,
कहती हुई जय जानकी जीवन तनिक विश्राम ले ॥

( मैथली शरण गुप्त )

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पंडित द्वारकाप्रसाद तिवारी प्रिंटर व प्रोप्राइटर के प्रबन्ध से,
भारत भूषण प्रेस में मुद्रित सन् १९१७ ई०